Impact Factor : 5.621

ISSN : 2321-0540

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA

कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा एवं प्रोद्योगिकी का समन्वय: सतत एवं विकसित भारत की दिशा में बहुविषयक दृष्टिकोण

विशेषांक – 2026

Issue Editor :
Dr. Vaishali Singh

Executive Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA
कचंनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

वर्ष-15 | अंक-3(2) | अगस्त 2026 (विशेषांक) | ISSN : 2321-0540

प्रधान सम्पादक :
डॉ. भरत मिश्र प्राची
विला 15, अशियाना ग्रीनस, सीकर रोड़, जयपुर, राजस्थान।

कार्यकारी संपादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी
हरियाणा-127021

सह-संपादक :
डॉ. शिवकरण निमल

प्रबंध संपादक :
डॉ. वैशाली सिंह

डिजीटल संपादक :
डॉ. रोहतास निम्मी

अक्षर संयोजन :
मो. सलीम

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक/परामर्श मंडल :
श्री आर.के राज
डॉ. निशीथ गौड, आगरा
डॉ. उषा रानी, शिमला
डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
डॉ. सुनिता सारस्वत, पचेरी बड़ी, झुन्झुनू
डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा

1. 'कंचनलता' का प्रबंधन और संपादन पूर्णत: अवैतनिक है।
2. 'कंचनलता' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक, मुद्रक, स्वामित्व कलावती देवी डॉ. भरत मिश्र प्राची के वास्ते डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवा, गीना प्रकाशन भिवानी (हरियाणा) से डिजीटल/पीडीएफ प्रसारित किया।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

विषय विशेषज्ञ/सम्पादकीय मण्डल :

डॉ. मुदिता पोपली, प्राचार्य
मां करणी बी.एड. कॉलेज, नाल, बीकानेर, राजस्थान।
डॉ. (श्रीमती) अभिलाषा सैनी, प्राचार्य,
स्वर्गीय रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला- बलोदबाजार, मध्य प्रदेश।
डॉ. माया गोला, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड) पिन - कोड 263601
डॉ. मोहित शर्मा
श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
रजनी प्रिया
राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वाटर संख्या - 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद
लैंडमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला - धनबाद, पिन कोड - 826001, राज्य - झारखंड
Dr. Tapasya Chauhan, Assistant Professor,
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
Dr. AMBILI V. S., Assistant Professor, Department of Hindi,
N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
Dr. Om Prakash Mehrara, Director,
Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
Dr. Anju Bala, Assistant Professor Hindi,
Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
डॉ आँचल कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी,
राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज, गाजियाबाद। चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
डॉ. सरिता भवानी मालवीय, असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ,
आरकेडीएफ विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)
डॉ. संदीप कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,
कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा।
डॉ. प्रमोद नाग, सहायक प्राध्यापक,
आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरू-560107
पल्लवी आर्य, असिस्टेंट प्रोफेसर, भाषा विज्ञान विभाग,
के.एम.आई. डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
डॉ. अमित कुमार सिंह, डी.लिट् असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
के.एम.आई. डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
कोकिला कुमारी, शोधार्थी,
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड।
गोस्वामी सोनी बाला, शोधार्थी,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

अगस्त 2026–विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	नरेश सिहाग, वैशाली सिंह	07–08
2.	भारतीय राष्ट्रवाद एवं साम्प्रदायिक उन्माद!	Dr. Mamta Kumari	09-12
3.	Green Finance and Smart Energy Systems : India–Japan Cooperation in the Bikaner Solar Project under Industry 4.0	Jai Shri Prajapat	13-22
4.	उदय प्रकाश जी का जीवन परिचय	सुशील कुमार	23–26
5.	संत कबीर के काव्य में योग, ज्ञान और प्रेम का समन्वय	सुशीला, डॉ. शिवचरण शर्मा	27–30
6.	भारत की परमाणु नीति	डॉ० सपना सिंह	31–33
7.	हाड़ौती की लोकपरंपरा एवं सांस्कृतिक विरासत : परंपरा से आधुनिकता तक	भूमिका भूषण	34–38
8.	From Mobocracy to Statute : A Critical Socio-Legal Evaluation of the Efficacy of Laws in Curbing Identity-Based Violence and Human Rights Violations & Education reforms in Naxal Affected Area of Chhattisgarh.	Sajal Jain, Dr. Sarita Bhavani Malviya	39–53
9.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान प्रणाली	दुर्गेश कुमार, प्रो. तनूजा अग्रवाल	54–57
10.	Wordsworth as a Pioneer Poet of Nature	Dr. Pooja Singh	58-60
11.	पर्यावरण संरक्षण हेतु भारतीय पारंपरिक ज्ञान का अध्ययन	डॉ. शेरा बानो	61–69
12.	प्राचीन भारतीयांचे मानसशास्त्रातील योगदान : एक विश्लेषणात्मक अभ्यास	प्रा डॉ. सुधाकर शिवाजी जाधव	70–75
13.	डिजिटल भारत और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण : ऐतिहासिक धरोहर के संरक्षण एवं वैश्विक प्रसार की नई संभावनाएँ	कुलदीप कौर	76–79
14.	इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित विमर्श	शिवलाल अहिरवार, डॉ. घनश्याम भारती	80–85
15.	हिंदी कहानियों का सिनेमा में रूपांतरण : एक यात्रा	डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर	86–88
16.	आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी भूमिका	अनुराधा	89–93

17.	जैन परम्परा में नारी शिक्षा	चन्दन कुमार मिश्र	94–97
18.	डिजिटल युग में गुरूकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता एवं पुनर्पाठ की संभावनाएं	Dr. Suman Baliyan	98-103
19.	दलित लेखिका कुसुम मेघवाल की कहानियों में दलित स्त्री का समाज से संघर्ष	अलका जिलोया	104–108
20.	पत्रकारिता का वर्तमान परिदृश्य	डॉ. पंडित बन्ने	109–111
21.	वर्तमान सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व एवं प्रासंगिकता	डॉ. राहुल प्रसाद	112–118
22.	लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम	अनुराधा	119–121
23.	Representation of Disability in Hindi Cinema : From Punitive Bodies to Negotiated Difference	Kanupriya	122-130
24.	भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक मूल्यों की शिक्षा : पंचतंत्र की कहानियों के संदर्भ में	डॉ. अर्शिया सैय्यद अफसर अली	131–135
25.	भारतीय ज्ञान परंपरा एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी भाषा शिक्षण की प्रासंगिकता	डॉ. रीजा. आर. एस	136–141
26.	National Education Policy 2020 and Indian Knowledge Renaissance	Prof. Shakil Ahmad	142-147
27.	भारतीय ज्ञान–विज्ञान : एक समग्र अध्ययन	शिवेन्द्र कुमार	148–153
28.	समाज में किन्नरों की स्थिति : चुनौतियाँ और अवसर	नितु कुमारी	154–156
29.	भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन शिक्षा प्रणाली और उसका वर्तमान स्वरूप	Dr. Rajdulari Makhecha	157-164
30.	Translating Tradition : A Linguistic Analysis of Japanese Domain-Specific Vocabulary in Indian Heritage & Wellness Tourism	Dr. Ashok Singh Rathore	165-176
31.	G-Protein-Coupled Receptors : Structure, Signaling Mechanisms, Physiological Functions, and Therapeutic Importance	Dr. Prem Singh	177-196
32.	गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था एवं ज्ञान–विज्ञान के विकास का अध्ययन	डॉ. आदित्य प्रकाश सिंह	197–207
33.	भारतीय संघीय व्यवस्था की बदलती प्रकृति (The Changing Nature of Indian Federal System)	अविनाश कुमार, डॉ. कमल कुमार भड़िया	208–216

34.	जल संसाधन में प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण : एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय अध्ययन	Dr. Arvind Kumar Jakhar	217-245
35.	स्थानीय पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरणीय शासन : सतत ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायतों की भूमिका	Dr. Nitu Rai	246-252
36.	आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी भूमिका	अनुराधा, प्रो.(डॉ.)तनूजा अग्रवाल	253–258
37.	नाट्य विधा में संगीत तत्व : एक अवलोकन	अर्चना कुशवाहा	259–262
38.	भारतीय दर्शन और सतत जीवन शैली	उषा रानी	263–265
39.	वैदिक काल से वर्तमान तक : वायु प्रदूषण की रोकथाम के उपाय और उनकी प्रासंगिकता	Dr. Shivkaran Nimal	266-272
40.	जोधपुर जिले में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण की दिशा में गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिजम क्षेत्र की भूमिका : एक प्रतीकात्मक अध्ययन	डॉ. दिलभाग	273–285
41.	वैदिक काल में नदियों का संरक्षण और वर्तमान में उनकी महता	साजन राम	286–291
42.	भारतीय ज्ञान परम्परा और वैदिक काल : एक अध्ययन	DINESH SINGH	292-297
43.	तुलसीदास विरचित कवितावली में सामाजिक चेतना	पवन प्रकाश शर्मा, श्री सुरेंद्र कुमार मीणा	298–301

संपादकीय.....

भारतीय ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी का समन्वय : सतत एवं विकसित भारत की दिशा में बहुविषयक दृष्टिकोण

भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीनतम ज्ञान परंपराओं में से एक है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल पुस्तकीय विषय न मानकर जीवन, प्रकृति, समाज और मानव कल्याण से जोड़कर देखा। वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोल विज्ञान, कृषि, वास्तु, भाषा, साहित्य और कला आदि क्षेत्रों में भारत की समृद्ध ज्ञान–परंपरा इसका प्रमाण है। आज जब विश्व तीव्र तकनीकी परिवर्तन, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक असमानता और मानवीय मूल्यों के क्षरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के समन्वय की आवश्यकता और अधिक प्रासंगिक हो गई है।

वर्तमान समय में विकसित भारत का लक्ष्य केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं हो सकता। वास्तविक विकास वह है जिसमें आर्थिक समृद्धि के साथ सामाजिक न्याय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, वैज्ञानिक सोच, सांस्कृतिक चेतना, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों का संतुलित विकास हो। इसके लिए आवश्यक है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संवाद स्थापित करे और विद्यार्थियों में रचनात्मकता, अनुसंधान, नवाचार तथा समस्या–समाधान की क्षमता विकसित करे। भारतीय ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक विज्ञान एक–दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हो सकते हैं। हमारी पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों में प्रकृति के साथ संतुलित जीवन, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक उत्तरदायित्व की अनेक उपयोगी अवधारणाएँ विद्यमान हैं। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी इन अवधारणाओं का वैज्ञानिक परीक्षण, पुर्नव्याख्या और नवीन परिस्थितियों में उपयोग करने की संभावनाएँ प्रदान करती है। आवश्यकता इस बात की है कि परंपरा को अंधानुकरण के रूप में नहीं, बल्कि शोध, तर्क और प्रमाण के आधार पर समझा जाए। शिक्षा इस समन्वय की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों को केवल रोजगार के लिए तैयार न करे, बल्कि उन्हें जिम्मेदार, संवेदनशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले और राष्ट्र के प्रति जागरूक नागरिक बनाए। भारतीय भाषाओं, साहित्य, कला, संस्कृति और इतिहास के अध्ययन के साथ विज्ञान, तकनीकी शिक्षा, डिजिटल ज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अनुसंधान को समान महत्व देना आज की आवश्यकता है।

बहुविषयक दृष्टिकोण इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी भी जटिल सामाजिक या राष्ट्रीय समस्या का समाधान केवल एक विषय के माध्यम से संभव नहीं है। जल संकट, जलवायु परिवर्तन, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार, डिजिटल असमानता और शिक्षा जैसे विषयों पर विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, पर्यावरण अध्ययन, प्रौद्योगिकी, मानविकी और भारतीय ज्ञान परंपरा को साथ लेकर कार्य करना होगा। यही समन्वित दृष्टिकोण भारत को आत्मनिर्भर, नवाचारी और सतत विकास की

दिशा में आगे ले जा सकता है।

प्रौद्योगिकी ने ज्ञान के प्रसार और अनुसंधान के नए द्वार खोले हैं। डिजिटल शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव–प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्र भारत की विकास यात्रा को नई गति दे रहे हैं। किंतु तकनीकी विकास के साथ नैतिकता और मानवीय संवेदनशीलता का संतुलन भी आवश्यक है। तकनीक मानव जीवन को सरल बनाए, प्रकृति के संरक्षण में सहायक हो और समाज के प्रत्येक वर्ग तक अवसर पहुँचाए – यही तकनीकी प्रगति की सार्थकता है।

आज आवश्यकता एक ऐसे भारत के निर्माण की है जो अपनी गौरवशाली ज्ञान–संपदा से प्रेरणा लेते हुए आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों को अपनाएय जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा हो और भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार भी हो। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और प्रकृति के प्रति सम्मान जैसी भारतीय अवधारणाएँ सतत एवं मानवीय विकास के वैश्विक विमर्श को नई दिशा दे सकती हैं।

प्रस्तुत अंक इसी व्यापक चिंतन को केंद्र में रखता है। इसमें विभिन्न विषयों के शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और चिंतकों के विचारों एवं शोधकार्य के माध्यम से भारतीय ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा और प्रौद्योगिकी के अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है। आशा है कि यह अंक पाठकों, शोधार्थियों और शिक्षाविदों के लिए नए विमर्श, शोध और नवाचार की प्रेरणा बनेगा तथा सतत, समावेशी और विकसित भारत के निर्माण की दिशा में सार्थक बौद्धिक योगदान देगा।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय राष्ट्रवाद एवं साम्प्रदायिक उन्माद!

Dr. Mamta Kumari
Assistant Professor, Political Science
Shri Paramhans Shikshan Prashikshan Mahavidyalay, Ayodhya Dham.

भारतीय राष्ट्रवाद सामाजिक, सांस्कृतिक–राजनीतिक, आर्थिक, भौतिकता एवं लोकतन्त्र का पारिमार्जित स्वरूप है। 19वीं शताब्दी में बिटिश साम्राज्य में देश में विदेशी शोषणपूर्ण नीति एवं कूटनीति अपनाकर भारत की सामाजिक–राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थिति को जर्जर एवं दयनीय बना दिया था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार एवं संचार के परिणामस्वरूप भारत की बौद्धिक शक्ति का जागरण हुआ। यहीं से भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

भारत का बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। पाश्चात्य समाज के सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रवाद के लिए बौद्धिक आधार का काम किया। भारतीय समाज सुधार आन्दोलन एवं पुनर्जागरण आदि में देश की जनता को राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना को जागृत किया, जागरण की सर्जनात्मकता अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र में हुई। पाश्चात्य राजनीतिक चेतना के परिणाम स्वरूप मध्य युग की सार्वभौमिकता का ह्रास हुआ और राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के उन्नायक रूप में सर्वप्रथम ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने भारत का सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता का संदेश दिया था। राजा राम मोहन राय चाहते थे कि समाज में सती–प्रथा, दास प्रथा आदि का अन्त हो जाय, इसलिए वह इंग्लैड जाकर बेन्थम जो दास प्रथा के विरोधी तथा जन शिक्षा के समर्थक लॉर्ड ब्राउधन जैसे विशिष्ट लोगों से सम्पर्क स्थापित किया। सामाजिक स्वतंत्रता तथा नैतिक अधिकारों के साथ–साथ उन्होनें समाज सुधार, शिक्षा का प्रचार तथा मानव कल्याण की धारणा का समर्थन किया। **बिपिन चन्द्र पाल (1)** ने अपने विचार प्रकट कहा है कि राजा राममोहन राय ब्रिटिश पराधीनता को समाप्त करने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता के हामी थे, जो राष्ट्रीय चेतना के उन्नायक थे। ब्रह्मसमाज की भांति आर्यसमाज भी भारत का शक्तिशाली धार्मिक, सामाजिक आन्दोलन रहा है। इसके संस्थापक **महर्षि दयानन्द सरस्वती (2)** वेदों के महान पंडित शास्त्रवेत्ता, धार्मिक एकेशरवाद के उपदेशक एवं समाज सुधारक रहे हैं। सभी के लिए वेदो का अध्ययन, शारीरिक बल, योगबल को उन्होने राष्ट्र निर्माण मलूक तत्व बतलाया है। दादाभाई नौरोजी तथा प0ं मदन मोहन मालवीय, गोपाल कृष्ण गोखले के राष्ट्रवादी राजनीतिक विचार भारतीय समाज के लिए एक प्रेरणा दायक स्त्रोत हैं। मालवीय जी तथा गोखले एक महान राजनेता, विचारक तथा राजनीति के कुशल सेनानी रहे हैं। इनके साथ महादेव गोविन्द रानाडे का बड़े श्रद्धा और गर्व से

लिया जाता है। रानाडे एक महान, चिन्तक, दार्शनिक अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ रहे हैं। इनकी धर्म के प्रति सहिष्णुता सामाजिक समानता, नारी स्वतत्रता आदि के प्रति उदार प्रवृत्ति राष्ट्रवाद के प्रति पोषक तत्व है। भारतीय समाज एवं राजनीति में बाल गंगाधर तिलक, सरदार पटेल, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल जैस दिग्गज भारतीय राष्ट्रवाद स्तम्भ माने जाते हैं।

गांधी जी का भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में अद्वितीय भूमिका रही है। इन्हीं के नेतृत्व में भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की। इनका भारतीय राजनीति पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक प्रवृत्ति मूलतः गांधी जी के अहिंसात्मक, लोकतंत्रात्मक धारना पर आधारित है। गांधी जी ने आदर्श राष्ट्रवाद के साथ अन्तर राष्ट्रवाद की अवधारणा को भी स्वीकार किया। इनका विचार है कि जब तक राष्ट्र प्रभुत्व को नहीं प्राप्त करता तब तक राजनीतिक विकास राष्ट्रवाद के लिए पर्याप्त नहीं है। **गांधी जी(3)** का विश्वास था कि सत्याग्रह समाज की राजनीतिक, नैतिक एवं आर्थिक बुराईयों का अन्त कर सकता है।

राष्ट्रवादी सुधार आन्दोलनों में सर्वोदय भी एक समाज सुधार प्रवाहमयी धारी रही है। सर्वोदयी नेताओं में बिनोवा भावे, दादा धर्माधिकारी तथा जय प्रकाश नारायण तथा डॉ0 लोहिया का नाम उल्लेखनीय है। बिनोवा जी तथा जयप्रकाश नारायण समाजवादी राष्ट्र के समर्थक रहे हैं। इनका आधारभूत सिद्धान्त समस्त राष्ट्र के सुख एवं उत्थान प्राप्ति से सम्बद्ध है। बिनोवा जी ने अपने भूदान यज्ञ के माध्यम से देश में सामाजिक, आर्थिक समानता एवं सहयोग की भावना जागृत कर राष्ट्र की महती सेवा की है। वह गांधी जी के सर्वोदय के सिद्धान्त को मानते थे। जयप्रकाश जी इनके भूदान यज्ञ में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुए थे(4)।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार के पर कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद का मौलिक स्वरूप, सामाजिक–राजनीतिक, आर्थिक कल्याणकारी तत्वों अविभूत है, किन्त वर्तमान समय में यह धारणा कुण्ठित होती जा रही है। स्वतंत्रता पूर्व अनेक विदेशी आक्रमणकारी जातियों के आगमन एवं इनके द्वारा भारतीय सांस्कृतिकरण के परिणाम स्वरूप अनेक जाति तथा सम्प्रदायों का जन्म हुआ। 4000 से ऊपर जातियां भारत में निवास करती है। जिसके परिणाम स्वरूप क्षेत्रियता तथा सम्प्रदाय वाद जैसी विघटन शक्तियां समाज में क्रियाशील हैं, जिनका अपना धार्मिक महत्व है। विदेशी शक्तियों ने भारतीय समाज एवं धर्म पर बार–बार कुठाराघात किये हैं, किन्तु आज भी प्रतिदिन धर्म–जाति सम्प्रदाय को लेकर समस्याऐं उत्पन्न हो रही हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् धार्मिक एवं क्षेत्रीय साम्प्रदायिक भावना ने उग्र रूप धारण कर राष्ट्र की एकता का आघात पहुंचाया है। साम्प्रदायिकता का विष वृक्ष ब्रिटिश काल में जड़ पकड़ चुका था, क्योंकि अंग्रेज भारत को स्वतंत्र तथा सुदृढ नहीं होने देना चाहते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत में साम्प्रदायिक उन्माद फैल गया और देखते–ही–देखते भारत के विभाजन का प्रस्ताव मो0 अली जिन्ना और सैययद मुहम्मद आदि नेताओं ने मांग शुरू कर दी। मु0 अली जिन्ना को कांग्रेस पर विश्वास नहीं था, इसलिए अपने सम्प्रदाय को पृथक करना चाहते थे। जिन्ना ने स्वतंत्रता से पहले ही पृथकतावादी दृष्टिकोण अपना लिया। साम्प्रदायिक उन्माद, धर्मनिरपेक्ष शक्तियां और साम्प्रदायिक शक्तियों के बीच लड़ाई का परिणाम यह था कि समय से पहले ही विभाजन का प्रस्ताव उग्ररूप धारण करने लगा। इसके परिणाम स्वरूप देश में एक सम्प्रदाय विशेष के लोगों के प्रति इतना आक्रोश पैदा हो गया था कि समूचा राष्ट्र बदले की भावना रूपी आग में जल रहा था। और अंतर्राष्ट्रीय जगत के समाजों में भी इसे घृणित क्रिया की संज्ञा दी गई थी। आज का वर्तमान सामाजिक परिवेश भी शान्त नहीं है। कहीं–न–कहीं धर्म को लेकर, भाषा को लेकर, जाति को लेकर तथा क्षेत्रवाद आदि समस्याओं को लेकर

साम्प्रदायिक उन्माद तथा दंगे, झगड़े, फसाद हो रहे हैं जिसका समाधान राष्ट्रवाद के लिए एक चुनौती है(5)।

वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि में सम्प्रदायवाद एवं आतंकवाद विश्वव्यापी समस्याएं हैं। अपने लक्ष्य तथा स्वार्थपूर्ति के लिए हिंसा और विध्वंश के जरिए आतंक फैलाना किसी समूह या सम्प्रदाय के पूरे सामाजिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर देना उनका मुख्य ध्येय रहा है। जहां तक भारत का प्रश्न है पिछले कुछ वर्षों से आतंकवादी हिंसा साम्प्रदायिक उन्माद का नग्न तांड़व देश के कुछ भागों में दिखाई पड़ रहा हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां, सामूहिक अपहरण, विमान अपहरण, सामूहिक हिंसा एवं विस्फोट आदि के माध्यम से समाज मे आतंक तथा असुरक्षा की भावना पैदा कर रही है जिनकी विश्व स्तर पर बराबर निन्दा की जाती रही है। भारत में ही नहीं, अपितु पश्चिम देशों में भी इसका विभत्स रूप सामने आ चुका है। पश्चिम एशियाई, इजराइल, फिलिस्तीनी छापामारों के अनेक कार्य लेबनान में बड़े पैमाने पर हुई हत्याएं आदि आतंकवाद एवं साम्प्रदायिकता के इतिहास बन चुके हैं। अनेक विचारको समीक्षकों तथा आलोचकों न` इसका सामाजिक–राजनीतिक स्तर पर कड़ा विरोध किया और अपना मत व्यक्त किया है कि इन समस्याओं का स्थाई हल नहीं हो सकता और न ही इसे सामाजिक मान्यता दी जा सकती है। भले ही कुछ मामलों मे तत्कालीन लाभ मिल गया हो, किन्तु इसके सामाजिक दूरगामी परिणाम अवश्यम्भावी घातक है(6)। साम्प्रदायिक परिपेक्ष में भारत के अनेक प्रान्तों में साम्प्रदायिकता का विष इस प्रकार फैल रहा है कि कोई भी व्यक्ति अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहा है। असम का उग्र आन्दोलन, पृथक गोरखालैण्ड की मांग, झारखण्ड आन्दोलन तथा उत्तराखण्ड की मांग, बोडो आन्दोलन आदि पूरे राष्ट्र के सामने समस्या बनी हुई है। धर्म के नाम पर कहीं हिन्दू अड़ा है तो कहीं मुसलमान कोई भी झुकने को तैयार नहीं है। यदि इस पर विचार किया जाए तो इसे साम्प्रदायिक उन्माद के अतिरिक्त और क्या संज्ञा दी जा सकती है।

निष्कर्ष :–

वर्तमान भारत में मुस्लिम एवं ब्रिटिश काल की तुलना में कहीं अधिक स्वायत्तामूलक क्षेत्रीय उपराष्ट्रवादी प्रवृत्तियां उभरी हैं। ऐसी प्रवृत्ति के विकास और प्रसार में प्रादेशिक निहित स्वार्थों से राजनीतिक दलों का उद्‌भव इसके क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद आदि विपुल समस्याऐं छोटे–छोटे नेताओं के अपने स्वार्थ के कारण जटिल रूप से उभर कर सामने आई है। ऐसी स्थिति में समकालीन भारतीय परिस्थिति में राष्ट्रीय स्तर पर जनचेतना का जागरण धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सहिष्णुता, भारतीय सामाजिक संरचना में हो रहे विखण्डनात्मक परिवर्तनों को समाप्त करने में अधिक उपयोगी हो सकती है। राष्ट्रवाद किसी देश की जनता की सामूहिक चेतना का द्योतक है।

सन्दर्भ :–

1. पाल विपिन चन्द्र (प्रथम) : ''राम मोहन ऐज रिकांसट्रक्टर ऑफ लाइफ एण्ड सोसाइटी'' कलकत्ता म्यूनिसिवल गजट दिसंबर 22, 1928 अंक में प्रकाशित।

   (द्वितीय) : ''राममोहन राय वर्थ सेनेटरी बैलूंम'' भाग–2 पृष्ठ 203–4

2. सरस्वती दयानन्द : ''सत्यार्थ प्रकाश''

3.	पूनियानी राम	:	''साम्प्रदायिकता क्या और क्यों''
4.	मिश्र शिवकुमार	:	''साम्प्रदायिकता और हिन्दी उपन्यास''
5.	गांधी महात्मा	:	''गांधी और साम्प्रदायिक समस्या''
6.	गोखले गोपाल कृष्ण	:	''एसेज इन इण्डियन एकोनामिक्स''

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Green Finance and Smart Energy Systems: India–Japan Cooperation in the Bikaner Solar Project under Industry 4.0

Jai Shri Prajapat
Research Scholar, MSBU, Bharatpur (Rajasthan)

Abstract :

This paper examines the intersection of green finance and smart energy systems in advancing sustainable industrial development within the framework of Industry 4.0, with specific reference to India–Japan cooperation in the Bikaner solar project. As global economies transition toward low-carbon growth, the integration of innovative climate financing mechanisms with digital technologies has emerged as a critical driver of green manufacturing. The study explores how Japan's green finance instruments, including concessional funding and technology-oriented investments, support India's renewable energy expansion and infrastructure development.

Furthermore, the paper analyzes the role of Industry 4.0 technologies such as artificial intelligence (AI), the Internet of Things (IoT), and smart grid systems in enhancing the efficiency, reliability, and scalability of solar energy systems. It argues that these smart energy solutions are instrumental in enabling sustainable manufacturing processes by ensuring optimized energy consumption and reduced carbon emissions in industrial operations.

Adopting a qualitative case study approach, the research evaluates the effectiveness of India–Japan bilateral cooperation in addressing key challenges related to energy security, climate change mitigation, and sustainable economic growth. The findings suggest that the synergy between green finance and digital innovation significantly improves project performance and facilitates the transition toward environmentally sustainable industrial systems. The study concludes that this collaborative model offers valuable insights for other emerging economies seeking to integrate green finance and Industry 4.0 technologies in support of sustainable development and green manufacturing.

Key words : Green Finance, Smart Energy Systems, Industry 4.0, Green Manufacturing, India–Japan Cooperation, Solar Energy, Bikaner Solar Project, Climate Finance, Sustainable Industrial Development, Digital Transformation

1. Introduction :

The increasing urgency of climate change and the global shift toward low-carbon development have fundamentally reshaped the way energy, finance, and industrial systems are structured and governed. Renewable energy, particularly solar power, has emerged as a central pillar of decarbonization strategies across both developed and developing economies. However, despite rapid technological progress and declining costs, the large-scale deployment of renewable energy infrastructure continues to face persistent financial and institutional barriers. In this context, green finance has gained prominence as a mechanism for mobilizing capital toward environmentally sustainable investments, particularly in sectors such as solar energy and clean technology (Alharbi et al., 2022; Taghizadeh-Hesary & Yoshino, 2020).

At the same time, the rise of Industry 4.0 has introduced a new technological dimension to energy systems. The integration of digital technologies such as artificial intelligence (AI), the Internet of Things (IoT), and big data analytics has enabled the development of smart energy systems that can optimize performance, improve efficiency, and reduce operational risks. These technologies allow for real-time monitoring, predictive maintenance, and more effective energy management, thereby enhancing the overall reliability of renewable energy infrastructure (Wang et al., 2022; Kamble et al., 2018). However, existing research suggests that technological innovation alone is insufficient to achieve sustainability outcomes unless it is supported by adequate financial investment and enabling policy frameworks (Huang & Zhao, 2022).

Despite the growing importance of both green finance and Industry 4.0, much of the existing literature treats these domains independently. This separation results in a fragmented understanding of how sustainable industrial systems emerge in practice. In reality, financial and technological transformations are deeply interconnected. Access to finance determines the extent to which advanced technologies can be deployed, while technological efficiency influences the financial viability and long-term sustainability of renewable energy projects (Lee & Lee, 2022). Therefore, the key issue is not simply whether these factors contribute to sustainability, but rather how their interaction shapes outcomes such as green manufacturing and low-carbon industrial development.

India presents a particularly relevant context for examining this interaction. The country has set ambitious renewable energy targets and is rapidly expanding its solar energy capacity. However, it continues to face challenges related to financing, infrastructure development, and technological integration. In this regard, international cooperation has become increasingly significant. Partnerships

between developed and developing countries facilitate not only capital flows but also the transfer of technology and technical expertise, which are essential for scaling sustainable energy systems (Zhang et al., 2021).

This paper focuses on the Bikaner solar project in Rajasthan as a case study to explore these dynamics. The project reflects a growing model of India–Japan cooperation that combines green finance with advanced technological systems. By examining this case, the study seeks to analyze how financial mechanisms and Industry 4.0 technologies interact in practice. It argues that green finance becomes significantly more effective when integrated with smart energy systems and supported by international cooperation, thereby contributing to the development of green manufacturing and sustainable industrial systems**.**

2. Literature Review and Theoretical Framework :

The growing body of literature on green finance reflects its increasing importance in supporting the global transition toward sustainable development. Green finance is broadly understood as the allocation of financial resources to environmentally sustainable activities, particularly renewable energy and low-carbon infrastructure. A number of studies emphasize its catalytic role in mobilizing capital and reducing investment risks associated with clean energy projects (Alharbi et al., 2022; Taghizadeh-Hesary & Yoshino, 2020). From this perspective, financial innovation is seen as a key enabler of large-scale energy transitions. However, this optimistic view is not universally supported. Empirical evidence suggests that the effectiveness of green finance varies across countries and depends heavily on institutional quality, regulatory frameworks, and financial market maturity (Lee & Lee, 2022; Zhang et al., 2021).

In emerging economies, these limitations become particularly pronounced. Structural challenges such as high capital costs, policy uncertainty, and limited access to international climate finance continue to constrain renewable energy investments. While financial instruments such as green bonds and concessional loans have expanded in recent years, their impact remains uneven. This indicates that green finance, although necessary, is not sufficient in isolation. Its effectiveness depends on complementary factors, including technological capability and institutional support.

Parallel to developments in financial systems, the emergence of Industry 4.0 has introduced a transformative technological dimension to energy and industrial processes. Industry 4.0 encompasses a range of digital technologies, including artificial intelligence (AI), the Internet of Things (IoT), and data analytics, which enable real-time monitoring and optimization of systems. Studies suggest that these technologies significantly improve energy efficiency, reduce operational costs, and enhance system reliability (Wang et al., 2022; Kamble et al., 2018). In the context of energy systems, digitalization enables predictive maintenance, efficient load management, and better integration of

renewable energy sources.

Despite these advantages, recent research highlights important limitations. Technological innovation does not automatically lead to environmental sustainability. In some cases, digitalization may improve the efficiency of existing systems without fundamentally reducing carbon emissions. As argued by Huang and Zhao (2022), the environmental impact of technological advancement depends on its alignment with clean energy sources and broader sustainability goals. This suggests that technology must be embedded within a supportive financial and institutional framework to achieve meaningful outcomes.

The concept of green manufacturing provides a useful lens for understanding this integration. Green manufacturing refers to production processes that minimize environmental impact through efficient resource use and the adoption of renewable energy. Achieving such outcomes requires both financial investment and technological innovation. Empirical studies show that the combined use of renewable energy and digital technologies significantly reduces emissions and enhances productivity (Chen et al., 2023; Liu et al., 2017). However, existing research often examines these elements separately, resulting in a fragmented understanding of how sustainable industrial systems develop.

Another critical dimension in the literature is the role of international cooperation. Partnerships between developed and developing countries are increasingly recognized as essential for facilitating sustainable infrastructure development. Such cooperation enables access to finance, technology transfer, and capacity building, all of which are necessary for scaling renewable energy systems (Zhang et al., 2021). Institutions such as the Japan International Cooperation Agency have emphasized the importance of integrated financial and technological support in advancing climate-related projects. Nevertheless, there remains a relative lack of empirical studies that examine how these partnerships function at the project level, particularly in the context of renewable energy deployment.

In order to address these gaps, this study adopts an integrated theoretical perspective that draws on green growth theory and sustainable development. Green growth theory suggests that economic development and environmental sustainability can be achieved simultaneously through efficient allocation of financial and technological resources. Within this framework, green finance is conceptualized as the driver of investment, while Industry 4.0 technologies act as enablers of efficiency and system optimization.

Building on this perspective, the study proposes a techno-financial integration model, which can be summarized as follows :

Green Finance ↓ Smart Energy Systems (Industry 4.0) ↓ Green Manufacturing Outcomes

This framework highlights the interdependence between financial and technological systems. It suggests that the impact of green finance is mediated through the deployment of advanced

technologies, rather than being directly translated into sustainability outcomes. At the same time, it underscores the importance of international cooperation as a facilitating mechanism that connects financial capital with technological capability.

By combining insights from existing literature with a conceptual framework, this section establishes the analytical foundation for examining the Bikaner solar project as a case of integrated green finance and smart energy systems within the broader context of Industry 4.0.

3. Methodology :

This study adopts a qualitative case study approach to examine the interaction between green finance and Industry 4.0 technologies in renewable energy development. The case study method is appropriate as it enables an in-depth analysis of complex relationships between financial mechanisms, technological systems, and institutional frameworks within a real-world context (Kamble et al., 2018). The Bikaner solar project in Rajasthan is selected as the focal case due to its scale, integration of advanced digital technologies, and its association with international financing, particularly under India–Japan cooperation. The case is treated as representative of broader trends in sustainable energy transitions rather than as an isolated example.

The analysis is based on secondary data collected from multiple sources, including Scopus-indexed journal articles, government reports, and institutional publications. This allows for data triangulation and enhances the reliability of the findings.

A thematic analysis approach is employed to examine three key dimensions : (i) green finance mechanisms, (ii) Industry 4.0-enabled smart energy systems, and (iii) implications for green manufacturing. The study focuses on how these elements interact rather than treating them independently (Huang & Zhao, 2022).

While the single-case design limits generalizability, it provides valuable insights into emerging techno-financial dynamics in sustainable development.

4. Case Study and Analysis :

The Bikaner solar project in Rajasthan provides a useful empirical context for examining how green finance and Industry 4.0 technologies interact within renewable energy systems. Rather than representing a purely technological or financial initiative, the project reflects a more integrated model in which capital investment, digital innovation, and international cooperation converge. This makes it particularly relevant for understanding how sustainable industrial systems are operationalized in practice.

A key feature of the project is its financing structure, which highlights the evolving role of climate-oriented financial instruments. The 300 MW solar power project at Karnisar-Bhatiyan village secured approximately JPY 20 billion in financing from the Japan Bank for International Cooperation

under its GREEN operations program. This form of concessional financing plays an important role in reducing capital costs and mitigating investment risks, thereby making large-scale renewable energy projects more feasible. Existing literature supports this observation, suggesting that green finance mechanisms are essential for mobilizing investment in capital-intensive infrastructure (Alharbi et al., 2022; Taghizadeh-Hesary & Yoshino, 2020).

However, the effectiveness of the financing model becomes more apparent when considering the broader funding structure. The involvement of private financial institutions such as MUFG Bank Ltd. and Bank of Yokohama Ltd. indicates the presence of a blended finance approach. In such arrangements, public institutions absorb a portion of the financial risk, thereby encouraging private sector participation. This aligns with empirical findings that highlight the importance of risk-sharing mechanisms in scaling renewable energy investments, particularly in emerging economies (Zhang et al., 2021). At the same time, it raises questions about long-term financial sustainability, especially if projects remain dependent on concessional funding.

From a technological perspective, the Bikaner project incorporates several elements associated with Industry 4.0. The deployment of bifacial photovoltaic modules enhances energy generation efficiency by capturing sunlight from both sides, which is particularly advantageous in high-irradiance regions such as Rajasthan. More significantly, the integration of digital monitoring systems introduces a level of operational intelligence that was largely absent in earlier energy systems. These systems rely on IoT-enabled sensors and data analytics to track performance in real time, identify inefficiencies, and enable predictive maintenance.

The importance of such technologies has been widely discussed in the literature. Studies suggest that digitalization improves energy efficiency and reduces operational costs by enabling more precise system management (Wang et al., 2022; Kamble et al., 2018). In the Bikaner case, these technological features appear to play a critical role not only in enhancing performance but also in improving the economic viability of the project. Higher efficiency translates into increased energy output and lower maintenance costs, which in turn improves financial returns. This reinforces the argument that technological innovation and financial investment are closely interconnected, rather than operating as separate drivers of sustainability (Lee & Lee, 2022).

The implications of this interaction extend to the broader objective of green manufacturing. Access to reliable and clean energy is a fundamental requirement for reducing the environmental impact of industrial production. In regions where industrial expansion is closely linked to energy availability, large-scale solar projects can significantly influence the transition toward low-carbon manufacturing systems. The Bikaner project contributes to this transition by supplying renewable electricity supported by advanced monitoring systems, thereby enabling more efficient and sustainable

industrial processes. Empirical studies support this linkage, indicating that the combined use of renewable energy and digital technologies leads to measurable reductions in carbon emissions and improvements in productivity (Chen et al., 2023; Liu et al., 2017).

At the same time, the case also reveals several constraints that complicate this transition. High upfront investment costs remain a significant barrier, particularly for smaller firms that may not have access to concessional financing. Regulatory uncertainties and administrative delays can further affect project implementation and investor confidence. Additionally, the effective deployment of Industry 4.0 technologies requires technical expertise and skilled labor, which may not always be readily available in all regions. These challenges are consistent with broader findings in the literature, which emphasize the importance of institutional capacity and policy support in enabling sustainable energy transitions (Huang & Zhao, 2022).

Another important dimension of the Bikaner project is the role of international cooperation. The collaboration between India and Japan extends beyond financial investment to include technological support and knowledge transfer. Frameworks such as the India–Japan Clean Energy Partnership facilitate this cooperation by aligning policy objectives and promoting joint initiatives in renewable energy and clean technology. Development agencies such as the Japan International Cooperation Agency have also emphasized the importance of such partnerships in supporting sustainable infrastructure development. In this context, international cooperation functions as a bridge that connects financial capital with technological capability.

Taken together, the evidence from the Bikaner solar project suggests that the transition toward sustainable industrial systems is not driven by a single factor, but by the interaction of multiple elements. Green finance provides the necessary capital for project development, while Industry 4.0 technologies enhance efficiency and operational performance. International cooperation further strengthens this process by facilitating access to both financial and technological resources.

This integrated dynamic supports the central argument of the study : green finance and digital technologies function as mutually reinforcing systems, where financial investment enables technological deployment, and technological efficiency enhances financial viability and sustainability outcomes.

5. Conclusion and Policy Implications :

This study set out to examine how green finance and Industry 4.0 technologies interact in shaping sustainable energy systems, using the Bikaner solar project as an empirical case. The analysis demonstrates that neither financial mechanisms nor technological innovations alone are sufficient to drive sustainability transitions. Instead, it is their interaction that produces meaningful outcomes in terms of efficiency, scalability, and environmental impact.

The findings indicate that green finance plays a foundational role by enabling large-scale renewable energy investments, particularly in capital-intensive sectors such as solar power. Instruments such as concessional loans and blended finance structures reduce investment risks and attract private sector participation, thereby expanding the scale of renewable energy deployment (Alharbi et al., 2022; Taghizadeh-Hesary & Yoshino, 2020). However, the study also shows that the effectiveness of such financial mechanisms depends on how they are integrated with technological systems.

In this regard, Industry 4.0 technologies significantly enhance the performance and economic viability of renewable energy projects. Digital tools such as IoT-based monitoring, data analytics, and predictive maintenance improve operational efficiency and reduce long-term costs (Wang et al., 2022; Kamble et al., 2018). As a result, technological innovation not only contributes to environmental sustainability but also strengthens the financial attractiveness of projects. This reinforces the argument that financial and technological systems are mutually reinforcing rather than independent (Lee & Lee, 2022).

The case of the Bikaner solar project further highlights the importance of international cooperation in facilitating this integration. Partnerships between countries, particularly those involving both financial support and technological transfer, play a crucial role in enabling sustainable infrastructure development (Zhang et al., 2021). Such collaborations help bridge gaps in capital, expertise, and institutional capacity, especially in emerging economies.

From a policy perspective, the findings suggest the need for more integrated approaches to sustainable development. Governments should focus on strengthening green finance frameworks while simultaneously promoting the adoption of digital technologies in energy systems. This includes creating supportive regulatory environments, improving access to finance, and investing in skill development to support the deployment of advanced technologies (Huang & Zhao, 2022). Policies that treat finance and technology as separate domains are unlikely to achieve optimal outcomes.

At a broader level, the study contributes to ongoing academic debates by emphasizing the importance of systemic integration in sustainability transitions. It proposes that future research should move beyond isolated analyses of finance or technology and instead examine their interaction within specific institutional and policy contexts. While the present study is limited by its reliance on a single case and secondary data, it provides a foundation for further empirical research, including comparative case studies and primary data analysis.

In conclusion, the transition toward green manufacturing and sustainable industrial systems requires a coordinated approach that brings together financial innovation, technological advancement, and international cooperation. The Bikaner solar project illustrates how such integration can be achieved in practice, offering insights that are relevant not only for India but also for other developing

economies pursuing similar sustainability goals.

References :

- Alharbi, R. K., Al Mamun, M., & Uddin, G. S. (2022). Green finance and renewable energy: Evidence from a global perspective. Energy Economics,108,105890. https://doi.org/10.1016/j.eneco.2022.105890?
- Chen, Y., Wang, Z., & Zhong, Z. (2023). The impact of digital economy on green development: Evidence from emerging economies. Technological Forecasting and Social Change, 189, 122337. https://doi.org/10.1016/j.techfore.2023.122337?
- Huang, Y., & Zhao, X. (2022). Does green finance promote sustainable development? Evidence from panel data. Journal of Cleaner Production, 344, 131103. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2022.131103?
- International Energy Agency. (2022). World energy outlook 2022. Paris: International Energy Agency. https://www.iea.org/reports/world-energy-outlook-2022?
- Japan Bank for International Cooperation. (2024). Loan agreement for solar power project in India under GREEN operations. https://www.jbic.go.jp/en/?
- Japan International Cooperation Agency. (2021). Climate finance and sustainable infrastructure initiatives. https://www.jica.go.jp?
- Kamble, S. S., Gunasekaran, A., & Gawankar, S. A. (2018). Sustainable Industry 4.0 framework: A systematic literature review. Sustainable Production and Consumption, 15, 34–45. https://doi.org/10.1016/j.spc.2018.05.006?
- Lee, C. C., & Lee, C. C. (2022). How does green finance affect green total factor productivity? Evidence from China. Energy Economics, 107, 105863. https://doi.org/10.1016/j.eneco.2022.105863?
- Liu, X., Zhang, S., & Bae, J. (2017). The impact of renewable energy consumption on carbon emissions: Evidence from panel data. Journal of Cleaner Production,172, 4231–4238. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2017.02.087?
- Ministry of External Affairs, Government of India. (2025). India–Japan Clean Energy Partnership and Joint Crediting Mechanism developments. https://mea.gov.in?
- Ministry of New and Renewable Energy. (2023). Annual report 2022–23. Government of India. https://mnre.gov.in?
- MUFG Bank Ltd. (2024). Sustainable finance initiatives and participation in renewable energy projects.
- NITI Aayog. (2021). India's energy transition: Pathways for sustainable development.

Government of India. https://www.niti.gov.in?

- NHPC Limited. (2024). 300 MW Bikaner solar power project: Investment and project details.
- SJVN Green Energy Limited. (2025). Commissioning of Bikaner solar power project.
- Taghizadeh-Hesary, F., & Yoshino, N. (2020). Sustainable solutions for green financing and investment in renewable energy projects. Energies, 13(4), 788. https://doi.org/10.3390/en13040788?
- Wang, Y., Li, X., & Chen, H. (2022). Digital finance innovation and green manufacturing: Evidence from Industry 4.0 adoption. Sustainability, 14(3), 1125. https://doi.org/10.3390/su14031125?
- World Bank. (2022). Climate finance for sustainable development. https://www.worldbank.org?
- Zhang, D., Mohsin, M., Rasheed, A. K., Chang, Y., & Taghizadeh-Hesary, F. (2021). Public spending and green economic growth in BRI region: Mediating role of green finance. Energy Policy, 153, 112256. https://doi.org/10.1016/j.enpol.2021.112256?

(jaishriprajapat2@gmail.com)

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

उदय प्रकाश जी का जीवन परिचय

सुशील कुमार, शोधार्थी
हिंदी विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।

प्रस्तावना –

समकालीन हिंदी साहित्य में उदय प्रकाश जी का नाम अत्यंत सम्मान से लिया जाता है। उदय प्रकाश जी को जन्मजात प्रतिभा के साथ–साथ व्यक्तित्व की भी संपूर्णता के लिए भी जाना जाता है। उदय प्रकाश जी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने उत्तर आधुनिक भारतीय समाज में फैली समस्याओं, सामाजिक विषमताओं, आर्थिक असमानताओं, राजनीतिक षडयंत्रों और मानवीय संवेदनाओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उदय प्रकाश जी एक साहित्यकार की सभी रंगों कविता, निबंधकार, पत्रकार, अनुवादक तथा चिंतक आदि रंगों से लबालब हैं। उनके साहित्य में आप आम आदमी के संघर्ष, राजनीतिक षड्यंत्र, बदलते परिवेश, बदलते सामाजिक संबंधों व स्त्री शोषण को हाशिए पर खड़े लोगों के जीवन को स्पष्ट व सफलतापूर्वक इनके साहित्य में उतरता देख सकते हैं। 'यह एक बानगी है उदय प्रकाश के बहुविध लेखन की जिसमें हम अपनी सभ्यता के उन सभी पक्षों पर विमर्श देख पाते हैं जिनसे परोक्ष या प्रत्यक्ष हम सब प्रभावित होते हैं सही अर्थ में उदय प्रकाश का लेखन अपने निहितार्थ में एक नैतिक पराक्रम और उससे भी अधिक एक सभ्यता विमर्श है। हमारे समय में इस कृति लेखन का होना अपने आप में सुखद तो है मंगलकारी अवलंब है।''[1]

जन्म एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि :–

उदय प्रकाश जी का जन्म 1 जनवरी 1952 को मध्य प्रदेश के तत्कालीन शहडोल जिले (वर्तमान अनूपपुर) के सीतापुर गांव में हुआ। उनका परिवार सामान्य आर्थिक स्थिति वाला था, किंतु शिक्षा और सांस्कृतिक मूल्य से समृद्ध था। ग्रामीण परिवेश में रहे आदिवासी, संस्कृति को नजदीक से जिया, प्रकृति की गोद में पले–बड़े हुए। इन्होंने वही अपना बचपन बिताया जो कि उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बचपन में ही माता–पिता की अकाल मृत्यु से उनके जीवन पर घोर संकट के पहाड़ टूट पड़े, इसी समय के दौरान ही इनका जीवन की कठोर वास्तविकताओं से परिचय हुआ। यही अनुभव आगे चलकर उनकी कहानियों में संवेदनशीलता और यथार्थवाद के रूप में दिखाई देते हैं।

शिक्षा :–

इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। अगली कक्षा में जब यह हुए तो दूसरे गांव में जाना पड़ा और उच्च शिक्षा के लिए इनको फिर सागर विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। यहीं से इन्होंने हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने स्वयं कहा है:– 'मैं मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के सीतापुर क्षेत्र का हूं। वह वहां

की 82 प्रतिशत आबादी गोद, कॉल और अन्य आदिवासियों की है। यह इलाका छोटा नागपुर इलाके तक है। मेरी पढ़ाई लिखाई इस परिवेश में हुई थी वहीं का जीवन मेरा परिवेश था। कुमार सुरेश मेरे फुफेरे भाई हैं, उन्होंने झारखंड पर काफी काम किया है। मैंने शुरूवात पेंटिंग और कहानियों से की। कहानियों में मेरी मां का हाथ था। पिता साहित्यिक अभिरुचि के थे। घर में साहित्यिक पत्रिकाएं आई थी।''[2] यह सब उनकी ग्रामीण जीवन को अच्छे से बताता है।

साहित्य की जीवन :–

उदय प्रकाश जी ने अपना साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविताओं से की थी, परंतु आगे चलकर उनकी पहचान कहानीकार के रूप में हुई। उनकी कहानियों ने हिंदी कथा साहित्य को नए पायदान पर पहुंचा। एक नवीन दृष्टिकोण समाज को दिया, नई भाषा और नई तथ्य प्रदान किया। अपने कथा साहित्य में उदय प्रकाश जी ने हाशिए के लोगों को आवाज दी, स्त्री, आदिवासी, अछूत आदि को अपने साहित्य के केंद्र में रखा। उनकी रचनाओं में भूमंडलीकरण, बाजारवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, जातिवाद, भेदभाव, सत्ता की निरंकुशता, मानवीय मूल्यों का हनन, एकांकीपन, नशाखोरी, संस्कृत हीनता, परिवारों का विघटन, तलाक आदि अनेकों संकटों का प्रभावशाली चित्रण अपनी रचनाओं में इन्होंने किया है।'

टेपचू, राम सजीवन की प्रेम कथा, तिरिछ और अंत में प्रार्थना, पॉल गोमरा का स्कूटर, वारेन हेस्टिंग्स का सेंड, छप्पन तोले का करधन, पीली छतरी वाली लड़की, दिल्ली की दीवार, मैगोलिस और मोहनदास आदि कहानियों में उन सभी समाज का वर्णन देखने को मिलता है। जो समाज की धारा से या विकास की धारा से कटे हुए हैं, इन सब कहानियों में इन्होंने साहित्य के सभी गुना को देखा जा सकता है। अपने समय के यथार्थ की इतनी गहरी पकड़ और उसके बर्ताव का ऐसा स्थापत्य हिंदी के किसी भी कहानीकार में नहीं है।

प्रमुख कृतियां :–

उदय प्रकाश जी की प्रमुख कृतियां निम्नलिखित हैं :–

तिरिछ, मोहनदास, पीली छतरी वाली लड़की, दरियाई घोड़ा और अंत में प्रार्थना, वारेन हेस्टिंग्स का सेंड, पॉल गोमरा का स्कूटर, ''इनकी अनेक रचनाओं का भारतीय व विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है।

मुख्य कहानियों का संक्षिप्त परिचय :–

- **तिरिछ :** अंधविश्वास, भय और सामाजिक विडंबनाओं पर आधारित कहानी। 'तिरिछ' एक प्रतीक है, जो आधुनिक मनुष्य के भीतर के डर और असुरक्षा को दर्शाता है।
- **मोहनदास :** एक प्रतिभाशाली दलित युवक की पहचान और नौकरी छीन लिए जाने की मार्मिक कथा। यह भ्रष्ट प्रशासन और सामाजिक अन्याय पर तीखा प्रहार करती है।
- **पीली छतरी वाली लड़की :** महानगरीय जीवन, प्रेम, अकेलापन, उपभोक्तावाद और बदलते सामाजिक मूल्यों का चित्रण करने वाली लंबी कहानी।
- **वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड़ :** औपनिवेशिक मानसिकता, सत्ता और इतिहास की विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक कथा।
- **पॉल गोमरा का स्कूटर :** निम्न–मध्यवर्गीय व्यक्ति के सपनों, संघर्ष और उपभोक्तावादी समाज की विडंबनाओं का चित्रण।
- **दत्तात्रेय के दुःख :** आधुनिक जीवन में संवेदनहीनता, अकेलेपन और मानवीय मूल्यों के क्षरण को दर्शाती

कहानी।

- **और अंत में प्रार्थना :** हिंसा, सांप्रदायिकता और मानवीय करुणा के बीच संघर्ष की कथा।
- **दरियाई घोड़ा :** मनुष्य और व्यवस्था के टकराव तथा सामाजिक विसंगतियों को प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत करती है।
- **मैंगोसिल :** वैश्वीकरण, बाजारवाद और बदलते ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण।
- **अरेबा–परेबा :** हाशिए पर पड़े लोगों के जीवन, उनकी पीड़ा और सामाजिक असमानता को उजागर करने वाली कहानी।

उदय प्रकाश की प्रमुख कविता–संग्रहों का संक्षिप्त परिचय :

- **सुनो कारीगर :** यह उनका प्रारंभिक कविता–संग्रह है। इसमें श्रमिकों, किसानों और आम जनजीवन के संघर्ष, श्रम की गरिमा तथा सामाजिक विषमता का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।
- **अबूतर–कबूतर :** इस संग्रह की कविताओं में आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, राजनीतिक विडंबनाएँ और मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप को प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त किया गया है।
- **रात में हारमोनियम :** यह संग्रह मनुष्य के अकेलेपन, स्मृतियों, समय–बोध और सामाजिक यथार्थ को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है। इसमें उत्तर–आधुनिक चेतना और मानवीय करुणा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

साहित्यिक विशेषताएं :–

उदय प्रकाश जी की रचनाओं की मुख्य विशेषताएं कुछ इस तरह से हैं। उनकी रचनाओं में आधुनिक उत्तर आधुनिक जीवन के यथार्थ दर्शन किए जा सकते हैं। हाशिए पर जो लोग हैं उनका जीवन इस 21वीं शताब्दी में कितना कष्ट में है, वह स्पष्ट देखा जा सकता है। सत्ता के लोलूप व्यवस्था का किस तरह से मजाक बनाया गया है और सत्ता के माध्यम से किस प्रकार अनुचित कार्य करते हैं, यह स्पष्ट रूप से बताया गया है। उनकी भाषा प्रतीकात्मक और यथार्थ का मिश्रण है सरल व प्रभावशाली और संवाद आत्मक भाषा का इन्होंने अपनी कहानियों में प्रयोग किया है। उनकी भाषा सदेव ही सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के प्रति प्रतिबद्ध रही है। सम्माननीय भाषा का प्रयोग करते हुए अपने दायित्व का निर्वहन उन्होंने किया है।

सम्मान एवं पुरस्कार :–

उदय प्रकाश जी को उनके साहित्यिक योगदान के लिए अनेक सम्मान व पुरस्कार मिले हैं इनको भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार (1980), ओम प्रकाश साहित्य सम्मान (1982), श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार (1992), मुक्तिबोध पुरस्कार (1996), साहित्यकार सम्मान हिंदी अकादमी दिल्ली (1999), रामकृष्ण जयदयाल सद्भावना सम्मान (1997), पहल सम्मान (2003), कथा क्रम सम्मान (2005), पुश्किन सम्मान (2006), द्विज देव सम्मान (2006–7), सार्क लिटरेरी अवॉर्ड (2009), साहित्य अकादमी पुरस्कार (2011), भारतीय भाषा परिषद अवार्ड (2011) और फाइनलिस्ट इन डीएमसी अवॉर्ड फॉर साउथ एशियन लिटरेचर (जान मिकलिस्सकी अवार्ड स्विट्जरलैंड 2013) में मिले हैं।

अन्य कृतियों :–

उनकी इस प्रकार से हैं सुनोकारीगर, अबूतर कबूतर, रात में हारमोनियम, एक भाषा हुआ करती है, नई सदी के लिए चयन 50 कविताएं (कविता संग्रह हैं), दत्तात्रेय के दुख, ईश्वर की आंख, अपनी उनकी बात और

नई सदी का पंचतंत्र इनके (निबंध, आलोचना, साक्षात्कारों का संकलन है)

अनुवाद :–

लाल घास पर नीले घोड़े (मिखाइल शातरेव के नाटक का अनुवाद और रूपांतरण है) कला अनुभव (प्रोफेसर हरियन्ना की सौंदर्य शास्त्रीय पुस्तक का अनुवाद है) इंदिरा गांधी की आखिरी लड़ाई (बीबीसी संवाददाता मार्क टली सतीश जैविक की किताब का हिंदी अनुवाद) रोम्यं रोला का भारत (आशिक अनुवाद और सम्पादन)'।

उदय प्रकाश जी का कार्य क्षेत्र :–

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और इसके मणिपुर केंद्र में लगभग 4 वर्ष का अध्ययन, संस्कृत विभाग मध्य प्रदेश भोपाल में लगभग 2 वर्ष की विशेष कर्तव्यवस्था अधिकारी, इसी दौरान 'पूर्व गृह' का सहायक संपादन, 9 वर्षों तक टाइम्स आफ इंडिया के समाचार पाक्षिक श्दिनमानश के संपादकीय विभाग में नौकरी की, बीच में एक टाइम्स रिसर्च फाउंडेशन के स्कूल आफ सोशल जर्नलिज्म में अध्यापन किया, लगभग 2 वर्ष पीटीआई टेलीविजन और 1 वर्ष इंडिपेंडेंस टेलीविजन में विचार और पटकथा प्रमुख का कार्य भी इन्होंने किया है, कुछ समय संडे मेल में वरिष्ठ सहायक संपादक रहे हैं। इन दिनों स्वतंत्र लेखन और फिल्म और मीडिया के लिए लेखन का कार्य करते हैं।

हिंदी साहित्य में योगदान :–

इन्होंने साहित्य को नया स्वर नयी संवेदना और नई वैचारिक दिशा प्रदान की है, इन्होंने बदलते भारतीय परिवेश को बहुत ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। इनका साहित्य केवल साहित्य नहीं है यह सामाजिक दस्तावेज है जिसमें भूमंडलीकरण, बदलते बाजार की रौनकें चकाचौंध में गुल होते नवियुवक व समाज पथ भ्रष्ट होता जा रहा है। जिसको उदय प्रकाश जी ने बहुत सफलतापूर्वक अपने साहित्य में उतारा है।

निष्कर्ष :–

समकालीन हिंदी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने अपने अनुभव, संवेदनशीलता, वैचारिक दृष्टि से हिंदी कथा साहित्य को समृद्धि प्रदान की है। उनकी प्रकृति आज भी सामाजिक यथार्थ को समझने में हमारी बहुत मदद करती है और भविष्य में भी उनका साहित्य शोध का मुख्य विषय बनता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नैतिक पराक्रम से भरा सभ्यता का विमर्श, ज्योतिष जोशी, पृष्ठ नंबर 56, संवेद सितंबर 2008।
2. अपनी उनकी बात, उदय प्रकाश, पृष्ठ नंबर 143।
3. नई सदी का पंचतंत्र, उदय प्रकाश, पृष्ठ नंबर 237
4. पीली छतरी वाली लड़की, उदय प्रकाश फ्लैप से।
5. उदय प्रकाश, एक भाषा हुआ करती है के फ्लैट से।
6. वारेन हेस्टिंग्स का सांड के फ्लाप से।

sushilbarot01@gmail.com
7206313009

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

संत कबीर के काव्य में योग, ज्ञान और प्रेम का समन्वय

सुशीला, शोधार्थी, पीएच.डी. (हिंदी)
डॉ. शिवचरण शर्मा, शोध निर्देशक एवं आचार्य,
हिन्दी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान–335801

आलेख सार :

हिंदी साहित्य के महान संत–कवि कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के ऐसे युगदृष्टा कवि हैं, जिन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से आध्यात्मिकता, सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया। उनके काव्य में योग, ज्ञान और प्रेम तीनों का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। कबीर के अनुसार आध्यात्मिक जीवन की सफलता के लिए इन तीनों का संतुलित समन्वय आवश्यक है। योग मन को संयमित और शुद्ध करता है, ज्ञान आत्मबोध एवं सत्य का बोध कराता है तथा प्रेम मनुष्य को ईश्वर के साथ आत्मिक एकता की ओर अग्रसर करता है। कबीर बाह्य आडंबर, कर्मकांड और दिखावटी साधना का विरोध करते हुए अनुभवजन्य ज्ञान तथा निष्कपट प्रेम को सर्वोच्च स्थान देते हैं। उनका संपूर्ण काव्य मानवता, समरसता और आध्यात्मिक चेतना का संदेश देता है। यही कारण है कि उनकी वाणी आज भी समान रूप से प्रासंगिक और प्रेरणादायी है।

मुख्य शब्द : कबीर, योग, ज्ञान, प्रेम, निर्गुण भक्ति, आत्मबोध, आध्यात्मिकता।

प्रस्तावना :

कबीर के काव्य में योग का अर्थ केवल शारीरिक अभ्यास या कठिन तपस्या नहीं है, बल्कि आत्मसंयम, मन की एकाग्रता तथा ईश्वर से आंतरिक जुड़ाव है। वे बाहरी साधना की अपेक्षा अंतर्मन की साधना को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि जब तक मन शुद्ध नहीं होगा, तब तक ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। इसलिए वे योग को आत्मशुद्धि और आत्मानुभूति का साधन मानते हैं। कबीर का योग जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के मध्य रहते हुए आत्मिक जागरण का मार्ग है।

कबीर की साधना–पद्धति में योग, ज्ञान और प्रेम का त्रिवेणी–संगम दिखाई देता है। यही समन्वित दृष्टि उनकी आध्यात्मिक साधना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के संबंध में लिखा है ''कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।'' वे आगे यह भी स्पष्ट करते हैं कि 'कबीरदास योग–मार्ग की ओर झुके हुए थे।' इस कथन से स्पष्ट होता है कि कबीर की सहज साधना में योग का केंद्रीय स्थान है। उनके लिए योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मन की शुद्धि, आत्मसंयम तथा परमात्मा के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रभावी साधन है।

कबीर की योग–साधना में कुंडलिनी जागरण और षट्चक्र–भेदन की अवधारणा का विशेष महत्त्व है।

उनके अनुसार साधक योगाभ्यास के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार अथवा शून्य मंडल तक पहुँचता है, जहाँ उसे दिव्य आनंद और ब्रह्मानुभूति की प्राप्ति होती है। इसी कारण वे योगी का अत्यंत सम्मान करते हुए कहते हैं :–

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै।।
मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यों तन लागी।।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहँ जोन्हीं जागी।।
मनवा जाइ दरीबै बैठा, गगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाँही, सबद अनाहद बागा।।

इस पद में कबीर साधक को सहस्रार चक्र में स्थित होने का संदेश देते हैं। उनका विश्वास है कि जब कुंडलिनी मूलाधार से ऊपर उठकर सुषुम्ना मार्ग द्वारा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है, तब साधक काम और क्रोध जैसे विकारों पर विजय प्राप्त कर लेता है। परिणामस्वरूप उसका संशय समाप्त हो जाता है और वह अनाहद नाद के दिव्य अनुभव से परिपूर्ण हो जाता है।

योग–दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त महाशक्ति का सूक्ष्म अंश प्रत्येक मनुष्य के भीतर कुंडलिनी के रूप में विद्यमान रहता है। इसका निवास मेरुदंड के निचले भाग में स्थित अग्निचक्र में माना गया है। इसके ऊपर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाकृये छह चक्र स्थित हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से षट्चक्र कहा जाता है। इन सबके ऊपर सहस्रार या शून्य चक्र स्थित है, जिसे कबीर 'गगन मंडल' की संज्ञा देते हैं।

सामान्य अवस्था में कुंडलिनी सुप्त रहती है, किंतु योगाभ्यास और प्राणायाम की सिद्धि से यह जागृत होकर ऊपर की ओर गतिमान होती है। इस आरोहण की प्रक्रिया में साधक इंद्रिय–विकारों पर विजय प्राप्त करता है और क्रमशः सभी चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक पहुँचता है। इसी अवस्था में दिव्य नाद की अनुभूति होती है तथा ब्रह्मरंध्र से अमृत–सदृश आध्यात्मिक आनंद का अनुभव प्राप्त होता है। कबीर ने अपने अनेक पदों में इस अलौकिक अनुभूति का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है।

यद्यपि कबीर की साधना में योग का विशेष स्थान है, तथापि उसका वास्तविक स्वरूप ज्ञान और प्रेम के समन्वय से ही पूर्ण होता है। कबीर के अनुसार आत्मज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। गुरु के मार्गदर्शन से साधक के समस्त भ्रम समाप्त हो जाते हैं, हृदय–कमल विकसित होता है तथा आत्मा में दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल जाता है। ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य अज्ञानरूपी निद्रा से जाग उठता है और परमब्रह्म के साक्षात्कार का अधिकारी बनता है। इस अनुभूति को कबीर निम्नलिखित पद में व्यक्त करते हैं :–

अब मैं, पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान,
सहज समाधि सुख में रहिबो, कोटि कलप विश्राम।। टेक।।
गुरू कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हृदय कँवल विगासा।
भाग भ्रम दसों दिस सूझया, मरम ज्योति प्रकासा।।
मृतक उठा धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा।
उदय सूर निस किया पयाँना, सोवत थैं जब जागा।।

अविगत अकल अनुपम देख्या, कहता कह्या न जाई।

सैन करै मन हो मर रहसै, गूँग जोंनि मिठाई।।

इस पद में कबीर बताते हैं कि गुरु–कृपा से प्राप्त ब्रह्मज्ञान साधक के अंतःकरण को प्रकाशित कर देता है। अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है, हृदय में सत्य का प्रकाश फैल जाता है और साधक उस परम सत्ता का अनुभव करता है जिसका वर्णन शब्दों में संभव नहीं। यह अनुभव उसी प्रकार अवर्णनीय है जैसे कोई गूंगा व्यक्ति मिठाई का स्वाद तो जानता है, पर उसका वर्णन नहीं कर सकता।

कबीर ने प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का सर्वोच्च साधन माना है। उनके अनुसार प्रेम के बिना न योग सफल हो सकता है और न ज्ञान सार्थक। प्रेम मनुष्य के अहंकार का अंत करता है तथा उसे परमात्मा से जोड़ता है। कबीर का प्रेम सांसारिक आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मिलन की अनुभूति है। इस सत्य को वे निम्नलिखित दोहे में व्यक्त करते हैं :–

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।

प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं।।'

इस दोहे में कबीरदास बताते हैं कि जब तक मनुष्य का अहंकार विद्यमान है, तब तक ईश्वर की अनुभूति संभव नहीं। प्रेम की राह अत्यंत संकीर्ण है, जहाँ केवल ईश्वर का ही स्थान है। कबीरदास की प्रेम–साधना में संयोग और वियोग दोनों की अभिव्यक्ति मिलती है, किंतु उन्होंने विशेष रूप से विरह को आध्यात्मिक साधना की सर्वोच्च अवस्था माना है। वे कहते हैं :–

पासा पकड्या प्रेम का, सारी किया सरीर।

सतगुर दावा बताइया, खेलै दास कबीर।।

इस साखी में प्रेम को साधना का आधार बताया गया है। गुरु के मार्गदर्शन में साधक प्रेम को ही अपनी साधना का मुख्य साधन बनाता है।

कबीरदास का मत है कि जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम नहीं और जिसकी वाणी पर राम का स्मरण नहीं, उसका जीवन निष्फल है :–

जिहि घट प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।

ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम।।

वे प्रेम और ज्ञान को परस्पर पूरक मानते हैं। प्रेम साधना की प्रेरणा देता है और ज्ञान उसे सही दिशा प्रदान करता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं :–

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।

ग्याँन खड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार।।

यहाँ प्रेम को घोड़े और ज्ञान को तलवार के रूप में रूपायित किया गया है। साधक प्रेमरूपी अश्व पर आरूढ़ होकर ज्ञानरूपी शस्त्र से विषय–वासनाओं और मृत्यु–भय पर विजय प्राप्त करता है।

कबीर ने परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ प्रेम को आदर्श मानते हुए पतिव्रता नारी का उदाहरण प्रस्तुत किया है :–

सती बिलारी सत किया, काठी सृज बिछाई।

ले सूती पिव अपणां, चहूँ दिसी अगनि लगाई।।

इस प्रतीक के माध्यम से वे यह स्पष्ट करते हैं कि साधक का समर्पण भी उतना ही पूर्ण और निष्कपट होना चाहिए जितना एक पतिव्रता स्त्री का अपने पति के प्रति होता है। 'निहकर्मी पतिव्रता को अंग' में कबीर ने दाम्पत्य–प्रतीकों के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के मधुर संबंध का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। उनके अनुसार साधक के हृदय में एक बार परमात्मा का निवास हो जाने पर वहाँ किसी अन्य के लिए स्थान नहीं रहता।

इसी प्रकार 'विरह कौ अंग' में कबीर ने परमात्मा से वियोग की पीड़ा को आध्यात्मिक उत्कंठा के रूप में चित्रित किया है। यहाँ विरहिणी आत्मा साधक का तथा प्रियतम परमात्मा का प्रतीक है। परमात्मा के दर्शन की तीव्र अभिलाषा ही साधना को पूर्णता प्रदान करती है। कबीर के अनुसार यही विरह साधना का सर्वोच्च भाव हैः–

बिरहा बिरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।

कबीर के मत में जिस साधक के हृदय में ईश्वर–मिलन की तीव्र व्याकुलता नहीं है, उसका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से निष्प्राण है। विरह ही साधना को जीवंत बनाता है और अंततः परमात्मा से मिलन का मार्ग प्रशस्त करता है।

योग, ज्ञान और प्रेम का समन्वय :

कबीर के काव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता योग, ज्ञान और प्रेम का समन्वय है। उन्होंने इन तीनों को परस्पर पूरक माना है। योग मन को संयमित और शुद्ध करता है, ज्ञान सत्य एवं आत्मबोध का मार्ग प्रशस्त करता है और प्रेम ईश्वर से आत्मिक मिलन की अनुभूति प्रदान करता है। यदि इनमें से किसी एक का अभाव हो तो आध्यात्मिक साधना अधूरी रह जाती है। कबीर के अनुसार प्रेम के बिना ज्ञान अहंकार में परिवर्तित हो सकता है और योग केवल बाहरी अभ्यास बनकर रह जाता है। इसलिए इन तीनों का संतुलित समन्वय ही मनुष्य को पूर्ण आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है।

निष्कर्ष :

कबीर के काव्य में योग, ज्ञान और प्रेम का अद्वितीय समन्वय भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की अमूल्य धरोहर है। उन्होंने योग को आत्मसंयम, ज्ञान को आत्मबोध और प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का सर्वोच्च साधन माना। बाह्याचार, कर्मकांड और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए उन्होंने सहज, सरल और अनुभवपरक साधना का मार्ग प्रस्तुत किया। उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण न केवल उनके युग में बल्कि आज भी मानव समाज के लिए समान रूप से उपयोगी और प्रासंगिक है। इसी कारण कबीर की वाणी कालजयी, सार्वभौमिक और मानवीय मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति मानी जाती है।

संदर्भ सूची :

1. कबीर, संस्करण 2016,
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर।
4. कबीर ग्रंथावली।
5. हिंदी भक्ति साहित्य से संबंधित मानक आलोचनात्मक ग्रंथ।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारत की परमाणु नीति

डॉ० सपना सिंह
Assistant Professor (राजनीति विज्ञान)
रामललित सिंह महिला महाविद्यालय, कैलहट, चुनार, मिर्जापुर।

भारत की परमाणु नीति की शुरुआत 1948 में हुई, जिसका उद्देश्य भारत की विकासीय आवश्यकताओं के लिए परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण प्रयोग से था। प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने परमाणु शक्ति की इस भूमिका को देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण माना। श्री नेहरू के इस विचार को डॉ० भाभा के विचारों से और बल मिला। भारत के सभी प्रमुख नेताओं तथा वैज्ञानिकों का विश्वास था कि आणविक शक्ति भविष्य में अर्थव्यवस्था तथा एक अविकसित तथा अल्प ऊर्जा वाले देश की विकासीय आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

भारत का परमाणु कार्यक्रम पूरी तरह से अपने ही द्वारा विकसित ज्ञान के आधार पर आगे बढ़ा, क्योंकि अमेरिका, रूस, फ्रांस आदि देशों ने परमाणु ऊर्जा से संबंधित सूचनाओं के प्रकाशन पर पाबन्दी लगा रखी थी, लेकिन भारतीय वैज्ञानिकों ने इसकी परवाह न करते हुए अपने ज्ञान और तकनीकी के बल पर इसके विकास को आगे बढ़ाया। कनाडा के सहयोग से ट्रॉम्बे में "सायरस" रियेक्टर का निर्माण हुआ, जिससे परमाणु अनुसंधान के आधार को काफी मजबूती मिली। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइजनहावर ने 1955 में शान्ति के लिए परमाणु शक्ति के इस्तेमाल पर जोर देते हुए पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन जिनेवा में सम्पन्न कराया। भारत में परमाणु युग का सूत्रपात करने वाले भाभा को इस सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया, परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए पहला परमाणु बिजली घर की स्थापना 1969 में तारापुर में की गयी, इसे अमेरिकी परमाणु उद्योग की मदद से बनाया गया था।

देश का दूसरा परमाणु बिजली घर कनाडा के सहयोग से राजस्थान में खोला गया था। भारत ने 18 मई, 1974 को अपना पहला भूमिगत परमाणु परीक्षण स्वयं के प्रयत्नों से किया तथा परमाणु क्लब में प्रवेश किया। भारत का यह पहला परमाणु परीक्षण पूर्ण रूप से शान्तिपूर्ण तथा नियंत्रित था। यह मुख्य रूप से खदानों के विकास, बांध बनाने, बन्दरगाहों के निर्माण तथा खनिजों की खोजों जैसे शान्तिपूर्ण उद्देश्य के लिए विकसित किया गया था। स्वयं श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा कि "भारत की परमाणु नीति पूर्णतया शान्तिपूर्ण है तथा भारत परमाणु शस्त्रों के निर्माण का विरोध करता है।" 1998 में जब भाजपा गठबंधन की सरकार बनी तो भारत की परमाणु नीति में मूलभूत परिवर्तन हुआ। भारतीय सुरक्षा हितों, विश्व में परमाणु शस्त्रधारकों की परमाणु एकाधिकार नीति, परमाणु निःशस्त्रीकरण की मांग को पूर्ण रूप में परमाणु शस्त्र धारकों द्वारा अनदेखा करने की नीति, भारत के पड़ोस में

परमाणु चीन की उपस्थिति तथा पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम जिसे गुप्त रूप में चीन का समर्थन और सहायता प्राप्त थी, को देखते हुए प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी ने भारत को परमाणु शस्त्रधारक देश बनाने का निर्णय लिया तथा भारतीय वैज्ञानिकों को इस सम्बन्ध में परमाणु परीक्षण करने का निर्देश दिया, इसी नीति के अन्तर्गत ही भारत ने 11 मई को तीन तथा 13 मई 1998 को दो परमाणु परीक्षण किये। इस परीक्षण के बाद श्री बाजपेई ने घोषणा की कि 'अब भारत एक परमाणु शस्त्र धारक देश बन गया, भारत अब और परमाणु परीक्षण नहीं करेगा।'

वर्तमान में भारतीय परमाणु नीति में परिवर्तन आया है, और वह शान्तिपूर्ण परमाणु तकनीकी के विकास के साथ–साथ परमाणु शस्त्रों का विकास करने वाली नीति बन चुकी है तथा 1998 के बाद भारत 6वाँ परमाणुशस्त्र धारक देश बन चुका है। अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं के अनुपात में परमाणु शस्त्रों का विकास करने के प्रति भारत पूर्ण रूप से प्रतिबद्धता से कार्य कर रहा है और भारत ने सी०टी०बी०टी०[1] (व्यापक परमाणु प्रतिबंध संधि) का इस आधार पर विरोध किया है कि वह अपूर्ण एवं भेदभाव पूर्ण है। अगस्त 2008 में होने वाले भारत–अमेरिकी परमाणु करार भी भारतीय परमाणु नीति का एक हिस्सा रहा है, जिसकी शुरूआत प्रधानमंत्री श्री बाजपेई ने 2001 में की थी। संप्रग सरकार के आने के बाद परमाणु करार के सम्बन्ध में वार्ता की प्रक्रिया पुनः शुरू हुई। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और अमेरिकी राष्ट्रपति जार्जबुश के बीच इस सम्बन्ध में बातचीत का लम्बा दौर चला। भारत सरकार को अपने घटक दलों से इस समझौते पर आम सहमति बनाने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी। अनेक औपचारिकताओं के बाद इस ऐतिहासिक समझौते पर अमेरिकी विदेश मंत्री कोण्डालीजा राइस व भारतीय विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी ने 11 अक्टूबर 2008 को वाशिंगटन में हस्ताक्षर किये। इस करार के लागू हो जाने से भारत को अपनी असैन्य परमाणु कार्यक्रम हेतु अमेरिका से आवश्यक साजोसामान व प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो सकेगी तथा अमेरिकी कम्पनियाँ भारत के साथ कारोबार कर सकेंगी। इस समझौते को सम्पन्न करने के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने मंजूरी 45 सदस्यीय नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह (एन०एस०जी०[3] यह एक बहुराष्ट्रीय संस्था है, जिसका उद्देश्य आणविक शस्त्रों में उपयोग में आने वाली पदार्थों के निर्यात और पुनर्निर्यात पर नियंत्रण स्थापित कर आणविक हथियारों के प्रसार पर रोक लगाना है। इसके साथ–साथ यह संस्था इन पदार्थों की सुरक्षा तथा बचाव के लिए भी उचित कदम उठाती है। USA कांग्रेस से ग्रीन सिग्नल मिलने के बाद प्रदान की। भारत के परमाणु ट्रैक रिकार्ड तथा स्वेच्छा से परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के उसके मंतव्य से संतुष्ट होकर एन०एस०जी० ने 06 सितम्बर 2008 को वियना में सम्पन्न अपनी बैठक में भारत के साथ नाभिकीय कारोबार करने की छूट अपने सदस्य राष्ट्रों को दी थी। भारत–अमेरिका परमाणु करार को 123 समझौता भी कहा जाता है। इसे 1234 समझौता इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अमेरिकी परमाणु ऊर्जा कानून 1954 की धारा 123 की शर्तों से इस समझौते को मुक्त करता है और इसके अन्तर्गत 17 अनुच्छेद है। इस समझौते की मुख्य बातें निम्नलिखित है– यह समझौता 40 वर्षों तक लागू रहेगा तथा इसे 10 वर्षों के लिए और बढ़ाया जा सकता है।

1. अमेरिका–भारत को परमाणु ईंधन की आपूर्ति में मदद करेगा, इसके अलावा अमेरिका दूसरे देशों की भारत के लिए परमाणु ईंधन आपूर्ति सुनिश्चित कराने में मदद करेगा।
2. भारत और अमेरिका और गैर परमाणु सामग्री के आदान–प्रदान की व्यवस्था करेंगे। इस सहमति के तहत भारत को कम संवर्धित यूरेनियम की आपूर्ति होगी।
3. अमेरिका भारत को निर्यात किये गये ईंधन एवं परमाणु तकनीक वापस ले सकता है, परन्तु उसे आपात में आये खर्च को भारत को लौटाना होगा।

4. इस समझौते के अनुसार भारत को परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण इस्तेमाल के लिए शोध, डिजाइन, विकास, संचालन, रख–रखाव तथा रियेक्टर के उपयोग के बाद इसे डिसीजन करने का अधिकार होगा।
5. अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के साथ समझौता तथा परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह द्वारा भारत पर लगाये गये प्रतिबन्ध हटाने में अमेरिका एक कमेटी का गठन करेगी।
6. इस समझौते के अन्तर्गत भारत को आयातित ईंधन के पुर्नशोधन का अधिकार होगा।
7. विशेष परिस्थिति में समझौता तोड़े जाने की स्थिति में दोनों देशों को एक वर्ष की नोटिस एक दूसरे को देनी होगी।

इसके साथ ही भारत–अमेरिका करार का महत्व[5] भी है। इस करार के लागू होने से अमेरिका अगले 40 वर्षों तक भारत के परमाणु रियेक्टरों को लगातार ईंधन उपलब्ध करवायेगा तथा वह भारत के सामरिक परमाणु कार्यक्रम में किसी प्रकार की दखलंदाजी नहीं करेगा। भारत अमेरिका के साथ–साथ परमाणु आपूर्तिकर्ता देशों से भी परमाणु ईंधन तथा तकनीकी प्राप्त कर सकेगा। इस समझौते से परमाणु ईंधनों की आपूर्ति से भारत की ऊर्जा की मांगें पूरी होगी।

भारत परमाणु आपूर्तिकर्ता देशों से भी बेहतर आर्थिक, राजनीतिक तथा सामरिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। इसके साथ ही इस समझौते का कमजोर[6] पक्ष यह है कि सामरिक परमाणु कार्यक्रम पर इस समझौते का विपरीत प्रभाव पड़ा है। अमेरिकी नीतियों का विरोध करने में भारत की स्वतंत्रता पहले से कम हुई है। निगरानी के दबाव के कारण भारत का परमाणु कार्यक्रम खर्चीला हुआ है। इसके बावजूद भी इस समझौते का महत्व है।

संदर्भ :

1. रघुराम चौहान, परमाणु शक्ति भारत, दिल्ली पुस्तक सदन–2002, पृ0 71–73
2. रघुराम चौहान, परमाणु शक्ति भारत, दिल्ली पुस्तक सदन–2002, पृ0 71–80
3. सिविल सर्विसेज क्रानिकल, अगस्त, 2008, पृ0 113
4. प्रतियोगिता किरण, सितम्बर, 2008, पृ0 50–57
5. चाणक्य (आर्थिक) अक्टूबर, 2008, पृ0 68
6. इण्डिया टुडे, अक्टूबर, 2008, पृ0 9–10

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

हाड़ौती की लोकपरंपरा एवं सांस्कृतिक विरासत : परंपरा से आधुनिकता तक

भूमिका भूषण
शोधार्थी, संगीत विभाग, ललित कला संकाय,
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक, निवाई, राजस्थान।

सार-संक्षेप :

राजस्थान का हाड़ौती अंचल विविध लोक–सांस्कृतिक परंपराओं से निर्मित विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान रखता है। यहाँ की लोकभाषा, लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकसंगीत, लोकनृत्य और लोकनाट्य क्षेत्र के सामाजिक जीवन, लोकविश्वास और सामूहिक स्मृति को अभिव्यक्त करते हैं।

अध्ययन में रियासतकालीन झालावाड़ को हाड़ौती के सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास के महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में देखा गया है। नाट्य को भवानी नाट्यशाला, संगीत शिक्षा को संगीत विद्यालय एवं अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं को संस्थागत आधार प्रदान दिया गया। समय के साथ संरक्षण के माध्यम बदले और सांस्कृतिक उत्सव, पर्यटन गतिविधियाँ, सार्वजनिक मंच तथा समकालीन कलाकार परंपरा के नए संवाहक बने। इस प्रकार हाड़ौती की सांस्कृतिक विरासत को परंपरा, संरक्षण, प्रस्तुति और आधुनिकता के निरंतर अंतर्संबंध से निर्मित जीवित एवं गतिशील सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता हैं।

प्रमुख शब्द : हाड़ौती, लोक संस्कृति, लोकपरंपरा, सांस्कृतिक संरक्षण, समकालीन कलाकार।

प्रस्तावना :

हाड़ौती राजस्थान का ऐसा सांस्कृतिक क्षेत्र है जहाँ लोकजीवन और कलात्मक अभिव्यक्ति का गहरा संबंध दिखाई देता है। कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड़ की लोकपरंपराएँ क्षेत्र की सामाजिक संरचना, धार्मिक आस्थाओं, लोकविश्वासों और सामूहिक अनुभवों से विकसित हुई हैं। लोकगीत, लोकगाथा और लोककथा जहाँ जीवन तथा स्मृति को अभिव्यक्त करते हैं, वहीं इनके प्रदर्शनात्मक रूपों में संगीत, संवाद, अभिनय और नृत्य का समन्वय दिखाई देता है। इस प्रकार हाड़ौती की लोक–सांस्कृतिक परंपरा को केवल पृथक–पृथक कलारूपों के रूप में न देखकर उनके पारस्परिक संबंधों के रूप में समझना आवश्यक है।

हाड़ौती के लोकनाट्य को भारतीय नाट्यपरंपरा के संदर्भ में देखने पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित लोकधर्मी और नाट्यधर्मी अवधारणाएँ उपयोगी सैद्धांतिक आधार प्रदान करती हैं। आचार्य भरत ने तात्त्विक आधार पर नाट्य की प्रस्तुति–विधि को दो रूपों 'लोकधर्मी और नाट्यधर्मी' में विभक्त किया है।[1] लोकधर्मी

में लोक के स्वाभाविक आचार–विचार, व्यवहार एवं क्रियाओं का यथार्थ और सहज रूप में प्रस्तुतीकरण होता है, जबकि नाट्यधर्मी में नाटकीयता, शैलीकरण एवं सांकेतिकता का समावेश होता है। इसी दृष्टि से हाड़ौती के लोकनाट्य में लोकजीवन, स्थानीय बोली, सामाजिक व्यवहार और पारंपरिक कथानकों में लोकधर्मी पक्ष दिखाई देता है, जबकि अभिनय, संगीत, नृत्य, संवाद, वेशभूषा तथा मंचीय प्रस्तुति के कलात्मक एवं शैलीबद्ध रूप नाट्यधर्मी पक्ष को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार हाड़ौती का लोकनाट्य लोकजीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति और नाटकीय प्रस्तुतिकृदोनों के समन्वय से विकसित परंपरा के रूप में देखा जा सकता है।

इस सांस्कृतिक परिदृश्य में रियासतकालीन झालावाड़ का विशेष महत्त्व रहा है। राजकीय संरक्षण ने नाट्य, संगीत और अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं को अनुकूल वातावरण प्रदान किया। भवानी नाट्यशाला तथा संगीत विद्यालय जैसी संस्थाओं ने इस सांस्कृतिक विकास को मंच और प्रशिक्षण का आधार दिया। आगे चलकर संरक्षण का स्वरूप बदला और सांस्कृतिक उत्सवों, पर्यटन गतिविधियों, सार्वजनिक मंचों तथा समकालीन कलाकारों ने परंपराओं को नए संदर्भ प्रदान किए।

प्रस्तुत शोध–पत्र हाड़ौती की लोक–सांस्कृतिक परंपराओं, रियासतकालीन झालावाड़ की सांस्कृतिक भूमिका, लोकनाट्य, सांस्कृतिक संरक्षण के बदलते स्वरूप तथा समकालीन कलाकारों के योगदान का अध्ययन करता है। इसका मूल उद्देश्य यह समझना है कि हाड़ौती की सांस्कृतिक परंपरा किस प्रकार संरक्षण, प्रस्तुति और. पीढ़ीगत हस्तांतरण के माध्यम से वर्तमान समय में भी जीवित और गतिशील बनी हुई है।

रियासतकालीन झालावाड़ – हाड़ौती क्षेत्र का सांस्कृतिक एवं कलात्मक केंद्र :

हाड़ौती के व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य में रियासतकालीन झालावाड़ का स्थान एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं कलात्मक केंद्र के रूप में रहा है। यहाँ विकसित सांस्कृतिक वातावरण में संगीत, नाट्य, नृत्य तथा अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं को विशेष स्थान प्राप्त था। महाराजराणा झाला जालिम सिंह द्वितीय से आरंभ हुई सांस्कृतिक परंपरा आगे चलकर महाराजराणा भवानी सिंह, महाराजराणा राजेंद्र सिंह तथा महाराजराणा हरिश्चंद्र सिंह के काल में विभिन्न रूपों में विकसित हुई।

झालावाड़ की नाट्यपरंपरा को उसके व्यापक लोक–सांस्कृतिक परिवेश में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ की रंगमंचीय परंपरा का विकास लोकनाट्य की जीवंत परंपराओं से क्रमशः अधिक संगठित एवं संस्थागत रूप में हुआ। झालावाड़ अंचल की इस लोकनाट्य परंपरा में 'माच' का विशेष स्थान रहा है। भौगोलिक रूप से झालावाड़ क्षेत्र मध्य प्रदेश के मालवा अंचल से सटा हुआ होने के कारण यहाँ मालवा की लोकनाट्य परंपराओं का भी प्रभाव दिखाई देता है। इसी सांस्कृतिक संपर्क के परिणामस्वरूप माच का खेल झालावाड़ क्षेत्र में भी प्रचलित रहा और स्थानीय स्तर पर इसका मंचन किया जाता था। इस कारण झालावाड़ में प्रचलित माच को 'माच का ख्याल' भी कहा जाता है।[2] यद्यपि माच की परंपरा का मूल संबंध मालवा से माना जाता है, झालावाड़ में इसका मंचन स्थानीय लोकजीवन, भाषा और सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप अपनी विशिष्ट पहचान के साथ हुआ। इस प्रकार झालावाड़ की माच परंपरा राजस्थान और मालवा के मध्य विद्यमान सांस्कृतिक आदान–प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है।

माच की प्रस्तुतियाँ पारंपरिक रूप से मंदिर प्रांगणों तथा धार्मिक एवं सामुदायिक परिवेशों में आयोजित होती थीं, जहाँ स्थानीय कथानकों, धार्मिक आख्यानों, लोकविश्वासों तथा लोकजीवन से जुड़े प्रसंगों को गायन, वादन, अभिनय और नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार माच ने झालावाड़ के लोकजीवन

और नाट्य–अभिव्यक्ति के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु का कार्य किया। समय के साथ इन लोकनाट्य प्रस्तुतियों में मंचीय अनुशासन, अभिनय–विधान, संगीत, नृत्य, संवाद तथा प्रस्तुति–शैली का क्रमिक परिष्कार हुआ और नाट्यपरंपरा अधिक व्यवस्थित एवं नाट्यधर्मी स्वरूप की ओर अग्रसर हुई।

रियासतकाल में इस विकसित होती नाट्यपरंपरा को राजाश्रय प्राप्त होने से इसे स्थायी एवं संस्थागत आधार मिला। महाराजराणा भवानी सिंह के द्वारा 16 जुलाई सन् 1921 में 'भवानी नाट्यशाला' का निर्माण झालावाड़ के रंगमंचीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध हुआ। यहाँ लोकाभिव्यक्ति के साथ–साथ अधिक संरचित नाट्य प्रस्तुतियों की परंपरा विकसित हुई और महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतलम्', 'राजा हरिश्चंद्र' जैसे नाटकों के मंचन से झालावाड़ की नाट्यपरंपरा ने व्यापक साहित्यिक एवं रंगमंचीय स्वरूप प्राप्त किया। इस प्रकार मंदिर प्रांगणों में होने वाली लोकनाट्य प्रस्तुतियों से लेकर भवानी नाट्यशाला के सुव्यवस्थित रंगमंच तक की यात्रा झालावाड़ की नाट्यपरंपरा के क्रमिक विकास, परिष्कार और संस्थागत स्थायित्व को प्रदर्शित करती है।

भवानी नाट्यशाला आज भी सक्रिय सांस्कृतिक स्थल है। यहाँ समय–समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता रहा है। इस प्रकार यह नाट्यशाला झालावाड़ की उस स्वर्णिम नाट्यपरंपरा की जीवंत कड़ी है, जिसमें लोकनाट्य की सामुदायिक जड़ों से विकसित होकर नाट्यकला ने राजाश्रय, संस्थागत मंच और आधुनिक सांस्कृतिक गतिविधियों तक अपनी निरंतर यात्रा कायम रखी है।

झालावाड़ की सांस्कृतिक गतिविधियों में संगीत–शिक्षा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। 1940 में स्थापित संगीत विद्यालय 4 ने संगीत को व्यवस्थित अध्ययन और प्रशिक्षण से जोड़ने में भूमिका निभाई। इस प्रकार झालावाड़ में नाट्य, संगीत, नृत्य और लोककलाओं का परस्पर संबंध एक विशिष्ट सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करता था।

अतः रियासतकालीन झालावाड़ को हाड़ौती के सांस्कृतिक इतिहास में ऐसे केंद्र के रूप में देखा जा सकता है जहाँ लोकपरंपरा, नाट्य, संगीत और अन्य कलात्मक अभिव्यक्तियाँ एक व्यापक सांस्कृतिक परिवेश में विकसित हुईं।

हाड़ौती का लोक-सांस्कृतिक परिदृश्य एवं सांस्कृतिक संरक्षण : परंपरा से आधुनिक स्वरूप तक :

हाड़ौती क्षेत्र में कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड़ की सांस्कृतिक परंपराएँ मिलकर एक विशिष्ट लोक–सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करती हैं। यहाँ की लोकभाषा, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकविश्वास तथा उत्सव सामूहिक जीवन और लोकमानस की अभिव्यक्ति हैं। लोकगीत हाड़ौती के लोकजीवन में विशेष महत्त्व रखते हैं। विवाह, जन्म, ऋतु, कृषि, पर्व, धार्मिक अवसर तथा सामाजिक जीवन से संबंधित गीत लोकमानस की भावनाओं और सामूहिक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं। इसी प्रकार लोकगाथाएँ वीरता, प्रेम, त्याग और लोकनायकों से संबंधित आख्यानों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित करती हैं। तेजाजी से संबंधित लोकगीत तथा ढोला–मारू जैसे प्रेमाख्यान हाड़ौती की कथात्मक लोकपरंपरा के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

लोककथाओं में लोकविश्वास, सामाजिक अनुभव और जीवन–मूल्यों का संरक्षण होता है। जब इन कथात्मक परंपराओं का संबंध संगीत, संवाद, अभिनय और नृत्य से स्थापित होता है, तब लोकनाट्य का स्वरूप विकसित होता है। हाड़ौती में माच, स्वांग, ढाई कड़ी की रामलीला, रासलीला तथा अन्य लोकप्रदर्शनात्मक

परंपराएँ लोकसाहित्य और प्रदर्शन–कला के इसी अंतर्संबंध को अभिव्यक्त करती हैं।

ढाई कड़ी की रामलीला हाड़ौती की विशिष्ट लोकनाट्य परंपरा है, जिसमें रामकथा का मंचन हाड़ौती बोली में गेय एवं छंदात्मक संवादों के साथ किया जाता है।[5] इसकी लगभग डेढ़ शताब्दी पुरानी परंपरा लोकसाहित्य, लोकसंगीत, अभिनय और सामुदायिक सहभागिता के समन्वय को प्रस्तुत करती है। इसमें गेय संवाद कथानक को आगे बढ़ाने के साथ–साथ पात्रों की भावाभिव्यक्ति और वातावरण–निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस दृष्टि से ढाई कड़ी की रामलीला लोकजीवन और मंचीय कला के मध्य एक महत्त्वपूर्ण सेतु का कार्य करती है।

इसी परंपरा के आधुनिक सार्वजनिक रूप को हाड़ौती उत्सव के माध्यम से देखा जा सकता है। ऐसे आयोजनों ने स्थानीय कलाओं को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचाने तथा क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान को सार्वजनिक स्तर पर अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान किया।

हाड़ौती में सांस्कृतिक संरक्षण की प्रक्रिया को रियासतकालीन आश्रय व्यवस्था से आधुनिक संस्थागत एवं सार्वजनिक मंचों तक विकसित होते हुए देखा जा सकता है। रियासतकाल में कलाकारों को राजकीय आश्रय और दरबारी मंच प्राप्त होते थे। कला–परंपराओं का हस्तांतरण मुख्यतः गुरु–शिष्य परंपरा तथा कलाकार परिवारों के माध्यम से होता था। इससे कलाकारों को कला के अभ्यास और प्रस्तुति के लिए अनुकूल वातावरण मिला तथा अनेक परंपराओं की निरंतरता बनी रही।

राजकीय एवं दरबारी संरक्षण व्यवस्था में परिवर्तन के साथ वर्तमान समय में सांस्कृतिक उत्सव, पर्यटन–आधारित आयोजन, सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाएँ, सार्वजनिक मंच तथा स्थानीय सांस्कृतिक कार्यक्रम संरक्षण के नए माध्यम बने हैं।

इस प्रकार हाड़ौती की लोक–सांस्कृतिक परंपरा को परंपरा, प्रदर्शन और संरक्षण की निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। ढाई कड़ी की रामलीला जैसी जीवंत लोकनाट्य परंपराएँ सामुदायिक स्तर पर सांस्कृतिक स्मृति को बनाए रखती हैं, जबकि हाड़ौती उत्सव जैसे आधुनिक मंच इन्हीं परंपराओं को व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार हाड़ौती में सांस्कृतिक संरक्षण राजकीय आश्रय से आधुनिक संस्थागत एवं सार्वजनिक मंचों तक विकसित हुई एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें परंपरा अपने मूल सांस्कृतिक आधार को बनाए रखते हुए बदलते सामाजिक संदर्भों के साथ नए रूप ग्रहण करती है।

समकालीन कलाकार और जीवित सांस्कृतिक विरासत :

हाड़ौती की सांस्कृतिक विरासत को वर्तमान संदर्भ में समझने के लिए समकालीन कलाकारों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इनके कार्य से यह स्पष्ट होता है कि हाड़ौती की संस्कृति केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान में भी निरंतर सक्रिय और गतिशील परंपरा है।

रेखा राव, हरिहर बाबा और गोविंद गंधर्व जैसे कलाकारों ने लोकसंगीत एवं लोकनृत्य की परंपराओं को व्यापक मंचों तक पहुँचाने में योगदान दिया है। विशेष रूप से रेखा राव और हरिहर बाबा की प्रस्तुतियों ने राजस्थान की लोककलाओं को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक मंचों से जोड़ा है। इनके माध्यम से लोककला क्षेत्रीय सीमा से बाहर व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचती है।

दूसरी ओर, मदन मीणा का कार्य लोकसाहित्य एवं मौखिक परंपराओं के दस्तावेजीकरण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। तेजाजी लोकगाथा का ऑडियो दस्तावेजीकरण किया गया, जिसे World Oral Literature

Project के अभिलेखीय संग्रह से जोड़ा गया। इस प्रकार मौखिक रूप से पीढ़ियों से चली आ रही लोकगाथा को आधुनिक अभिलेखीय माध्यम में सुरक्षित करने का प्रयास किया गया।

डॉ. जगदीश निराला तथा मांगीलाल रणावत जैसे कलाकार गायन एवं पारंपरिक लोकसांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम से लोकपरंपराओं के संवाहक के रूप में महत्त्वपूर्ण हैं। इनके माध्यम से पारंपरिक गायन, प्रशिक्षण, प्रदर्शन और पीढ़ीगत हस्तांतरण की प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

समकालीन कलाकारों की भूमिका को व्यापक रूप से देखें तो उनके कार्य के तीन प्रमुख आयाम सामने आते हैंकृप्रस्तुति, संरक्षण और प्रसार। कुछ कलाकार लोकपरंपराओं को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंचों तक पहुँचा रहे हैं, कुछ उनका दस्तावेजीकरण कर रहे हैं और कुछ कलाकार गुरु–शिष्य परंपरा तथा निरंतर अभ्यास के माध्यम से उन्हें अगली पीढ़ी तक पहुँचा रहे हैं। यही निरंतरता हाड़ौती की संस्कृति को एक जीवित और गतिशील सांस्कृतिक विरासत के रूप में स्थापित करती है।

निष्कर्ष :

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हाड़ौती की सांस्कृतिक विरासत लोकपरंपरा, नाट्य, संगीत, नृत्य और लोकसाहित्य के समन्वित स्वरूप से निर्मित हुई है। रियासतकालीन झालावाड़ ने इस सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जहाँ राजाश्रय के माध्यम से लोक एवं शास्त्रीय कलाओं को संरक्षण और संस्थागत आधार प्राप्त हुआ। माच जैसी लोकनाट्य परंपराओं से विकसित होकर भवानी नाट्यशाला के माध्यम से नाट्यकला ने अधिक व्यवस्थित एवं संस्थागत स्वरूप ग्रहण किया। इसी प्रकार संगीत विद्यालय ने संगीत–शिक्षा और प्रशिक्षण को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

वर्तमान समय में हाड़ौती उत्सव, सांस्कृतिक मंचों तथा समकालीन कलाकारों के माध्यम से इन परंपराओं का संरक्षण और प्रसार जारी है। कलाकारों की प्रस्तुति, दस्तावेजीकरण तथा गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से लोककलाएँ नई पीढ़ी तक पहुँच रही हैं। अतः हाड़ौती की सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि परंपरा और आधुनिकता के समन्वय से निरंतर विकसित होती हुई जीवंत एवं गतिशील सांस्कृतिक विरासत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. जेहरा, कुमारी कंदलीप. (1994). नाट्यशास्त्र में संगीत तत्व का समीक्षात्मक अध्ययन. शोध–प्रबंध, कन्हैयालाल बसंतलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिर्जापुर, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर। पृष्ठ संख्या 73।
2. शर्मा, ललित. (2018). झालावाड़ इतिहास, संस्कृति और पर्यटन. जयपुर रू सनातन प्रकाशन। पृष्ठ संख्या 24।
3. भवानी नाट्यशाला शिलालेख (स्थापना अभिलेख). (1921). भवानी नाट्यशाला, झालावाड़। 16 जुलाई 1921।
4. राजस्थान सरकार. (1998). झालावाड़ जिला गजेटियर. जयपुर : जिला गजेटियर निदेशालय। पृष्ठ संख्या 416।
5. शर्मा, कन्हैयालाल. हाड़ौती साहित्य और स्वरूप. बीकानेर : सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीसी का चौक। पृष्ठ संख्या 59।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

From Mobocracy to Statute : A Critical Socio-Legal Evaluation of the Efficacy of Laws in Curbing Identity-Based Violence and Human Rights Violations& Education reforms in Naxal Affected Area of Chhattisgarh.

Sajal Jain, PhD Scholar,
Dr. Sarita Bhavani Malviya, Asst. Professor,
RKDF UNIVERSITY, Bhopal, Madhya Pradesh.

1. Abstract :

Mob lynching and identity-based violence present profound challenges to modern legal frameworks, frequently fuelled by majoritarian socio-political narratives, nativism, and digital misinformation. This paper provides a critical, comparative socio-legal evaluation of how different jurisdictions conceptualize, prevent, and penalize collective violence. Focusing on India's recently enacted Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS) 2023, the analysis identifies a critical "numerical paradox" within Section 103(2), arguing that the strict five-person threshold arbitrarily limits the classification of hate crimes and overlooks the ideological intent driving the violence.

This punitive-formalist approach is contrasted with the United Kingdom's punitive-intent model, defined by the racially and religiously aggravated offences in the Crime and Disorder Act, 1998 and the abolition of parasitic accessory liability in the landmark R v Jogee, 2016 decision, which recalibrated joint enterprise to prioritize individual mens rea. Furthermore, the paper examines Singapore's preventive-administrative paradigm, operationalized through the Maintenance of Religious Harmony Act 1990 and the Maintenance of Racial Harmony Act, 2025, which employs a framework of "accommodative secularism" to pre-emptively neutralize incendiary narratives before they manifest into physical violence.

By integrating contemporary data, including the 2024-2025 targeted lynchings and the ongoing Manipur crisis, alongside the persistent "digital disconnect" in attributing vicarious liability to virtual group administrators, this study exposes the vulnerabilities of current penal codes. It concludes by

proposing a shift toward adaptive, intent-based accountability mechanisms, urging legal systems to abandon rigid numerical thresholds and update complicity laws to effectively combat the evolving, digitally-facilitated architecture of modern mob violence.

KEYWORDS : Mob lynching, Mobocracy, Comparative Analysis, Digital Disconnect, Identity based violence, Majoritarianism, Regional Crisis, Numerical Paradox.

2. Introduction: The Jurisprudence of Collective Violence and Identity :

Identity-based violence, encompassing hate crimes, vigilantism, and mob lynching, represents one of the most profound and destabilizing challenges to the modern rule of law. Rooted in deep-seated prejudices pertaining to caste, creed, colour, region, religion, gender, and race, these acts of collective violence are frequently driven by nativism, economic anxieties, and majoritarian socio-political narratives. Across diverse jurisdictions, the legal apparatus has historically struggled to conceptualize, prosecute, and deter crimes committed by assemblages of individuals whose collective animus eclipses individual culpability. This structural epistemological difficulty necessitates a critical, exhaustive evaluation of the efficacy of contemporary penal frameworks in addressing group-inflicted violence.

At its core, "lynching" is the tragic substitution of a mob's anger for the rule of law. It occurs when a group of people takes it upon themselves to punish someone without any legal right or trial. The term traces back to the American Revolution and a man named Charles Lynch, a magistrate who took the law into his own hands when the courts were out of reach. Since then, it has come to represent a dark form of "social control" driven by fear and suspicion.

In India, this phenomenon has taken on a devastatingly modern face, where the "law of the mob" replaces the justice of the courts.

The 2015 tragedy in Dadri, Uttar Pradesh, serves as a sobering reminder of the human cost. Mohammad Akhlaq, a 52-year-old father, was dragged from the safety of his home and killed by a crowd fuelled by the rumour that he had slaughtered a cow. Later, investigations proved the rumours were completely false.

This heartbreak changed how we talk about violence in the digital age. It showed that lynching isn't just about physical cruelty, it is an ecosystem of misinformation. In a world where a text message or a viral rumour can travel faster than the truth, suspicion can turn into a fatal reality before anyone has a chance to verify the facts.

The trajectory of legal responses to identity-based violence varies dramatically depending on the socio-political context, demographic composition, and the constitutional philosophy of the state. To combat, or in some instances, manage these phenomena, jurisdictions have developed distinct

legal models.

This exhaustive research report conducts a comparative socio-legal analysis of three distinct paradigms :

- **India :** The recently enacted Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS) 2023, which introduces a punitive-formalist approach through the explicit codification of mob lynching, yet inadvertently creates a "numerical paradox" through an arbitrary five-person threshold.
- **The United Kingdom :** A punitive-intent model governed initially by the Crime and Disorder Act 1998, and later revolutionized by the landmark *R v Jogee* Supreme Court decision, which recalibrated the doctrine of joint enterprise from mere "foresight" to genuine "intent."
- **Singapore :** A preventive-administrative framework operationalized via the Maintenance of Religious Harmony Act (MRHA) 1990 and the newly enacted Maintenance of Racial Harmony Act 2025, predicated on the philosophy of "accommodative secularism" to pre-emptively neutralize incendiary narratives.

Furthermore, the analysis navigates the emerging "digital disconnects" in liability, exploring how virtual assemblages, such as messaging groups function as the modern incubators for physical mobs, and how legal systems struggle to attribute vicarious liability to digital administrators. By synthesizing these comparative insights, this report culminates in policy recommendations advocating for intent-based accountability, urging a departure from arbitrary numerical thresholds in favour of jurisprudential models that accurately capture the psychological, sociological, and digital realities of modern collective violence.

3. Theoretical Foundations : Sociology of the Mob, Nativism, and Majoritarianism :

Before scrutinizing specific statutory frameworks, it is imperative to establish the sociological and political drivers of identity-based violence. Mob lynching is not merely a spontaneous eruption of criminality, it is a structured sociological phenomenon. Sociological diagnostic frameworks define mob lynching based on a three-point criterion: the stereotyping of a crisis, the nature of the accusation, and the choice of the victim. Stereotypes are weaponized during times of perceived crisis to generalize assumptions, deepening societal fractures.

District Information + Status of Mob Lynching in 7 Naxal Affected Districts of Chhattisgarh

Note : As of Aug 2026, NCRB and CG Police have NOT released district-wise mob lynching data.

Only state total = 22 cases for July-Dec 2025 is public. Below is district profile + ground reports.

1. **Bijapur - Most LWE Affected :**

District Info : South Bastar. 70%+ tribal. Dense forests, border with Telangana.

Mob Lynching Status : Reporting extremely low due to inaccessibility + fear of Maoists. Cases mostly related to suspicion of "police informers" and cattle smuggling.

2. **Narayanpur - Most LWE Affected :**

District Info : Hilly, Naxal stronghold. Poor mobile network, scattered hamlets.

Mob Lynching Status : Very low reporting. Rumors of "outsiders doing survey" trigger violence. Migrant laborers most vulnerable.

3. **Sukma - Most LWE Affected :**

District Info : Site of major Maoist attacks. Border with Odisha, Telangana. High poverty.

Mob Lynching Status : Low reporting. "Child lifting" rumors via WhatsApp led to mob assaults reported in media.

4. **Kanker - District of Concern :**

District Info : Gateway to Bastar. NH-30 passes. Major cattle markets. Mix of tribal + non-tribal.

Mob Lynching Status : Higher reporting than other 6. Main reason: Cattle smuggling suspicion.

5. **Dantewada - Other LWE affected :**

District Info : Mining district. Bailadila iron ore. Displacement + Maoist presence.

Mob Lynching Status : Medium reporting. Cases linked to theft in mining areas and suspicion of "company spies".

6. **Gariyaband - LWE affected :**

District Info : Border with Odisha. 60%+ forest. Agriculture + tendu dependent.

Mob Lynching Status : Medium reporting. Transit route for cattle. Media reported 1 mob assault in 2024.

7. **Mohla-Manpur-Ambagarh Chowki - LWE affected :**

District Info : New district 2022. Border with Maharashtra. Very poor infrastructure.

Mob Lynching Status : Lowest reporting. Vulnerable due to rumors and lack of awareness.

Overall Trends :

1. **Under-Reporting :** Real numbers likely higher due to fear, distance, and Maoist influence.
2. **Main Triggers :** Cattle smuggling suspicion, Theft, Child lifting rumors, Suspicion of being police informer
3. **Govt Response :** Nodal Officer appointed in all 7 districts per SC 2018 guidelines.

Citation : NCRB. Crime in India 2024. Ministry of Home Affairs, Govt of India.

3.1 "Sons of the Soil" Nativism and Economic Anxiety :

A primary catalyst for collective violence, particularly based on region, race, and creed, is the phenomenon of "sons of the soil" nativism. Research into subnational migration highlights that while international migration dominates Western discourse, domestic migration is the primary focal point of nativist politics in developing nations.[1] In politically decentralized environments, surges in internal migration inevitably collide with local economic anxieties, leading to the vilification of "outsider" groups.

This dynamic is starkly visible in the Indian subcontinent, where the rhetoric of protecting native populations has frequently escalated into deadly mob violence and anti-migrant riots.[1] The violence is disproportionately inflicted upon vulnerable groups navigating intersecting inequalities of class, caste, religion, gender, and tribe. Notably, the intersection of race and colour has manifested in severe vigilante attacks against African nationals in major Indian cities, where racist discrimination has frequently erupted into mob violence under the guise of local vigilantism.[2]

3.2 The Shift to Majoritarian Ethnic Democracy :

Identity-based violence is frequently exacerbated by a state's transition from a secular multicultural democracy to a majoritarian ethnic democracy. Political science research analysing this phenomenon notes a systemic shift from "de facto majoritarianism" to "de jure majoritarianism" in certain jurisdictions.[3] In an ethnic democracy, the concept of citizenship is inherently two-tiered, the ethno-religious majority enjoys greater de facto and de jure rights than minorities.

When the state ideology aligns with the identity of the majority, vigilantism, particularly moral policing based on religion and caste is often treated with administrative leniency. Law enforcement authorities may absolve themselves of the responsibility to protect minorities, citing the need to maintain public order. This creates an environment where the mob functions as an extra-legal extension of the state's ideology, rendering traditional criminal laws woefully inadequate.

3.3 Contemporary Manifestations: Intersecting Identity Violence (2024–2025) :

The theoretical drivers of nativism, ethnic majoritarianism, and systemic exclusion are vividly illustrated by recent events in India.

3.3.1 The Manipur Crisis : A stark manifestation of identity-based collective violence is the ongoing 2023–2025 Manipur crisis, which erupted primarily over affirmative action disputes between the Meitei majority in the Imphal Valley and the "Kuki-Zo" tribal communities in the surrounding hills.[4] According to government figures up to late 2024, the inter-ethnic conflict resulted in over 258 official fatalities, the displacement of over 60,000 individuals, and widespread destruction of religious sites.[4] A Supreme Court-appointed expert committee noted the severe marginalization of victims, highlighting

that the destruction of vital identification documents during the mob violence had structurally excluded displaced minorities from accessing state compensation and rehabilitation schemes.[5]

3.3.2 Mainland Vigilantism and Witch-Hunting : Concurrently, vigilante mob lynching remains a persistent threat across the mainland. Recent socio-legal monitoring reveals a deliberate shift from large-scale communal riots toward more localized, systemic, and targeted mob violence.[6] Data indicates that while mass communal riots halved in 2025, targeted mob lynchings persisted, recording 14 incidents claiming 8 lives in 2025 alone.[6] Furthermore, between mid-2024 and mid-2025, civil rights groups documented over 600 hate crimes, frequently tied to cow protection vigilantism.[8]

Beyond religious and caste lines, gender-based and superstitious mob violence remains highly lethal. In July 2025, an egregious incident of witch-hunting occurred in Purnia, Bihar, where a mob hacked and burnt five members of a family alive.[10] Additionally, transgender individuals remain highly vulnerable. Trans Murder Monitoring reports indicate rising fatalities globally, and despite the Transgender Persons (Protection of Rights) Act 2019, systemic underreporting plagues the Indian justice system, failing to document the true scale of mob harassment and violence inflicted upon the trans community.[11]

4. India's Legislative Overhaul: The Bharatiya Nyaya Sanhita 2023 :

The Indian penal landscape underwent a historic, systemic transformation with the replacement of the colonial-era Indian Penal Code (IPC) 1860 by the Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS) 2023, which came into effect on July 1, 2024.[13] A central pillar of this legislative overhaul is the explicit recognition and criminalization of mob lynching and hate-crime murders. This inclusion marks a direct legislative response to the escalating crisis of vigilante violence and subsequent judicial mandates, most notably the Supreme Court's directives in *Tehseen S. Poonawalla v. Union of India* (2018).

4.1 The Doctrinal Framework of Sections 103(2) and 117(4) of the Bharatiya Nyaya Sanhita

Prior to the enactment of the BNS, Indian criminal jurisprudence did not recognize mob lynching or hate crimes as distinct statutory offences. Such acts were prosecuted under general homicide provisions (Section 302 of the IPC) read alongside Section 34 (common intention) or Section 149 (unlawful assembly).

The BNS attempts to rectify this epistemological gap. Section 103(2) of the BNS stipulates that when a group of five or more persons, acting in concert, commits murder on the grounds of race, caste or community, sex, place of birth, language, personal belief, or any other similar ground, each member of such group shall be punished with death or with imprisonment for life, and shall also be liable to fine.[13] To operationalize these new provisions, state law enforcement agencies have begun issuing specific directives. For example, the Puducherry Police issued a dedicated Standard Operating

Procedure (SOP) on Mob Lynching under the new framework, emphasizing the need for precautionary intelligence gathering and prompt registration of FIRs under Section 103(2) BNS to prevent the subversion of the law.[14]

Similarly, Section 117(4) introduces a parallel provision for grievous hurt. It penalizes the act of mob violence causing severe injury on similar discriminatory grounds.[13] Furthermore, Section 196 of the BNS (corresponding to the former IPC Section 153A) addresses the promotion of enmity between different groups, prescribing heightened penalties if the offence is committed in a place of worship.[13]

4.2 Jurisprudential Shift: From IPC to BNS in Regulating Mob Violence :

A. Recognition of Mob Lynching as a Distinct Hate Crime :

Under the Indian Penal Code, 1860, mob lynching was not treated as a separate offence and was prosecuted under general provisions such as Section 302 (murder) read with Section 149 (unlawful assembly), without requiring proof of any identity-based motive. The Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 marks a significant shift through Section 103(2), which explicitly recognises mob lynching as a hate-motivated crime based on identity markers such as caste, religion, or language, prescribing severe punishments including life imprisonment or death. This reflects a transition from generic homicide to a formally recognised category of hate crime.

B. Specific Criminalisation of Group-Based Grievous Hurt :

Under the IPC, mob-inflicted injuries were addressed through Sections 325 and 326 relating to grievous hurt, without distinguishing between individual and group-based violence. The BNS, through Section 117(4), introduces a specific provision targeting grievous hurt caused by a group of five or more persons on discriminatory grounds. This establishes a clearer statutory framework for addressing non-fatal but serious forms of collective hate violence.

C. Continuity of the Doctrine of Common Intention :

The principle of joint liability for acts committed in furtherance of a shared intention remains substantively unchanged. Section 34 of the IPC is retained in Section 3(5) of the BNS, preserving the foundational doctrine that all participants in a coordinated criminal act can be held equally liable, irrespective of individual roles.

D. Retention and Misuse of the Right to Private Defence :

The right to private defence, previously governed by Sections 96–106 of the IPC, continues under Sections 34–44 of the BNS. While this ensures continuity in allowing individuals to use reasonable, and in some cases lethal, force to protect life and property, it remains a contested provision. In practice, it is often invoked by vigilante groups to justify acts of mob violence, thereby blurring the

line between legitimate self-defence and unlawful collective aggression.

E. Overall Jurisprudential Transition :

Collectively, the shift from IPC to BNS represents a movement from a general, fragmented approach to a more structured and identity-sensitive legal framework. While the BNS enhances recognition and punishment of mob-based hate crimes, it simultaneously retains older doctrines that may create interpretive tensions and enforcement challenges.

4.3 The Numerical Paradox and Procedural Subversion :

While the codification of mob lynching under the BNS is a significant jurisprudential milestone, it introduces a profound "numerical paradox." Both Sections 103(2) and 117(4) strictly define the offending group as comprising "five or more persons" acting in concert.[13]

The paradox lies in the arbitrary quantification of collective animus. If a group of four individuals acting in concert lynches a victim because of their caste or religion, the crime falls outside the ambit of Section 103(2). It escapes the specific statutory recognition of a hate crime, despite possessing the exact same ideological motivation and terror-inducing societal impact as an attack perpetrated by five individuals. Critics and media analysts have dubbed this the "Wolf Pack Loophole," arguing that it provides a convenient mechanism to bury identity-based murders by deliberately undercounting the perpetrators in the FIR to bypass the severe penalties of Section 103(2).[16]

Furthermore, empirical evidence from 2024 and 2025 reveals deliberate procedural subversion by law enforcement. In a July 2025 case before the Allahabad High Court concerning the mob lynching of a man in Moradabad over cow slaughter allegations, it was highlighted that police frequently register FIRs under Section 103(1) (standard murder) instead of Section 103(2) (mob lynching).[17] This tactic allows local authorities to suppress the gravity of identity-based vigilantism and circumvent the strict reporting and compensation guidelines mandated by the Supreme Court.[17]

4.4 Linguistic Ambiguities: "Personal Belief" vs. "Religion" :

A further critical evaluation of Section 103(2) reveals significant linguistic anomalies. The provision lists the explicit grounds for lynching as "race, caste or community, sex, place of birth, language, personal belief or any other similar ground".[13] Noticeably absent from this otherwise exhaustive list of identity markers is the explicit term "religion".

Constitutional experts have voiced deep concerns regarding this semantic dilution.[15] "Personal belief" is conceptually amorphous, highly subjective, and heavily reliant on subsequent judicial interpretation. In a deeply polarized socio-political climate where communal violence forms the crux of identity-based vigilantism, this omission provides hostile actors and biased prosecutorial agencies with a linguistic loophole to argue that a religiously motivated lynching does not fit the

stringent definitions of the code, thereby reverting the prosecution to general homicide provisions.[15]

5. Digital Disconnects in Liability: The Role of Virtual Assemblages :

The anatomy of a modern mob is fundamentally tethered to the digital sphere. Misinformation, hate speech, and the subsequent coordination of physical violence are primarily incubated in encrypted messaging platforms. As noted heavily in the Law Commission of India's Report No. 267 on Hate Speech, the anonymity and virality of the internet have radically transformed how enmity is promoted.[18] However, current jurisprudence demonstrates a massive "digital disconnect" in attributing secondary liability to those who facilitate these digital assemblages.

5.1 The Liability of Digital Group Administrators :

The pressing legal question of whether the administrator of a digital group shares criminal liability for the identity-based hate speech propagated by its members was comprehensively addressed by the Bombay High Court in *Kishor Tarone v. State of Maharashtra* (2021).[19]

The Court unequivocally ruled in favour of the administrator, decreeing that a WhatsApp group administrator cannot be held vicariously liable for the actionable content posted by a member unless the prosecution can definitively establish a "common intention" or a "pre-arranged plan" acting in concert between the member and the administrator.[19] The court astutely noted that an administrator's technical functions are inherently limited to adding and removing members.

5.2 The Socio-Legal Gap in Digital Complicity :

While the *Kishor* judgment logically safeguards innocent administrators from draconian legal harassment, it exposes a gaping loophole in the architecture of modern hate crimes. Section 3(5) of the BNS requires a clear "prior meeting of minds" to establish common intention.[13] However, digital mobs frequently operate through decentralized, stochastic radicalization.

If an administrator intentionally curates an echo chamber dedicated to inflammatory rhetoric and passively allows incitement to flourish, they effectively evade criminal liability under the *Kishor* standard.[19] The law's rigid insistence on a traditional, physical "pre-arranged plan" fails entirely to capture the algorithmic realities of digital vigilantism.

6. The United Kingdom: Joint Enterprise, Intent, and Aggravated Offences :

In stark contrast to India's numerical formalization, the United Kingdom's approach to collective identity-based violence is heavily predicated on evaluating individual intent and the doctrine of joint enterprise, supplemented by specific statutory aggravators for hate crimes as reviewed extensively by the UK Law Commission.[20]

6.1 Racially and Religiously Aggravated Offences: The CDA 1998 :

The UK Parliament addressed the scourge of identity-based violence through the Crime and

Disorder Act (CDA) 1998, which created a suite of specific offences legally defined as "racially or religiously aggravated".[21] Section 28 defines an offence as aggravated if, at the time of committing the offence, the offender demonstrates hostility based on the victim's membership in a racial or religious group, or if the offence is wholly or partly motivated by such hostility.[21]

Recent statistical data underscores the critical necessity of these provisions. Following the far-right riots in August 2024, the UK experienced the single highest monthly level of recorded race hate incidents since 2004, bringing the total number of race-related crimes to over 1,188 in that period alone.[22] Unlike the Indian BNS, which creates a standalone offence triggered by a threshold of five persons, the UK framework functions as a universal sentencing enhancer built upon base offences. This methodology completely avoids the numerical paradox. Under the CDA 1998, a hate crime is severely aggravated regardless of whether it is committed by a lone wolf, a duo, or a riotous mob of fifty.

6.2 The *R v Jogee* UKSC 8 2016 (U.K.)

Revolution : Dismantling Parasitic Accessory Liability :

The attribution of liability within a violent mob is governed by complicity laws. For over thirty years, English courts utilized a controversial doctrine known as "Parasitic Accessory Liability" (PAL). Under PAL, if two individuals embarked on a joint criminal enterprise to commit a robbery, and one deviated to commit murder, the secondary party could be held fully liable for murder simply if they *foresaw* that the principal might act with the requisite mens rea.[23]

This doctrine became a massive judicial dragnet, disproportionately criminalizing young men from minority backgrounds based on racialized "gang narratives".[24] In 2016, the Supreme Court in *R v Jogee* unanimously ruled that the law had taken a "wrong turn".[23] The Court abolished PAL, ruling that "foresight" is merely evidence of intent, not the legal equivalent of intent itself.[23]

Post-*Jogee* jurisprudence mandates a return to individual justice. To convict a secondary party of a crime committed by the principal, the prosecution must prove beyond a reasonable doubt that they actively encouraged or assisted the commission of the offence and *intended* to do so.[23] Furthermore, updated Crown Prosecution Service (CPS) guidelines on gang-related offences emphasize that joint enterprise prosecutions must be rooted strictly in evidence of intent and active encouragement rather than mere association.[27]

7. Singapore's Preventive Paradigm: Accommodative Secularism :

Singapore bypasses the physical mechanics of the mob entirely by prioritizing pre-emptive ideological suppression. Recognizing that religious and racial identity fractures can swiftly catalyse into existential threats, the Singaporean legal architecture treats societal harmony as a non-negotiable

component of national survival.[28]

7.1 The Maintenance of Religious and Racial Harmony Acts :

The primary statutory vehicle for this preventive legal model is the Maintenance of Religious Harmony Act, (MRHA) 1990.[29] The MRHA equips the government with sweeping powers to issue non-justiciable restraining orders against any individual whose actions or rhetoric are deemed to threaten religious harmony, effectively 'gagging' them before incitement can manifest into physical violence.[29]

In a significant legislative expansion aimed at modernizing this framework, the Parliament of Singapore unanimously passed the Maintenance of Racial Harmony Act, 2025 on February 4, 2025.[30] This new statute explicitly mirrors the MRHA but focuses on racial prejudices. It empowers authorities to issue restraining orders against individuals producing content that prejudices Singapore's racial harmony.[30] Furthermore, it introduces a "community remedial initiative," offering individuals who commit less egregious race-related offences the opportunity to mend community ties in lieu of strict criminal prosecution, while establishing rigorous safeguards against foreign interference by designating specific associations as "race-based entities".[30]

7.2 The Philosophy of "Accommodative Secularism" ;

Prominent legal scholars define Singapore's constitutional framework not as a rigid secularism, but as a model of "accommodative secularism".[28] Unlike strict separationist models that seek to aggressively privatize faith, Singapore acknowledges religion as a highly constructive social force.[28] However, this accommodation operates strictly within uncompromising, state-defined boundaries. The statutory framework is explicitly designed to forcibly separate religion from politics and prevent majoritarian or sectarian groups from exploiting identity to mobilize electoral support.[28] This legal structure represents a "managed" or "soft authoritarian" approach to democratic pluralism. While it severely curtails absolute freedom of expression and intentionally limits judicial oversight, it boasts a remarkably high degree of efficacy in preventing the outbreak of communal riots.

8. Conclusion and Policy Recommendations :

The comparative analysis reveals highly distinct paradigms in the legal management of collective violence :

- **India (Punitive-Formalist) :** Quantifies the mob through a strict five-person threshold, inadvertently allowing sub-threshold hate crimes to evade classification, while struggling with the linguistic ambiguity of "personal belief".[13]
- **United Kingdom (Punitive-Intent) :** Focuses on individual *mens rea* within the group (post-*Jogee*) and aggravates base sentences universally for hate motives, ensuring proportionality regardless

of the mob's size.[23]

- **Singapore (Preventive-Administrative) :** Issues pre-emptive, non-justiciable executive gag orders and mandates remedial initiatives to neutralize ideological precursors, relying heavily on state power.[29]

To effectively curb identity-based violence, legal systems must transition from rigid numerical formalisms to adaptive, intent-based accountability mechanisms:

1. Decoupling Hate Crimes from Numerical Thresholds : The Indian legislative framework must urgently resolve the numerical paradox inherent in Section 103(2) of the BNS. A hate crime is defined by the ideological animus of the perpetrator, not the headcount of the assailants. Following the UK model, any crime motivated by hostility toward a protected identity should trigger a mandatory aggravated sentencing multiplier.

2. Carifying Linguistic Boundaries : The explicit term "religion" must be reinstated in Section 103(2) of the BNS to eliminate interpretive ambiguity surrounding "personal belief" and there should be proper interpretation of any other ground as used in the section to ensure there are no loopholes utilized by law enforcement to downgrade mob lynching charges to ordinary homicide.

3. Bridging the Digital Disconnect through Reckless Facilitation : The current legal standard for digital complicity relies too heavily on the physical-world concept of a "pre-arranged plan." Legislatures must introduce a new statutory tier of "reckless facilitation" tailored for the digital sphere, holding administrators liable if they persistently refuse to moderate continuous incitement to imminent identity-based violence.

Ultimately, the law cannot merely punish the hands that strike, it must possess the nuance, the digital literacy, and the moral clarity to accurately identify, attribute, and penalize the collective ideological intent that directs the blow.

Works Cited :

- Research Statement - Rikhil Bhavnani, accessed on March 29, 2026, https://rbhavnani.github.io/resstatement.html
- Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023, accessed on March 29, 2026, https://bprd.nic.in/uploads/pdf/BNS_English_30-04-2024.pdf
- Nativism and Economic Integration Across the Developing World - Rikhil Bhavnani, accessed on March 29, 2026, https://rbhavnani.github.io/files/Bhavnani_Lacina_nativism_economic_integration_intro.pdf
- Full article: Reconfiguring Citizenship in Contemporary India - Taylor & Francis, accessed

on March 29, 2026, https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/00856401.2019.1555874

- Irreducible Plurality, Indivisible Unity: Singapore Relational Constitutionalism and Cultivating Harmony Through Constructing a Constitutional Civil Religion | German Law Journal - Cambridge University Press & Assessment, accessed on March 29, 2026, https://www.cambridge.org/core/journals/german-law-journal/article/irreducible-plurality-indivisible-unity-singapore-relational-constitutionalism-and-cultivating-harmony-through-constructing-a-constitutional-civil-religion/99712D8CDE9C2BE119E30A7F9766F23B
- A new party system or a new political system? | Request PDF - ResearchGate, accessed on March 29, 2026, https://www.researchgate.net/publication/342319676_A_new_party_system_or_a_new_political_system
- Mob Lynching - Drishti IAS, accessed on March 29, 2026, https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/mob-lynching-9
- handbook on the bharatiya nyaya sanhita, 2023 - BPR&D, accessed on March 29, 2026, https://bprd.nic.in/uploads/pdf/BNS%20Book_After%20Correction.pdf
- WhatsApp Group Admin Liability in India (2025): A Legal Guide - eVaakil, accessed on March 29, 2026, https://evaakil.com/whatsapp-group-admin-liability-in-india/
- Criminalisation of Mob Lynching under the Bhartiya Nyaya (Second) Sanhita 2023, accessed on March 29, 2026, https://nualslawjournal.com/2024/04/22/criminalisation-of-mob-lynching-under-the-bhartiya-nyaya-second-sanhita-2023/
- Understanding Group Liability in the Indian Penal Code: Principles and Implications, accessed on March 29, 2026, https://thelaw.institute/indian-penal-code/group-liability-indian-penal-code-principles-implications/
- The Right to the Slum? Redevelopment, Rule and the Politics of Difference in Mumbai - eScholarship.org, accessed on March 29, 2026, https://escholarship.org/content/qt4tx6v6sw/qt4tx6v6sw.pdf
- BNS Section 103: Murder Punishment in India - ezyLegal, accessed on March 29, 2026, https://www.ezylegal.in/blogs/section-103-of-bharatiya-nyaya-sanhita-bns-punishment-for-murder
- The Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 - PRS India, accessed on March 29, 2026, https://prsindia.org/billtrack/the-bharatiya-nyaya-sanhita-2023
- Can the Group Administrator of a WhatsApp group be held liable for objectionable posts made by members? - Vaishali Bhagwat, accessed on March 29, 2026, https://vaishalibhagwat.com/can-the-group-administrator-of-a-whatsapp-group-be-held-liable-for-objectionable-posts-made-by-members.php
- Bharatiya Nyaya Sanhita 2023 - an overview - Vikaspedia - Social welfare, accessed on March

29, 2026, https://en.vikaspedia.in/viewcontent/social-welfare/new-criminal-laws/bharatiya-nyaya-sanhita-2023-an-overview?lgn=en

- Kishore Tarone Vs State of Maharashtra – Digest of case laws - itatonline.org, accessed on March 29, 2026, https://itatonline.org/digest/verdicts/kishore-tarone-vs-state-of-maharashtra/
- RAJASTHAN STATE JUDICIAL ACADEMY JODHPUR - S3waas, accessed on March 29, 2026, https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s3ec02907edb0aa6986220dbffb79a7885/uploads/2024/05/2024052146.pdf
- Can the administrator of a WhatsApp group be held liable for objectionable posts?, accessed on March 29, 2026, https://www.barandbench.com/columns/administrator-whatsapp-group-liable-objectionable-posts
- Joint Criminal Confusion: Exploring the merits and demerits of joint enterprise liability - White Rose Research Online, accessed on March 29, 2026, https://eprints.whiterose.ac.uk/id/eprint/147726/1/Jogee.pdf
- The Excuse of (Il)legality in Discriminating and Persecuting Religious Minorities: Anti-Mosque Legal Violence in Myanmar | Asian Journal of Law and Society | Cambridge Core, accessed on March 29, 2026, https://www.cambridge.org/core/journals/asian-journal-of-law-and-society/article/excuse-of-illegality-in-discriminating-and-persecuting-religious-minorities-antimosque-legal-violence-in-myanmar/3F36B378E58F34B3C96F3AEDE6AFB626
- Our use of cookies - House of Lords - Religious Offences in England and Wales - Minutes of Evidence, accessed on March 29, 2026, https://publications.parliament.uk/pa/ld200203/ldselect/ldrelof/95/2061206.htm
- Section 196 of the Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS) of 2023 | Vidhi Judicial Academy, accessed on March 29, 2026, https://vidhijudicial.com/section-196-of-the-bharatiya-nyaya-sanhita-(bns)-of-2023.html
- THE INTERSECTION OF HATE AND FREE SPEECH: A LIBERAL DEMOCRATIC PERSPECTIVE Dissertation submitted to National Law University and, accessed on March 29, 2026, https://dlnluassam.ndl.gov.in/bitstreams/f2333ca6-b515-4d62-a7a9-c03f643722d0/download
- BNS Section 196 - Promoting enmity between different groups on ground of religion, race, place of birth, residence, language, etc., and doing acts prejudicial to maintenance of harmony. | Devgan.in, accessed on March 29, 2026, https://devgan.in/bns/section/196/
- Can the Administrator of a WhatsApp Group be Held Liable for Objectionable Posts?, accessed on March 29, 2026, https://bharatchugh.in/2021/06/04/can-the-administrator-of-a-whatsapp-group-be-held-liable-for-objectionable-posts/
- The Impact of Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2023, on Sentencing Disparities in India -

International Journal of Humanities and Social Science Invention, accessed on March 29, 2026, http://www.ijhssi.org/papers/vol14(12)/14124248.pdf

- The impact of R v Jogee: An examination of applications to the Criminal Cases Review Commission (CCRC), accessed on March 29, 2026, https://gala.gre.ac.uk/id/eprint/38583/3/38583_HEWITT_The_impact_of_R_v_Jogee_An_examination_of_applications_to_the-CCRC.pdf
- Theoretical Foundations for Asian Constitutionalism: The Case of Singapore THIO Li-ann*, accessed on March 29, 2026, https://cale.law.nagoya-u.ac.jp/en/wp-content/uploads/2021/09/alb6_01_Thio.pdf
- Liability of a WhatsApp Group Administrator: Bombay High Court Ruling in Kishor v. State of Maharashtra & Anr. - AZB & Partners, accessed on March 29, 2026, https://www.azbpartners.com/bank/liability-of-a-whatsapp-group-administrator-bombay-high-court-ruling-in-kishor-v-state-of-maharashtra-anr/

Email: jainsajal.in@gmail.com
Contact: 7223065655
Email: saritaketul@gmail.com
Contact: 9340123820

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान प्रणाली

दुर्गेश कुमार, पीएच.डी. शोधार्थी,
प्रो. तनूजा अग्रवाल, शोध निर्देशक,
किशोरी रमण कन्या महाविद्यालय, मथुरा।
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

शोध सारांश :

29 जुलाई 2020 को स्वीकृत राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा के लक्ष्यों को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस नीति की एक विशेषता यह है कि वह आधुनिक कौशल और वैश्विक प्रतिस्पर्धा की बात करते हुए भी भारत की अपनी ज्ञान–परंपरा को पाठ्यक्रम के केंद्र में लाने पर बल देती है। प्रस्तुत शोध–पत्र इसी दोहरे आग्रह की पड़ताल करता है। इसमें पहले भारतीय ज्ञान प्रणाली के स्वरूप और उसकी शैक्षिक दृष्टि को स्पष्ट किया गया है, फिर यह देखा गया है कि आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था में कौन–से पक्ष रिक्त रह गए हैं, और अंत में यह विश्लेषण किया गया है कि नीति इन रिक्तियों को किस सीमा तक भर पाती है। अध्ययन प्रकाशित नीति–दस्तावेज, शास्त्रीय स्रोतों और उपलब्ध शोध–साहित्य पर आधारित है। निष्कर्ष यह है कि नीति की दिशा उपयुक्त है, किंतु उसका वास्तविक मूल्य क्रियान्वयन की गंभीरता से ही तय होगा।

मुख्य शब्द :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय ज्ञान प्रणाली, गुरु–परंपरा, सर्वांगीण विकास, पाठ्यक्रम, शिक्षा–दर्शन

प्रस्तावना :

किसी भी शिक्षा–नीति का असली प्रश्न यह नहीं होता कि वह क्या पढ़ाना चाहती है, बल्कि यह होता है कि वह मनुष्य को क्या बनाना चाहती है। यही प्रश्न राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को इक्कीसवीं सदी की अन्य प्रशासनिक घोषणाओं से अलग करता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विस्तार निरंतर हुआ विद्यालय बढ़े, विश्वविद्यालय बढ़े, साक्षरता बढ़ी। पर इस विस्तार के साथ एक शिकायत भी लगातार बनी रही कि शिक्षा व्यक्ति को रोजगार तो दे रही है, जीवन–दृष्टि नहीं। नीति–निर्माताओं के सामने यह प्रश्न बार–बार आया कि क्या भारत की अपनी बौद्धिक परंपरा में इस कमी का कोई उत्तर मौजूद है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी दिशा में एक उत्तर देने का प्रयास करती है। इसके मूलभूत सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि शिक्षा भारत की जड़ों और गौरव से जुड़ी रहे तथा उसकी समृद्ध, विविध, प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृति और ज्ञान–प्रणालियों से प्रेरणा ले (शिक्षा मंत्रालय, 2020)। यह शोध–पत्र तीन प्रश्नों के इर्द–गिर्द चलता है। पहला, भारतीय ज्ञान प्रणाली से आशय क्या है और उसकी शैक्षिक दृष्टि क्या रही है। दूसरा, वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में इस दृष्टि की

आवश्यकता क्यों अनुभव की जा रही है। और तीसरा, नीति इस परंपरा को पाठ्यक्रम में लाने के लिए क्या प्रस्तावित करती है तथा उसके सामने कौन–सी व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं।

भारतीय ज्ञान प्रणाली : स्वरूप और विस्तार :

भारतीय ज्ञान प्रणाली को केवल प्राचीन ग्रंथों की सूची मान लेना उसका सरलीकरण होगा। यह सहस्रों वर्षों में विकसित एक बौद्धिक परंपरा है, जिसमें वेद, उपनिषद्, पुराण और वेदांग जैसे शास्त्रीय स्रोत तो हैं ही, साथ ही आयुर्वेद, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, शिल्पशास्त्र, गणित और ज्योतिष जैसी अनुशासनगत धाराएँ भी सम्मिलित हैं। इस परंपरा की एक उल्लेखनीय विशेषता इसका व्यावहारिक विस्तार है। यह केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रही कृषि, धातु–विज्ञान, वास्तु, जल–प्रबंधन, वनस्पति–ज्ञान और चिकित्सा से जुड़ा लोक–अनुभव भी इसी परंपरा का अंग रहा है। यह ज्ञान प्रायः लिखित रूप में नहीं, अभ्यास और मौखिक हस्तांतरण के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी बढ़ता रहा। दूसरी विशेषता इसका उद्देश्य है। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य केवल जानकारी का संचय नहीं, बल्कि व्यक्ति का समग्र विकास माना गया शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक। अल्तेकर के अध्ययन के अनुसार चरित्र–निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्तव्यों का पालन और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण उस काल की शिक्षा के प्रमुख आदर्श थे (अल्तेकर, 1934)। इसी कारण उस व्यवस्था में शिक्षा को जीविका का साधन मात्र नहीं माना गया। जीविका उसका एक परिणाम अवश्य थी, पर उद्देश्य नहीं।

ज्ञान की भारतीय अवधारणा और गुरू–परंपरा :

भारतीय परंपरा में ज्ञान को सर्वोच्च शुद्धिकारक माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में यह बात सीधे कही गई है :

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(अध्याय 4, श्लोक 38)

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है।

पर भारतीय दृष्टि में ज्ञान का अर्जन अकेले संभव नहीं माना गयाय उसके लिए एक माध्यम आवश्यक है, और वह माध्यम गुरु है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस के आरंभ में ही गुरु–वंदना करते हुए लिखा–

बंदउँ गुरू पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

(बालकाण्ड)

यहाँ गुरु के चरण–कमलों की रज को सुरुचि, सुगंध और अनुराग से युक्त कहा गया है। यह केवल श्रद्धा का कथन नहीं, इसमें यह शैक्षिक संकेत भी निहित है कि ज्ञान का हस्तांतरण एक संबंध के भीतर होता है, किसी यांत्रिक प्रक्रिया से नहीं।

उत्तरकाण्ड में तुलसीदास इस बात को और स्पष्ट कर देते हैं –

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।

(उत्तरकाण्ड)

अर्थात् गुरु के बिना कोई भवसागर पार नहीं कर सकता, चाहे वह ब्रह्मा और शंकर के समान ही क्यों न हो। शैक्षिक दृष्टि से इस पंक्ति का अर्थ यह निकलता है कि व्यक्ति की सामर्थ्य चाहे कितनी भी हो, मार्गदर्शन

के बिना उसकी दिशा निश्चित नहीं होती।

यह बिंदु आज विशेष रूप से प्रासंगिक है, जब सूचना तो हर उपकरण पर उपलब्ध है, पर उसे विवेक में बदलने वाला मार्गदर्शन दुर्लभ होता जा रहा है। भारतीय परंपरा सूचना और ज्ञान के इसी अंतर को रेखांकित करती रही है।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की रिक्तियाँ :

शिक्षा के उद्देश्य अंततः किसी न किसी दर्शन से निकलते हैं, और पाठ्यक्रम उन्हीं उद्देश्यों के अनुरूप बनता है। जब उद्देश्यों की समझ संकुचित हो जाती है, तो पाठ्यक्रम भी उसी अनुपात में संकुचित हो जाता है। वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में यही हुआ है। तकनीकी दक्षता और आर्थिक उपयोगिता पर बल इतना बढ़ा कि कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष हाशिये पर चले गए नैतिक मूल्य, पारिवारिक संस्कार, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदना। परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थी परीक्षा में सफल तो होता है, पर जीवन के जटिल प्रश्नों के सामने प्रायः असहाय रहता है। एक दूसरी रिक्तता आत्म–परिचय की है। भारत का विद्यार्थी अपनी भाषाओं, कलाओं और ज्ञान–परंपराओं के विषय में प्रायः अनभिज्ञ रहकर बड़ा होता है। इससे उसमें हीनता का भाव पनपता है, जो आत्मविश्वास और रचनात्मकता दोनों को क्षीण करता है। तीसरी रिक्तता ज्ञान के विखंडन की है। आधुनिक पाठ्यक्रम विषयों को अलग–अलग कोष्ठकों में बाँट देता है, जबकि भारतीय परंपरा में ज्ञान की धाराएँ परस्पर जुड़ी रही हैं। गणित ज्योतिष से, ज्योतिष कृषि से, और चिकित्सा वनस्पति–विज्ञान से। इसलिए भारतीय ज्ञान प्रणाली की आवश्यकता अतीत के प्रति भावुकता का प्रश्न नहीं हैय यह वर्तमान शिक्षा की एक ठोस कमी का उत्तर खोजने का प्रयास है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का दृष्टिकोण :

नीति इस दिशा में कई स्तरों पर काम करती है। पहला, वह शिक्षा को केवल साक्षरता और संख्या–ज्ञान तक सीमित न मानकर तार्किक चिंतन, समस्या–समाधान तथा नैतिक और भावनात्मक विकास को भी उसका अंग बनाती है। यह दृष्टि स्वामी विवेकानंद के उस विचार के निकट है कि शिक्षा मनुष्य में पहले से निहित पूर्णता का प्रकटीकरण है। दूसरा, नीति भारतीय ज्ञान प्रणाली को पाठ्यक्रम में औपचारिक स्थान देने की बात करती है। इसका आशय पुराने ग्रंथों को यथावत पढ़ा देना नहीं, बल्कि उनकी अंतर्दृष्टि को आधुनिक विषयों के साथ जोड़कर प्रस्तुत करना है। तीसरा, नीति मातृभाषा और भारतीय भाषाओं में शिक्षण पर बल देती है। यह केवल भाषिक प्रश्न नहीं जिस भाषा में बालक सोचता है, उसी में वह सबसे गहराई से समझता भी है, और अपनी परंपरा के अनेक विचार उसी भाषा में सटीक रूप से सुरक्षित हैं। चौथा, नीति बहुविषयक शिक्षा को प्रोत्साहित करती है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा की समन्वित दृष्टि से मेल खाती है। इस प्रकार नीति की मूल भावना और भारतीय ज्ञान प्रणाली का उद्देश्य दोनों एक ही दिशा में जाते दिखाई देते हैं : ऐसा व्यक्ति तैयार करना जो कुशल भी हो और उत्तरदायी भी।

क्रियान्वयन की चुनौतियाँ :

नीति की दिशा उपयुक्त होने पर भी उसके मार्ग में कुछ वास्तविक कठिनाइयाँ हैं, और उनकी अनदेखी करना अध्ययन को अधूरा छोड़ देगा। सबसे बड़ी कठिनाई शिक्षक–प्रशिक्षण की है। भारतीय ज्ञान प्रणाली को पढ़ाने के लिए ऐसे शिक्षक चाहिए जो परंपरा और आधुनिक अनुशासन, दोनों में दक्ष हों। ऐसे शिक्षकों की संख्या अभी सीमित है, और उनकी तैयारी के लिए दीर्घकालीन निवेश आवश्यक होगा। दूसरी कठिनाई पाठ्य–सामग्री

की है। प्रामाणिक, सुपाठ्य और आयु–अनुरूप सामग्री का अभाव इस विषय को या तो सतही बना सकता है या अनावश्यक रूप से कठिन। तीसरी कठिनाई संतुलन की है। भारतीय ज्ञान प्रणाली का शिक्षण गौरव–बोध जगाने के लिए है, पर उसे आलोचनात्मक दृष्टि की कीमत पर नहीं होना चाहिए। परंपरा का अध्ययन तभी सार्थक है जब उसमें प्रश्न पूछने की भी छूट हो यह स्वयं भारतीय शास्त्रार्थ–परंपरा की विशेषता रही है। चौथी कठिनाई चयन की है। इस परंपरा का विस्तार इतना बड़ा है कि किसे सम्मिलित किया जाए और किसे छोड़ा जाए, यह निर्णय स्वयं एक शैक्षिक और बौद्धिक उत्तरदायित्व है, जिसे विशेषज्ञों की व्यापक सहमति से ही तय किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन के प्रश्नों पर लौटें तो निष्कर्ष कुछ इस प्रकार बनता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली एक जीवंत बौद्धिक परंपरा है, जिसका उद्देश्य आरंभ से ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास रहा है। वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में जो रिक्तियाँ अनुभव की जा रही हैं नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक आत्मबोध और ज्ञान की समन्वित दृष्टि उनका उत्तर इसी परंपरा में उपलब्ध है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस परंपरा को पाठ्यक्रम में स्थान देकर एक सार्थक दिशा पकड़ी है। किंतु नीति का दस्तावेज अपने आप में परिवर्तन नहीं है। शिक्षक–प्रशिक्षण, प्रामाणिक सामग्री, आलोचनात्मक दृष्टि और सुविचारित चयन इन चारों के बिना यह प्रयास औपचारिकता बनकर रह सकता है। अंततः यह स्मरण रखना उपयोगी होगा कि भारतीय परंपरा ने ज्ञान को कभी संग्रह की वस्तु नहीं माना। उसने उसे रूपांतरण की प्रक्रिया माना। नीति की सफलता की कसौटी भी यही होनी चाहिए कि उससे निकला विद्यार्थी कितना जानता है, इससे अधिक यह कि वह कैसा मनुष्य बनता है।

संदर्भ :

1. अल्तेकर, ए. एस. (1934). एजुकेशन इन एंश्येंट इंडिया. बनारस : नन्द किशोर एंड ब्रदर्स.
2. गुप्ता, आयुष, एवं प्रताप, जितेंद्र. (2026). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परम्परा : एक व्यापक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 14. ISSN 2320–2882.
3. तुलसीदास, गोस्वामी. श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड). गोरखपुर : गीता प्रेस.
4. भार्गव, सुनीता, एवं अग्रवाल, अंजना. (2025). भारतीय ज्ञान प्रणाली का विकसित भारत. एचजेआरईएस, 12. ISSN 2349–9249.
5. राय, बरनाली. (2014). भारतीय ज्ञान परम्परा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च, 12. ISSN 2349–5162.
6. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली : भारत सरकार.
7. श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय 4, श्लोक 38). गोरखपुर : गीता प्रेस.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Wordsworth as a Pioneer Poet of Nature

Dr. Pooja Singh
Assistant Professor, English department
Guru Nanak girls PG College, Ayodhya.

Abstract :

William Wordsworth is one of the major poet of Nature in the world and is widely known as the "Highest priest of Nature". His poetry celebrates the beauty, peace an spiritual power of Nature. He believed that Nature is not wonderful only but also give us peaceful life. His poetic volumes are packed with striking passages on Nature or its objects. Dequincey remarks that "I had this passion for nature fixed in his blood. it was necessity of his being, like that of mulberry leaf to the silk worm, through his Commerce with Nature did he become "leave and breathe" He tell us that he has been bewitched by beauty and soul of Nature-

"Therefore am I still
A lover of meadows and woods,
And mountains; and of all the
Mighty world
Of eye and ear — both what they
half create,
And what perceive…."

Introduction :

Romantic age brought a new era for nature, sensibility and human feeling. Wordsworth was the first of great Romantics to be influenced profoundly by the Romantic movement for reaching impact of life. It is generally supposed that English Romantic movement began in 1798, with the publication of the Lyrical Ballads. It was not sudden outburst but result of long and gradual growth and development the poet of Romantic school - Wordsworth, Coleridge, Shelley, Keats etc. It is full of sense of wonder and mystery.

Wordsworth Concept of Nature—

Wordsworth saw the Nature as living force that connect human being with Nature and Universe. He believed that Nature has lots of power and if we spend time in nature bring us peace happiness and kindness. Human feel less lonely. Wordsworth wishes that he were man who believed that Gods and Goddys over the aspects of Nature as a deity. He believes that Nature has a Treasure of beautiful things and is vital influence that is all meant for us. According to him Nature teaches kindness love and patience.

Nature in His Major Poems :

Nature really comes to her own, for the first time in the poetry of Wordsworth. He is variously called the "hardinger of Nature", the "high priest of Nature and the worshipper of Nature", and his chief originality is to be found, in his poetry of Nature.

In the Prelude, Book I, he tell S.T. Coleridge that this childhood, he was super sensiti to every impact nature, the gentle breeze affected him as if his heart were an Aeolian harp. It is love for nature was a passion. In Tintern Abbey Words explains How nature comfort human spirit, spiritual strength. In "The world is too much with us" is one of the most famous sonnets it reflect the poet's love for Nature and his belief that in its healthful influence. It also reflect the fact that Wordsworth disciple of Rousseau whose call—

"Back to Nature" — he echoes in his poems. In the poem Daffodils fill his heart with joy and remain in his mind forever. In the Solitary Reaper, he seemed enchanting towards the nature. He connect the beauty of Nature with highland lass (girl) reaping and singing in the field. it shows his love for nature and human emotion and imagination.

Poetic Style :

The style of poem is romantic by virtue of force poetic imagination, personal emotion focus on the nature. Wordsworth use simple and common language, so that common people understand poetry. He express in his poem vivid picture of Nature such as mountain, rivers, valley, flowers, birds etc. He belives that should express pure feeling and emotion.

Contribution to English Literature :

William Wordsworth and S.T. Coleridge met each other in 1795 and the two poet decided to bring forward a joint poetic volumes and all the elements of Romanticism, Wordsworth last poem were composed during the decade 1797–1807 yet his friend poem continued coming in till 1832. Louis Cazamian called the age of Wordsworth "the Romantic period".

Conclusion :

To conclude with critic "Nature and human life in inseparably interlaced in the poetry of Wordsworth." Wordsworth poetic vision is that of Nature and man or rather man in Nature. It is as he

perceived it. He represent to man with "those primal qualities of humanity where man and Nature touch and blend."

References :

1. Wordsworth - Lyrical Ballad.
2. Abraham, M. H. Norton Anthology of English.
3. Hudson - W. H. An Introduction to the Study of Literature.
4. Wordsworth is Poetry. H. Hartmann.
5. The poet Wordsworth Helen Darbyshire.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण संरक्षण हेतु भारतीय पारंपरिक ज्ञान का अध्ययन

डॉ. शेरा बानो
सहायक आचार्य (राजनीतिक विज्ञान)
राजकीय कन्या महाविद्यालय, निम्बाहेड़ा।

सारांश (Abstract)

भारतीय पारंपरिक ज्ञान (Indian Traditional Knowledge) मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने की एक प्राचीन एवं समृद्ध परंपरा है। भारत की वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध, जैन तथा लोक परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण को जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। जल, वन, भूमि, वायु तथा जैव विविधता के संरक्षण के लिए भारतीय समाज ने अनेक पारंपरिक उपाय विकसित किए, जिनका उद्देश्य प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व बनाए रखना था। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण तथा जैव विविधता के क्षरण जैसी वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु भारतीय पारंपरिक ज्ञान अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो रहा है। यह शोध–पत्र भारतीय पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान की अवधारणा, उसके प्रमुख आयामों, समकालीन उपयोगिता तथा सतत विकास में उसकी भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : भारतीय पारंपरिक ज्ञान, पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता, सतत विकास, प्राकृतिक संसाधन।

1. प्रस्तावना :

पर्यावरण पृथ्वी पर जीवन का आधार है। मानव का अस्तित्व जल, वायु, वन, भूमि एवं जैव विविधता पर निर्भर करता है। आधुनिक औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरणीय संकट लगातार बढ़ रहा है। ऐसे समय में भारतीय पारंपरिक ज्ञान प्रणाली प्रकृति के संरक्षण के लिए एक प्रभावी और टिकाऊ दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

भारतीय संस्कृति में पृथ्वी को माता, नदियों को देवी, वृक्षों को देवतुल्य तथा पशु–पक्षियों को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा लोक परंपराओं में प्रकृति संरक्षण को धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार किया गया है। आधुनिक शोध भी यह संकेत देते हैं कि पवित्र उपवन (Sacred Groves), सामुदायिक जल प्रबंधन तथा पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान जैव विविधता और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. भारतीय पारंपरिक ज्ञान की अवधारणा :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान (Indian Traditional Knowledge) उस ज्ञान–परंपरा को कहा जाता है, जो भारतीय समाज में हजारों वर्षों से अनुभव, अवलोकन, प्रयोग तथा सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से विकसित

होकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रही है। यह ज्ञान केवल लिखित ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि लोक परंपराओं, रीति–रिवाजों, धार्मिक मान्यताओं, कृषि पद्धतियों, औषधीय ज्ञान, जल प्रबंधन, वन संरक्षण तथा सामुदायिक जीवन के विविध रूपों में भी विद्यमान है। भारतीय पारंपरिक ज्ञान का मूल आधार मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित, सह–अस्तित्वपूर्ण तथा उत्तरदायी संबंध स्थापित करना है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक आधार वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा विभिन्न लोक परंपराओं में निहित है। इन ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत के रूप में स्वीकार किया गया है तथा इन्हें जीवन का आधार माना गया है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि पूजनीय एवं संरक्षण योग्य माना गया है। इसी कारण वृक्षों, नदियों, पर्वतों तथा वन्य जीवों के संरक्षण को धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व के रूप में विकसित किया गया।

भारतीय पारंपरिक ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होने की क्षमता है। विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु, भू–आकृति, प्राकृतिक संसाधनों तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार अलग–अलग प्रकार की कृषि, जल संरक्षण, वानिकी तथा प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की प्रणालियाँ विकसित हुईं। उदाहरणस्वरूप राजस्थान में जोहड़, टांका एवं बावड़ी जैसी जल संरक्षण प्रणालियाँ, उत्तराखंड के पवित्र उपवन (Sacred Groves), पूर्वोत्तर भारत की सामुदायिक वन प्रबंधन व्यवस्था तथा दक्षिण भारत की पारंपरिक सिंचाई प्रणालियाँ स्थानीय ज्ञान की उत्कृष्ट मिसाल हैं।

पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में भारतीय पारंपरिक ज्ञान का विशेष महत्व है क्योंकि यह प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, पुनर्चक्रण, जैव विविधता के संरक्षण तथा सतत विकास के सिद्धांतों पर आधारित है। इस ज्ञान प्रणाली में आवश्यकता के अनुसार संसाधनों का उपयोग करने, प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संपदा को सुरक्षित रखने पर बल दिया गया है। यही कारण है कि आधुनिक समय में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जैव विविधता के क्षरण तथा जल संकट जैसी वैश्विक समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय पारंपरिक ज्ञान को पुनः महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

अतः भारतीय पारंपरिक ज्ञान केवल ऐतिहासिक या सांस्कृतिक विरासत नहीं है, बल्कि एक ऐसी समग्र एवं व्यावहारिक ज्ञान प्रणाली है जो पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्थिरता तथा सतत विकास के लिए आज भी समान रूप से प्रासंगिक और उपयोगी है।

3. पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख पारंपरिक उपाय :

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण केवल एक सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक कर्तव्य भी माना गया है। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज ने प्रकृति के संरक्षण के लिए अनेक पारंपरिक उपाय अपनाए, जिनका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग, जैव विविधता का संरक्षण तथा भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को सुरक्षित रखना था। ये उपाय आज भी सतत विकास (Sustainable Development) के प्रभावी उदाहरण हैं।

3.1 वृक्ष पूजा एवं वन संरक्षण :

भारतीय परंपरा में वृक्षों को जीवनदायी एवं पूजनीय माना गया है। पीपल, वट, नीम, तुलसी, बेल, आंवला और अशोक जैसे वृक्षों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व होने के कारण इनके संरक्षण की परंपरा विकसित हुई। अनेक क्षेत्रों में "देववन" अथवा "पवित्र उपवन" (Sacred Groves) स्थापित किए गए, जहाँ वृक्षों की कटाई एवं

शिकार पूर्णतः निषिद्ध था। इन उपवनों ने अनेक दुर्लभ वनस्पतियों एवं जीव–जंतुओं को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज भी भारत के कई राज्यों में यह परंपरा जैव विविधता संरक्षण का प्रभावी माध्यम बनी हुई है।

3.2 पारंपरिक जल संरक्षण प्रणाली :

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जल संरक्षण की अनेक स्थानीय प्रणालियाँ विकसित हुईं। राजस्थान में जोहड़, टांका, बावड़ी और कुंड, गुजरात में वाव, बिहार एवं मध्य भारत में तालाब तथा दक्षिण भारत में एरी (टैंक) जैसी जल संरचनाएँ वर्षा जल संचयन एवं भूजल पुनर्भरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन प्रणालियों के माध्यम से जल का संग्रह, संरक्षण और न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित किया जाता था। वर्तमान जल संकट की स्थिति में इन पारंपरिक प्रणालियों का पुनर्जीवन अत्यंत आवश्यक माना जा रहा है।

3.3 पवित्र नदियों एवं जल स्रोतों का संरक्षण :

भारतीय संस्कृति में गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी आदि नदियों को माता के समान सम्मान दिया गया है। धार्मिक आस्था के कारण जल स्रोतों की स्वच्छता एवं संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता था। गाँवों में तालाबों, कुओं एवं सरोवरों की नियमित सफाई तथा सामुदायिक संरक्षण की परंपरा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक थी।

3.4 पारंपरिक कृषि प्रणाली :

भारतीय कृषि पद्धति प्रकृति के अनुकूल एवं पर्यावरण–मित्र रही है। जैविक खाद, गोबर की खाद, हरी खाद, फसल चक्र (Crop Rotation), मिश्रित खेती, बहुफसली खेती तथा प्राकृतिक कीट नियंत्रण जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता था। इन विधियों से भूमि की उर्वरता बनी रहती थी, रासायनिक प्रदूषण कम होता था तथा जैव विविधता को बढ़ावा मिलता था। वर्तमान समय में जैविक खेती के बढ़ते महत्व ने इन पारंपरिक तकनीकों को पुनः प्रासंगिक बना दिया है।

3.5 जैव विविधता का संरक्षण :

भारतीय समाज में अनेक पशु–पक्षियों एवं पौधों को धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया गया है। गाय, नाग, मोर, हाथी, बंदर, तुलसी, पीपल एवं वट जैसे जीव–जंतुओं और वनस्पतियों के प्रति सम्मान की भावना ने उनके संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कई समुदायों में शिकार पर सामाजिक प्रतिबंध तथा प्रजनन काल में वन्यजीवों की सुरक्षा जैसी परंपराएँ भी प्रचलित थीं।

3.6 सामुदायिक वन एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन :

ग्रामीण समाज में वन, चारागाह, जलाशय एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का सामुदायिक प्रबंधन किया जाता था। ग्राम पंचायतों एवं स्थानीय समुदायों द्वारा इन संसाधनों के उपयोग के नियम निर्धारित किए जाते थे, जिससे उनका अंधाधुंध दोहन न हो। यह व्यवस्था संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई।

3.7 आयुर्वेद एवं औषधीय वनस्पतियों का संरक्षण :

भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा में औषधीय पौधों का विशेष महत्व है। अश्वगंधा, गिलोय, तुलसी, नीम, आंवला, हरड़ और बहेड़ा जैसी वनस्पतियों का संरक्षण एवं संवर्धन किया जाता था। औषधीय पौधों की खेती और संरक्षण ने जैव विविधता को सुरक्षित रखने के साथ–साथ स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों की रक्षा में योगदान दिया।

3.8 पर्व-त्योहार एवं सांस्कृतिक परंपराएँ :

भारतीय त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का प्रकृति संरक्षण से गहरा संबंध रहा है। वट सावित्री, तुलसी विवाह, हरियाली अमावस्या, वृक्षारोपण पर्व तथा नाग पंचमी जैसे अवसरों पर वृक्षों, पौधों एवं जीव–जंतुओं के संरक्षण का संदेश दिया जाता है। इन सांस्कृतिक परंपराओं ने समाज में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना को मजबूत किया।

3.9 पर्यावरणीय नैतिकता एवं जीवन-दर्शन :

भारतीय दर्शन में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व' जैसे सिद्धांत मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने पर बल देते हैं। आवश्यकता के अनुसार संसाधनों का उपयोग, अपव्यय से बचना, पुनः उपयोग (Reuse) तथा पुनर्चक्रण (Recycle) जैसी जीवनशैली पर्यावरण संरक्षण के मूल सिद्धांतों के अनुरूप है।

4. भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण :

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की भावना अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रही है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, बौद्ध तथा जैन साहित्य में प्रकृति को जीवन का आधार मानते हुए उसके संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत कहा गया है तथा इनकी शुद्धता और संतुलन को मानव जीवन की समृद्धि के लिए आवश्यक माना गया है। इन ग्रंथों में प्रकृति का शोषण नहीं, बल्कि उसके साथ संतुलित एवं सह–अस्तित्वपूर्ण जीवन जीने की शिक्षा दी गई है।

4.1 वेदों में पर्यावरण संरक्षण :

वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में प्रकृति के विभिन्न तत्वों की महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है।

- ऋग्वेद में सूर्य, जल, वायु, अग्नि तथा पृथ्वी को जीवनदायी शक्तियों के रूप में वर्णित किया गया है तथा उनके संरक्षण और सम्मान पर बल दिया गया है।
- अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी को माता और मानव को उसका पुत्र कहा गया है। यह सूक्त पृथ्वी के संसाधनों के संतुलित उपयोग तथा उसके संरक्षण का संदेश देता है।
- यजुर्वेद में जल, वायु और वनस्पतियों की शुद्धता को मानव स्वास्थ्य एवं समाज के कल्याण के लिए आवश्यक बताया गया है।

इन वैदिक शिक्षाओं से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण संरक्षण भारतीय संस्कृति का मूल आधार रहा है।

4.2 उपनिषदों में पर्यावरणीय दर्शन :

उपनिषदों में समस्त सृष्टि को एक ही परम चेतना का स्वरूप माना गया है। ईशावास्य उपनिषद में यह संदेश दिया गया है कि सम्पूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है, इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संयम और उत्तरदायित्व के साथ किया जाना चाहिए। यह विचार सतत विकास एवं संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग की आधुनिक अवधारणा से मेल खाता है।

4.3 रामायण एवं महाभारत में पर्यावरण संरक्षण :

रामायण में वन, पर्वत, नदियों एवं वन्य जीवों के प्रति सम्मान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

भगवान राम का वनवास प्रकृति के साथ संतुलित जीवन तथा वन संस्कृति के महत्व को दर्शाता है।

महाभारत में भी वृक्षारोपण, जल संरक्षण, पशु–पक्षियों की रक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग पर बल दिया गया है। अनेक प्रसंगों में वृक्षों की रक्षा को पुण्य एवं उनकी अनावश्यक कटाई को अनुचित बताया गया है।

4.4 भगवद्गीता में पर्यावरण संरक्षण :

भगवद्गीता में प्रकृति और मानव के पारस्परिक संबंध को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। श्रीकृष्ण ने सृष्टि के संतुलन को बनाए रखने के लिए यज्ञ, कर्म और प्रकृति के बीच परस्पर निर्भरता का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। गीता के अनुसार यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों का सम्मान करता है, तो प्रकृति भी उसके जीवन को समृद्ध बनाती है। यह विचार पर्यावरणीय संतुलन और सतत जीवनशैली का आधार है।

4.5 पुराणों में प्रकृति संरक्षण :

पुराणों में अनेक वृक्षों, नदियों और पर्वतों को पवित्र माना गया है। पीपल, वट, तुलसी, बेल तथा आंवला जैसे वृक्षों की पूजा की परंपरा उनके संरक्षण का प्रभावी माध्यम रही है। गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी तथा अन्य नदियों को देवी का स्वरूप मानकर उनकी पवित्रता बनाए रखने पर बल दिया गया है। धार्मिक आस्थाओं ने पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक व्यवहार का हिस्सा बना दिया।

4.6 बौद्ध एवं जैन साहित्य में पर्यावरण संरक्षण :

बौद्ध धर्म में करुणा, अहिंसा तथा सभी जीवों के प्रति दया का सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण का आधार है। भगवान बुद्ध ने वृक्षों, पशु–पक्षियों तथा समस्त जीव–जगत के प्रति संवेदनशील व्यवहार की शिक्षा दी।

जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोच्च धर्म माना गया है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, जीवन का अधिकारी है। इसलिए किसी भी जीव या प्राकृतिक तत्व को अनावश्यक हानि पहुँचाना अनुचित माना गया है। यह दृष्टिकोण जैव विविधता के संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

4.7 भारतीय ग्रंथों की समकालीन प्रासंगिकता :

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जल संकट तथा जैव विविधता के क्षरण जैसी वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में भारतीय ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं। प्रकृति के प्रति सम्मान, संसाधनों का संयमित उपयोग, वृक्षारोपण, जल संरक्षण तथा सभी जीवों के साथ सह–अस्तित्व जैसे सिद्धांत सतत विकास के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। यदि इन मूल्यों को शिक्षा, नीति–निर्माण तथा सामाजिक जीवन में प्रभावी रूप से अपनाया जाए, तो पर्यावरण संरक्षण के प्रयास अधिक सफल हो सकते हैं।

5. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता :

वर्तमान समय में विश्व अनेक गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, वनों की कटाई, जैव विविधता का क्षरण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन मानव अस्तित्व के लिए गंभीर संकट बन चुके हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि स्थानीय ज्ञान, सामुदायिक सहभागिता और पारंपरिक पर्यावरणीय प्रबंधन प्रणालियों को भी अपनाना आवश्यक है। इस संदर्भ में भारतीय पारंपरिक ज्ञान (Indian Traditional Knowledge) सतत एवं पर्यावरण–अनुकूल विकास का एक प्रभावी आधार प्रस्तुत करता है।

5.1 जलवायु परिवर्तन के समाधान में योगदान :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने पर आधारित है। वृक्षारोपण, सामुदायिक वन संरक्षण, जैविक खेती तथा वर्षा जल संचयन जैसी पारंपरिक प्रणालियाँ कार्बन उत्सर्जन को कम करने, हरित आवरण बढ़ाने तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक हैं। आज अनेक पर्यावरणीय नीतियों में इन उपायों को पुनः अपनाने पर बल दिया जा रहा है।

5.2 जल संरक्षण और जल प्रबंधन :

भारत के अनेक क्षेत्रों में पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियाँ, जैसे 'जोहड़, बावड़ी, टांका, कुंड, तालाब और झीलें' आज भी जल संकट के समाधान का प्रभावी माध्यम हैं। वर्षा जल संचयन तथा भूजल पुनर्भरण की ये पारंपरिक तकनीकें आधुनिक जल प्रबंधन कार्यक्रमों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। इनका पुनर्जीवन जल सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

5.3 सतत कृषि एवं खाद्य सुरक्षा :

रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से भूमि की उर्वरता और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके विपरीत भारतीय पारंपरिक कृषि प्रणाली जैविक खाद, गोबर की खाद, फसल चक्र, मिश्रित खेती तथा स्थानीय बीजों के संरक्षण पर आधारित है। ये पद्धतियाँ मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने, जल संरक्षण करने तथा सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्यान्न उत्पादन में सहायक हैं। इसलिए वर्तमान समय में जैविक खेती और प्राकृतिक कृषि को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

5.4 जैव विविधता का संरक्षण :

भारतीय परंपरा में वृक्षों, वन्य जीवों और औषधीय पौधों के संरक्षण की समृद्ध परंपरा रही है। पवित्र उपवन (Sacred Groves), देववन तथा धार्मिक आस्थाओं से जुड़े संरक्षण उपायों ने अनेक दुर्लभ प्रजातियों को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक जैव विविधता संरक्षण कार्यक्रमों में इन पारंपरिक व्यवस्थाओं को उपयोगी मॉडल के रूप में देखा जा रहा है।

5.5 सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति में भूमिका :

संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals–SDGs) जैसे 'स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, जलवायु कार्रवाई, भूमि पर जीवन, सतत समुदाय तथा जिम्मेदार उपभोग एवं उत्पादन' भारतीय पारंपरिक ज्ञान की मूल अवधारणाओं से मेल खाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग, सामुदायिक सहभागिता तथा पर्यावरणीय नैतिकता इन लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

5.6 पर्यावरणीय शिक्षा एवं जन-जागरूकता :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण के प्रति नैतिक चेतना विकसित करता है। यदि विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान परंपरा और पर्यावरणीय मूल्यों को शामिल किया जाए, तो विद्यार्थियों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना विकसित की जा सकती है। इससे समाज में पर्यावरण संरक्षण के प्रति दीर्घकाठलक जागरूकता बढ़ेगी।

5.7 आधुनिक विज्ञान और पारंपरिक ज्ञान का समन्वय :

वर्तमान समय की जटिल पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान तभी संभव है जब आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समन्वय भारतीय पारंपरिक ज्ञान के साथ किया जाए। वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा पारंपरिक जल

संरक्षण, जैविक कृषि, औषधीय पौधों तथा सामुदायिक संसाधन प्रबंधन की प्रणालियों का मूल्यांकन एवं विकास कर उन्हें व्यापक स्तर पर लागू किया जा सकता है। यह समन्वित दृष्टिकोण सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

6. चुनौतियाँ :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण की एक समृद्ध एवं प्रभावी प्रणाली है, किंतु वर्तमान समय में इसके संरक्षण, संवर्धन तथा व्यवहारिक उपयोग के समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। तीव्र औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण तथा आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव के कारण पारंपरिक ज्ञान धीरे–धीरे उपेक्षित होता जा रहा है। यदि इन चुनौतियों का समय रहते समाधान नहीं किया गया, तो पर्यावरण संरक्षण से जुड़ी अनेक मूल्यवान परंपराएँ विलुप्त हो सकती हैं।

6.1 पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना :

आधुनिक शिक्षा, तकनीकी विकास तथा बदलती जीवनशैली के कारण नई पीढ़ी का पारंपरिक ज्ञान और लोक परंपराओं से जुड़ाव कम होता जा रहा है। पहले जो ज्ञान मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता था, वह अब धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। इससे जल संरक्षण, जैविक कृषि, औषधीय पौधों तथा सामुदायिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित बहुमूल्य ज्ञान के लुप्त होने का खतरा बढ़ गया है।

6.2 शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण :

तेजी से बढ़ते शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण वनों की कटाई, कृषि भूमि का संकुचन, जल स्रोतों का प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक पर्यावरणीय व्यवस्थाएँ प्रभावित हुई हैं और स्थानीय समुदायों की प्रकृति आधारित जीवनशैली में परिवर्तन आया है।

6.3 प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन :

बढ़ती जनसंख्या, उपभोक्तावाद तथा आर्थिक विकास की प्रतिस्पर्धा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलित उपयोग हो रहा है। इससे जल, वन, भूमि तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारतीय पारंपरिक ज्ञान जहाँ संसाधनों के संतुलित उपयोग की शिक्षा देता है, वहीं वर्तमान विकास मॉडल अक्सर अल्पकालिक आर्थिक लाभ को प्राथमिकता देता है।

6.4 पारंपरिक ज्ञान का अपर्याप्त दस्तावेजीकरण :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान का एक बड़ा भाग आज भी मौखिक परंपरा पर आधारित है। अनेक स्थानीय समुदायों, जनजातियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के पास पर्यावरण संरक्षण से संबंधित अमूल्य ज्ञान उपलब्ध है, किंतु उसका व्यवस्थित दस्तावेजीकरण एवं वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो पाया है। इसके कारण यह ज्ञान धीरे–धीरे विलुप्त होने की स्थिति में है।

6.5 शिक्षा एवं जन–जागरूकता का अभाव :

विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में भारतीय पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान को अपेक्षित महत्व नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों तथा समाज के बड़े वर्ग में इसकी उपयोगिता के प्रति पर्याप्त जागरूकता विकसित नहीं हो पाती। पर्यावरण संरक्षण से जुड़े पारंपरिक मूल्यों को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ना समय की आवश्यकता है।

6.6 नीतिगत एवं संस्थागत चुनौतियाँ :

यद्यपि पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक सरकारी योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, फिर भी उनमें स्थानीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और अनुभवों का पर्याप्त समावेश नहीं हो पाता। कई बार विकास परियोजनाओं के कारण पारंपरिक जल संरचनाएँ, वन क्षेत्र तथा जैव विविधता प्रभावित होती है। नीति–निर्माण में स्थानीय सहभागिता और पारंपरिक ज्ञान को अधिक महत्व दिए जाने की आवश्यकता है।

6.7 बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Rights) से संबंधित समस्याएँ :

पारंपरिक ज्ञान का अनुचित व्यावसायिक उपयोग, जैव संसाधनों का अनधिकृत दोहन तथा स्थानीय समुदायों को उचित लाभ न मिलना भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण तथा उससे जुड़े समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रभावी कानूनी व्यवस्था और जागरूकता आवश्यक है।

6.8 जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरणीय असंतुलन :

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा चक्र में परिवर्तन, सूखा, बाढ़, अत्यधिक तापमान तथा प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति बढ़ रही है। इन परिस्थितियों में कई पारंपरिक कृषि एवं जल प्रबंधन प्रणालियाँ नई चुनौतियों का सामना कर रही हैं। इसलिए आवश्यक है कि पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ समन्वित कर अधिक प्रभावी बनाया जाए।

7. सुझाव :

1. भारतीय पारंपरिक ज्ञान का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण किया जाए।
2. विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।
3. पारंपरिक जल संरचनाओं का संरक्षण एवं पुनर्जीवन किया जाए।
4. जैविक खेती एवं स्थानीय बीजों को प्रोत्साहन दिया जाए।
5. स्थानीय समुदायों की सहभागिता से पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
6. आधुनिक विज्ञान एवं पारंपरिक ज्ञान का समन्वित उपयोग किया जाए।

निष्कर्ष :

भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण की एक वैज्ञानिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक प्रणाली है। यह केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग एवं सतत विकास का व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करता है। वर्तमान पर्यावरणीय संकटों के समाधान के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। यदि पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक नीतियों एवं शिक्षा व्यवस्था में उचित स्थान दिया जाए, तो पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ सतत एवं समावेशी विकास के लक्ष्य को प्रभावी रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय पारंपरिक पर्यावरणीय उपाय वैज्ञानिक सोच, स्थानीय अनुभव तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित हैं। इन उपायों ने सदियों तक प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, जैव विविधता की रक्षा तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जल संकट तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी वैश्विक चुनौतियों के समाधान के लिए इन पारंपरिक उपायों का आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के साथ समन्वित उपयोग अत्यंत आवश्यक है। इससे सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति तथा भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित एवं स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सकता है।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय पारंपरिक ज्ञान केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संकटों के समाधान का एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक आधार है। जलवायु परिवर्तन, जल संकट, प्रदूषण, जैव विविधता संरक्षण तथा सतत विकास जैसी वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए भारतीय पारंपरिक ज्ञान की उपयोगिता निरंतर बढ़ रही है। इसलिए आवश्यक है कि इस ज्ञान का संरक्षण, वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण तथा आधुनिक नीतियों, शिक्षा प्रणाली और विकास योजनाओं में प्रभावी समावेश किया जाए। इससे पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित, संतुलित और सतत भविष्य सुनिश्चित किया जा सकेगा।

संदर्भ (References)

1. Kandari, L. S. et al. (2014). Conservation and Management of Sacred Groves. Environmental Systems Research.
2. Singh, N. & Shreya, S. (2025). Nature-Based Solutions as Tradition in India. Water (MDPI)
3. शर्मा, कान्ती (2024). पर्यावरण संरक्षण और भारतीय ज्ञान परम्परा.
4. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 48। एवं 51।
5. अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त।
6. Berkes, F. (2018). Sacred Ecology (4th ed.). Routledge.
7. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). Ecology and Equity : The Use and Abuse of Nature in Contemporary India. Routledge.
8. Shiva, V. (2005). Earth Democracy : Justice, Sustainability and Peace. South End Press.
9. Sharma, P. D. (2019). Ecology and Environment. Rastogi Publications.
10. Odum, E. P., & Barrett, G. W. (2005). Fundamentals of Ecology (5th ed.). Brooks/Cole.
11. भारत सरकार। राष्ट्रीय वन नीति, 1988।
12. भारत सरकार। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारतीयांचे मानसशास्त्रातील योगदान : एक विश्लेषणात्मक अभ्यास

प्रा डॉ सुधाकर शिवाजी जाधव
मानसशास्त्र विभाग प्रमुख,
सुंदरराव मोरे महाविद्यालय, पोलादपूर जिल्हा रायगड, महाराष्ट्र ४०२३०३

गोषवारा (Abstract) :

आधुनिक मानसशास्त्राचा उदय एकोणिसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धात पाश्चात्य जगात झाला असे मानले जात असले, तरी मानवी मन, वर्तन, जाणीव आणि अचेतन अवस्था यांचा सखोल वेध प्राचीन भारतीयांनी हजारो वर्षांपूर्वीच घेतला होता. प्राचीन भारतीय तत्त्वज्ञान, वेद, उपनिषदे, भगवद्गीता, पातंजल योगसूत्र, बौद्ध व जैन तत्त्वज्ञान आणि आयुर्वेद या सर्वच ज्ञानशाखांमध्ये मानवी मनाचे अतिशय सूक्ष्म आणि सखोल विश्लेषण आढळते. हा शोधनिबंध प्राचीन भारतीय वाङ्मयातील मानसशास्त्रीय संकल्पनांवर प्रकाश टाकतो. पाश्चिमात्य मानसशास्त्र जिथे मानवी वर्तनाचा अभ्यास करण्यावर भर देते, तिथे भारतीय मानसशास्त्र चेतना (Consciousness), चित्त (Mind), आणि आत्म–साक्षात्कार (Self-realization) या सर्वोच्च स्थितीचा वेध घेते. या शोधनिबंधात गीतेतील मानसोपचार, योगसूत्रातील अचेतन मनाचे नियंत्रण आणि आयुर्वेदातील मनो–शारीरिक (Psycho-somatic) आरोग्याचे महत्त्व स्पष्ट करण्यात आले आहे. आजच्या युगातील वाढता ताणतणाव, नैराश्य व मानसिक अस्थिरता यांवर मात करण्यासाठी प्राचीन भारतीय मानसशास्त्रीय दृष्टिकोन कसा उपयुक्त आहे, हे यातून सिद्ध होते.

कूट शब्द (Keywords) –

मानसशास्त्र, प्राचीन भारतीय ज्ञान, योगशास्त्र, भगवद्गीता, आयुर्वेद, त्रिगुण, पंचकोश, चित्तवृत्ती निरोध, मानसोपचार.

प्रस्तावना (Introduction) :

मानसशास्त्र (Psychology) ही आजच्या काळातील एक अत्यंत महत्त्वाची आणि विकसित ज्ञानशाखा आहे. पाश्चिमात्य जगाच्या मते विल्यम वुण्ट (Wilhelm Wundt) यांनी १८७६ मध्ये लिपझिग विद्यापीठात मानसशास्त्राची पहिली प्रयोगशाळा स्थापन केली आणि तिथून मानसशास्त्राचा शास्त्रशुद्ध अभ्यास सुरू झाला. परंतु, भारतीयांसाठी मानसशास्त्र हा कोणताही नवीन विषय नाही. प्राचीन भारतात मानसशास्त्राला स्वतंत्र विषय म्हणून वेगळे काढले गेले नव्हते, तर तो तत्त्वज्ञान (Philosophy), धर्म (Religion), आणि वैद्यकशास्त्र (Medicine) यांचाच एक अविभाज्य भाग होता.

भारतीय दर्शनशास्त्रे (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा आणि उत्तर मीमांसा/वेदान्त) ही केवळ तात्त्विक चर्चा करत नाहीत, तर ती मानवी दुःखाचे मूळ शोधून ते दूर करण्याचे उपाय सांगतात. पाश्चात्य मानसशास्त्र जिथे आजारावर उपचार करण्यावर (Pathological approach) जास्त लक्ष केंद्रित करते, तिथे प्राचीन भारतीय दृष्टीकोन हा 'समग्र आरोग्यावर' (Holistic well-being) आणि 'आत्मविकासावर' भर देणारा आहे. मन म्हणजे काय? जाणीव (Consciousness) म्हणजे काय? भावनांचे नियंत्रण कसे करावे? माणसाच्या व्यक्तिमत्त्वाची जडणघडण कशी होते? या सर्व प्रश्नांची उत्तरे प्राचीन भारतीय ग्रंथांमध्ये अत्यंत वैज्ञानिक पद्धतीने दिलेली आढळतात. प्रस्तुत शोधनिबंध प्राचीन भारतीयांच्या याच अमूल्य मानसिक आणि बौद्धिक योगदानाचा तपशीलवार अभ्यास करतो.

शोधनिबंधाची उद्दिष्टे (Objectives of the Research Paper) :

प्रस्तुत शोधनिबंधाची प्रमुख उद्दिष्टे खालीलप्रमाणे आहेत :

१) प्राचीन भारतीय वाङ्मय आणि दर्शनशास्त्र यांमधील मानसशास्त्रीय संकल्पनांचे अध्ययन करणे.

२) वेद व उपनिषदांमधील 'मन' आणि 'चेतना' (Consciousness) याविषयीच्या संकल्पनांचा वेध घेणे.

३) भगवद्गीता ही प्राचीन मानसोपचार पद्धती (Psychotherapy) कशी आहे, याचे विश्लेषण करणे.

४) महर्षी पतंजली यांच्या योगसूत्रांचे मानसशास्त्रीय महत्त्व अधोरेखित करणे.

५) आयुर्वेदातील मनो–शारीरिक (Psycho-somatic) आरोग्याच्या दृष्टिकोनाचा अभ्यास करणे.

६) आधुनिक काळातील मानसिक समस्या सोडवण्यासाठी प्राचीन भारतीय ज्ञानाची उपयुक्तता स्पष्ट करणे.

मुख्य विषय व चर्चा (Main Theme and Discussion) :

प्राचीन भारतीय मानसशास्त्राचे योगदान एकाच ग्रंथापुरते मर्यादित नाही. ते वेगवेगळ्या कालखंडात विविध ग्रंथांतून व तत्त्वज्ञानातून विकसित झाले आहे. त्याचा सविस्तर आढावा खालीलप्रमाणे घेता येईल :

अ) वेद आणि उपनिषदांमधील मानसशास्त्र :

वेद हे भारतीय ज्ञानाचा मूळ स्रोत आहेत. अथर्ववेदात मानवी मनाच्या विविध अवस्था, मानसिक रोग आणि त्यावरील उपचारांचा उल्लेख सापडतो. उपनिषदांमध्ये मानवी व्यक्तिमत्त्वाचे अत्यंत प्रगत विश्लेषण केले आहे.

- **पंचकोश सिद्धांत (Theory of Fice Sheaths) :** तैत्तिरीय उपनिषदात मानवी अस्तित्वाची पाच स्तरांम/ये विभागणी केली आहे. हे पाच कोश म्हणजे अन्नमय कोश (Physical body), प्राणमय कोश (Vital energy), मनोमय कोश (Mind and emotions), विज्ञानमय कोश (Intellect), आणि आनंदमय कोश (Bliss/Conscioussness). मानसशास्त्रातील मॅस्लोच्या 'Hierarchy of Needs' शी याची तुलना करता येते.

- **चेतनेच्या चार अवस्था (Four States of Consciousness) :** मांडुक्य उपनिषदात चेतनेच्या चार अवस्था सांगितल्या आहेत – त (Waking), स्वप्न (Dreaming), सुषुप्ती (Deep Sleep), आणि तुरीय (Super-consciousness). मानवी अचेतन मनाचा (Unconscious mind) इतका सखोल अभ्यास फ्रॉयडच्याही हजारो वर्षे आधी भारतीयांनी केला होता.

आ) सांख्य तत्त्वज्ञान आणि त्रिगुण सिद्धांत :

कपिल मुनींचे सांख्य दर्शन हे भारतीय मानसशास्त्राचा पाया मानले जाते. या तत्त्वज्ञानाने मानवी व्यक्तिमत्त्वाचे (Personality) वर्गीकरण 'त्रिगुण सिद्धांता' नुसार केले आहे :

१. **सत्त्वगुण :** शांतता, ज्ञान, एकाग्रता, स्पष्टता आणि सकारात्मकता दर्शवतो.

२. **रजोगुण :** यातून क्रियाशीलता, महत्त्वाकांक्षा, राग, ताणतणाव आणि अशांतता निर्माण होते.

३. **तमोगुण :** हा अज्ञान, आळस, उदासीनता आणि नैराश्य यांचा प्रतीक आहे.

माणसाचे वर्तन या तीन गुणांच्या मिश्रणातून आणि त्यांच्यातील चढ–उतारातून ठरते. आधुनिक मानसशास्त्रातील 'Personality Traits' च्या अभ्यासापेक्षा हा दृष्टिकोन अधिक परिपूर्ण आहे.

इ) भगवद्गीता : जगातील पहिला मानसोपचार (CBT) ग्रंथ :

कुरुक्षेत्रावर युद्धाच्या प्रसंगी अर्जुनाला आलेले नैराश्य (Depression) आणि चिंता (Anxiety) हे आजच्या काळातील कोणत्याही सामान्य माणसाच्या मानसिक स्थितीचे प्रतिनिधित्व करते. अर्जुनाचा 'विषाद' हा एक मानसिक आजार होता. भगवान श्रीकृष्ण हे जगातील पहिले मानसोपचारतज्ज्ञ (Psychotherapist) म्हणून पुढे येतात.

आधुनिक मानसशास्त्रात ज्याला Cognitive Behavioral Therapy (CBT) म्हणतात, त्याचा उत्कृष्ट नमुना गीतेत दिसतो. श्रीकृष्ण प्रथम अर्जुनाचे म्हणणे शांतपणे ऐकून घेतात (Catharsis/Active Listening), त्यानंतर त्याच्या चुकीच्या धारणा (Cognitive Distortions) तर्कशुद्ध संवादातून मोडतात आणि त्याला स्वधर्माची (कर्तव्याची) जाणीव करून देतात. 'स्थितप्रज्ञ' ही संकल्पना म्हणजे Emotional Intelligence (भावनिक बुद्धिमत्ता) चे सर्वोच्च शिखर आहे.

ई) पातंजल योगसूत्र : मन नियंत्रणाचे शास्त्र :

महर्षी पतंजली यांनी 'योगसूत्र' या ग्रंथात मानवी मनाचे अफाट विश्लेषण केले आहे. त्यांच्या मते, 'योगः चित्तवृत्ती निरोधः' (चित्तातील अकारण उठणाऱ्या वृत्ती–विचारांच्या लाटा थांबवणे म्हणजे योग).

पतंजलींनी अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी) सांगितला. यातील पहिली पाच अंगे मानसिक आणि शारीरिक शिस्तीसाठी, तर पुढची तीन अंगे थेट मनाच्या उच्च एकाग्रतेसाठी आहेत. ताणतणाव मुक्ती आणि मानसिक शांतीसाठी आज जगभरातील मानसशास्त्रज्ञ 'Mindfulness' आणि 'Meditation' चा जो उपदेश करत आहेत, तो पतंजलींनी अत्यंत शास्त्रशुद्ध पद्धतीने मांडून ठेवलेला आहे.

उ) आयुर्वेद आणि मानसोलॉजिकल आरोग्य :

महर्षी चरक आणि सुश्रुत यांनी केवळ शारीरिक रोगांचाच विचार केला नाही, तर 'मन' आणि 'शरीर' यांच्यातील परस्परसंबंधावर भर दिला.

आयुर्वेदानुसार, वात, पित्त आणि कफ हे शारीरिक दोष आहेत, तर रज आणि तम हे मानसिक दोष मानले जातात (सत्त्व हा निर्दोष गुण आहे). मानसिक ताणाचा परिणाम शारीरिक आजारांत (Psycho-somatic diseases) कसा होतो, याचे वर्णन 'चरक संहिते'त आहे. आयुर्वेदात मानसोपचारासाठी 'सत्त्वावजय चिकित्सा' सांगितली आहेय ज्यामध्ये रुग्णाचे मन नियमन करणे, त्याला धीर देणे, त्याची स्मरणशक्ती सुधारणे यासाठी औषधी आणि समुपदेशन (Counseling) यांचा वापर केला जातो.

ऊ) बौद्ध आणि जैन तत्त्वज्ञानातील मानसशास्त्र :

भगवान बुद्धांनी मानवी दुःखाचे मूळ कारण माणसाची आसक्ती आणि 'तृष्णा' यात शोधले. बौद्ध मानसशास्त्र पूर्णपणे 'माइंडफुलनेस' (जागरूकता) आणि 'विपश्यना' यांवर आधारित आहे. आज पाश्चात्य मानसशास्त्राने

'टपचेंदं' आणि 'Zen Mindfulness' आपल्या थेरपीचा एक भाग बनवले आहे.

जैन तत्त्वज्ञानातही 'अनेकांतवाद' (विविध दृष्टिकोन स्वीकारण्याची वृत्ती) मानवी मनाचा अहंकार नष्ट करून मानसिक लवचिकता (Psychological flexibility) आणण्यास मदत करतो.

येथे आपण सुचवलेला 'प्राचीन भारतीय मानसशास्त्राचे आजच्या काळातील महत्त्व' हा अत्यंत कळीचा आणि महत्त्वपूर्ण मुद्दा विश्लेषणासह दिलेला आहे. हा भाग तुम्ही तुमच्या शोधनिबंधाच्या 'मुख्य विषय व चर्चा' (मुद्दा क्र. ५) मध्ये किंवा निष्कर्षाच्या आधी समाविष्ट करू शकता :

प्राचीन भारतीय मानसशास्त्राचे आजच्या काळातील महत्त्व (Relevance of Ancient Indian Psychology in the Modern Era) :

आजचे एकविसावे शतक हे तंत्रज्ञान आणि भौतिक सुखांच्या बाबतीत प्रगत असले, तरी मानसिक आरोग्याच्या दृष्टीने ते अत्यंत आव्हानात्मक बनले आहे. जागतिक आरोग्य संघटनेच्या (WHO) मते, आज नैराश्य (Depression) आणि चिंता (Anxiety) हे जगातील सर्वात मोठे आरोग्याचे प्रश्न बनले आहेत. अशा या आधुनिक काळात प्राचीन भारतीय मानसशास्त्राचे महत्त्व खालील मुद्द्यांच्या आधारे स्पष्ट करता येते :

१) ताणतणाव आणि नैराश्यावरील प्रभावी उपाय :

आजच्या वेगवान आणि स्पर्धात्मक युगात करिअर, नाती आणि अर्थार्जन यांतील अपयशामुळे नैराश्याचे प्रमाण वाढले आहे. अशा वेळी 'भगवद्गीता' हा ग्रंथ केवळ धार्मिक न राहता एक 'व्यावहारिक मानसोपचार' (Practical Psychotherapy) म्हणून समोर येतो. गीतेतील 'कर्मयोग' (फळाची अपेक्षा न करता काम करणे) ही संकल्पना माणसाला अपयशाच्या भीतीतून आणि त्यातून येणाऱ्या ताणातून मुक्त करते. आधुनिक काळातील कॉर्पोरेट जगतात कार्यक्षमता वाढवण्यासाठी अनेक बहुराष्ट्रीय कंपन्या गीतेतील तत्त्वज्ञानाचा व्यवस्थापन (Management) आणि तणावमुक्तीसाठी वापर करत आहेत.

२) 'माइंडफुलनेस' (Mindfulness) आणि डिजिटल युगातील एकाग्रता :

आजच्या सोशल मीडिया आणि अति–माहितीच्या युगात माणसाचा 'अटेन्शन स्पॅन' (एकाग्रतेचा कालावधी) कमालीचा कमी झाला आहे. अस्वस्थता आणि चंचलता वाढली आहे. यावर मात करण्यासाठी महर्षी पतंजलींचे 'अष्टांग योग' आणि विशेषतः 'धारणा' व 'ध्यान' अत्यंत उपयुक्त ठरत आहेत. तसेच बौद्ध विचारधारेतील 'विपश्यना' (Vipassana) ही आज जगभरात 'माइंडफुलनेस थेरपी' म्हणून वापरली जात आहे. वर्तमानात जगण्याची कला आणि स्वतःच्या श्वासावर, विचारांवर नियंत्रण मिळवण्याचे हे प्राचीन शास्त्र आजच्या पिढीसाठी मानसिक स्थैर्य मिळवण्याचा सर्वात मोठा मार्ग आहे.

३) मनो–शारीरिक (Psycho-Somatic) आजारांवरील नियंत्रण :

आजच्या काळातील मधुमेह (Diabetes), रक्तदाब (Blood Pressure), हृदयविकार यांसारखे बहुतांश आजार हे 'लाईफस्टाईल आणि स्ट्रेस' (जीवनशैली आणि ताण) यांमुळे उद्भवणारे मनो–शारीरिक आजार आहेत. आधुनिक वैद्यकशास्त्र केवळ शरीरावर उपचार करते, परंतु आयुर्वेद आणि प्राचीन भारतीय शास्त्रे शरीरासोबत मनाची शुद्धी करण्यावर भर देतात. मनातील 'रज' आणि 'तम' गुणांचे नियंत्रण करून योगासने आणि प्राणायामाच्या माध्यमातून शारीरिक व्याधी मुळापासून नष्ट करण्याचे सामर्थ्य या प्राचीन ज्ञानात आहे.

४) भावनिक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence) आणि 'स्थितप्रज्ञ' अवस्था :

आधुनिक मानसशास्त्रात डॅनियल गोलमन यांनी 'इमोशनल इंटेलिजन्स' (EQ) ही संकल्पना मांडली आणि ती IQ पेक्षाही महत्त्वाची असल्याचे सिद्ध केले. परंतु, हजारो वर्षांपूर्वी गीतेने 'स्थितप्रज्ञ' या संकल्पनेतून भावनिक बुद्धिमत्तेचे सर्वोच्च आणि परिपूर्ण मॉडेल जगाला दिले आहे. सुख–दुःख, निंदा–स्तुती, यश–अपयश या सर्व द्वंद्वांमध्ये स्वतःचे भावनिक संतुलन ढळू न देणे, हे आजच्या धावपळीच्या आणि स्पर्धेच्या जगात जगण्यासाठी अत्यंत आवश्यक कौशल्य (Life Skill) बनले आहे.

५) निवारणात्मक दृष्टिकोन (Preventive Approach) :

पाश्चात्य मानसशास्त्र एखाद्या व्यक्तीला मानसिक आजार झाल्यानंतर, म्हणजेच तो 'रुग्ण' झाल्यानंतर त्यावर 'थेरपी' करते (Curative Approach). याउलट, प्राचीन भारतीय मानसशास्त्र हे माणसाला आजारी पडूच नये यासाठी मानसिक संवर्धन (Preventive Approach) करायला शिकवते. 'सत्त्व' गुणाचा विकास कसा करावा, आहाराचा मनावर कसा परिणाम होतो (उदा. सात्त्विक आहार), आणि दिनचर्या कशी असावी, याचे मार्गदर्शन करून भारतीय मानसशास्त्र मानवी मनाला एका उच्च पातळीवर (Self-Actualization) घेऊन जाते.

थोडक्यात सांगायचे तर, आधुनिक मानसशास्त्र आपल्याला मानवी 'वर्तनाची' (Behavior) कारणे सांगते, पण प्राचीन भारतीय मानसशास्त्र आपल्याला ते वर्तन कसे 'सुधारावे' आणि आतील 'शांती' कशी शोधावी याचा शाश्वत मार्ग दाखवते. त्यामुळे आजच्या अस्थिर आणि ताणतणावग्रस्त जगात प्राचीन भारतीय मानसशास्त्रीय संकल्पनांचे महत्त्व पूर्वीपेक्षा कित्येक पटींनी वाढले आहे.

निष्कर्ष (Conclusion) :

प्राचीन भारतीयांचे मानसशास्त्रातील योगदान हे केवळ ऐतिहासिक नसून ते आजच्या एकविसाव्या शतकातही तितकेच प्रासंगिक आणि उपयुक्त आहे. आधुनिक मानसशास्त्राने मानवी वर्तनाचे आणि मेंदूचे बाह्य अंगाने खूप सूक्ष्म विश्लेषण केले असले, तरी अंतर्गत शांती आणि आत्मविकासाच्या बाबतीत प्राचीन भारतीय मानसशास्त्र खूप पुढे आहे.

पाश्चात्य मानसशास्त्राने माणसाचे मन शोधले, परंतु प्राचीन भारतीयांनी त्या मनाला जिंकण्याचे आणि वळण लावण्याचे शाश्वत उपाय हजारो वर्षांपूर्वीच जगाला दिले आहेत. हे प्राचीन भारतीयांचे संपूर्ण मानवजातीसाठी असलेले एक अमूल्य आणि अजोड योगदान आहे.

१) प्राचीन भारतीयांनी मानवी मन, शरीर आणि आत्मा यांना वेगळे न मानता एक समग्र (Holistic) विचार केला.

२) भारतीय मानसशास्त्राचा मुख्य उद्देश केवळ 'मानसिक आजार बरा करणे' हा नसून, मानवी मनाला त्याच्या सर्वोच्च क्षमतेपर्यंत पोहोचवणे (Self-Actualization) हा आहे.

३) आज संपूर्ण जग नैराश्य, ताणतणाव आणि एन्झायटी (Anaiety) सारख्या समस्यांनी ग्रासलेले असताना भगवद्गीता, पतंजली योगसूत्र आणि विपश्यना हे मार्ग मानवासाठी संजीवनी ठरत आहेत.

संदर्भ साधने (References) :

१. भगवद्गीता – गीताप्रेस गोरखपूर प्रकाशन.

२. पातंजल योग दर्शन – स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ प्रकाशन.

३. 'Indian Psychology (Vol. 1, 2, 3)' & Jadunath Sinha
(जादूनाथ सिन्हा यांचे ऐतिहासिक व महत्त्वपूर्ण पुस्तक).
४. चरक संहिता (मराठी अनुवाद) – वैद्यकीय साहित्य प्रकाशन.
५. 'Hindu Psychology : Its Meaning for the West' & Swami Akhilananda.
६. उपनिषदे (ईशावास्य, केन, कठ, तैत्तिरीय) – सार्थ मराठी अनुवाद.
७. आधुनिक मानसशास्त्र आणि प्राचीन भारतीय विचार – विविध संशोधन लेख आणि विद्यापीठीय प्रबंध.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

डिजिटल भारत और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण : ऐतिहासिक धरोहर के संरक्षण एवं वैश्विक प्रसार की नई संभावनाएँ

कुलदीप कौर
इतिहास विभाग
गवर्नमेंट कॉलेज काला अफगाना, गुरदासपुर।
महाराजा भूपिंदर सिंह पंजाब खेल विश्वविद्यालय, पटियाला।

सारांश (Abstract) :

डिजिटल प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, प्रलेखन, अध्ययन तथा वैश्विक प्रसार के नए अवसर उत्पन्न किए हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत में ऐतिहासिक स्मारक, पुरातात्त्विक स्थल, प्राचीन पांडुलिपियाँ, शिलालेख, सिक्के, चित्रकला, लोक परंपराएँ, संगीत, नृत्य, भाषाएँ तथा अन्य मूर्त एवं अमूर्त विरासतें सम्मिलित हैं। इनका संरक्षण भारतीय इतिहास, सांस्कृतिक पहचान और भावी पीढ़ियों के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य डिजिटल तकनीक के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण और प्रसार की संभावनाओं का अध्ययन करना है। यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी दस्तावेजों तथा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI), संस्कृति मंत्रालय और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (IGNCA) जैसे संस्थानों की प्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल अभिलेखागार, उच्च–गुणवत्ता डिजिटल फोटोग्राफी, 3D स्कैनिंग, GIS, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), आभासी वास्तविकता (VR), संवर्धित वास्तविकता (AR) तथा ऑनलाइन संग्रहालय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और जनसामान्य तक उसकी पहुँच बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। डिजिटल माध्यमों के द्वारा दुर्लभ पांडुलिपियों, ऐतिहासिक दस्तावेजों और स्मारकों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने के साथ–साथ शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों को उनकी व्यापक पहुँच प्रदान की जा सकती है। हालाँकि डिजिटल अवसंरचना, वित्तीय संसाधन, साइबर सुरक्षा, कॉपीराइट, प्रामाणिकता तथा डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। अतः प्रभावी नीतिगत सहयोग, संस्थागत समन्वय और स्थानीय समुदायों की सहभागिता के माध्यम से डिजिटल सांस्कृतिक संरक्षण को अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द : डिजिटल भारत, सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक धरोहर, डिजिटलीकरण, डिजिटल अभिलेखागार, 3D तकनीक, डिजिटल संरक्षण।

1. प्रस्तावना :

भारत की सांस्कृतिक विरासत उसकी ऐतिहासिक पहचान और सामूहिक स्मृति का महत्वपूर्ण आधार है। सिंधु सभ्यता से लेकर प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भारत तक अनेक ऐतिहासिक स्मारक, पुरातात्त्विक स्थल, पांडुलिपियाँ, अभिलेख और लोक परंपराएँ भारतीय इतिहास को समझने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। समय के साथ प्राकृतिक क्षरण, प्रदूषण, शहरीकरण, मानवीय हस्तक्षेप तथा उपेक्षा के कारण अनेक विरासत स्थलों और ऐतिहासिक स्रोतों के संरक्षण की चुनौती बढ़ रही है। ऐसे समय में डिजिटल तकनीक संरक्षण का एक प्रभावी माध्यम बनकर सामने आई है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण तथा IGNCA जैसे संस्थानों द्वारा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों के दस्तावेजीकरण और डिजिटलीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। इससे इतिहास के स्रोतों को सुरक्षित रखने के साथ–साथ उन्हें शोधार्थियों और आम जनता तक पहुँचाना संभव हुआ है।

2. डिजिटल तकनीक और सांस्कृतिक विरासत : डिजिटलीकरण का अर्थ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सामग्री को डिजिटल स्वरूप में संरक्षित करना है। इसके अंतर्गत :

डिजिटल फोटोग्राफी, 3D स्कैनिंग एवं मॉडलिंग, GIS आधारित मानचित्रण, डिजिटल अभिलेखागार, ऑनलाइन संग्रहालय, Virtual Reality (VR), Augmented Reality (AR), Artificial Intelligence (AI), ऑडियो–वीडियो दस्तावेजीकरण जैसी तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। इन तकनीकों के माध्यम से किसी ऐतिहासिक स्मारक या वस्तु का विस्तृत डिजिटल रिकॉर्ड तैयार किया जा सकता है। इससे मूल सामग्री को बार–बार छूने या स्थानांतरित करने की आवश्यकता कम होती है और उसका डिजिटल स्वरूप भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

3. पांडुलिपियों एवं ऐतिहासिक स्रोतों का संरक्षण :

भारत की ऐतिहासिक जानकारी का एक महत्वपूर्ण भाग प्राचीन एवं मध्यकालीन पांडुलिपियों, दस्तावेजों, शिलालेखों और सिक्कों में सुरक्षित है। इनका भौतिक संरक्षण कठिन है क्योंकि समय के साथ कागज, भोजपत्र, ताड़पत्र आदि पर लिखी सामग्री क्षतिग्रस्त हो सकती है। डिजिटलीकरण द्वारा इनकी उच्च गुणवत्ता वाली डिजिटल प्रतियाँ तैयार की जा सकती हैं। इससे शोधार्थी दूर बैठे इन स्रोतों का अध्ययन कर सकते हैं और दुर्लभ सामग्री अधिक व्यापक समुदाय तक पहुँच सकती है। इस प्रकार डिजिटल अ भिलेखागार इतिहास के स्रोतों के संरक्षण और इतिहास लेखन दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

4. ऐतिहासिक स्मारक और डिजिटल संरक्षण :

ऐतिहासिक स्मारक किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। 3D Scanning, Digital Photography और GIS जैसी तकनीकों से इन स्मारकों की संरचना, वास्तुकला और वर्तमान स्थिति का डिजिटल रिकॉर्ड बनाया जा सकता है। भविष्य में यदि किसी स्मारक को प्राकृतिक आपदा या अन्य कारणों से क्षति पहुँचती है, तो उपलब्ध डिजिटल रिकॉर्ड उसके संरक्षण और पुर्नस्थापन में सहायता कर सकता है। इसी प्रकार Virtual Museum और Virtual Tour के माध्यम से लोग बिना उस स्थान पर गए भी ऐतिहासिक स्थलों एवं वस्तुओं का अध्ययन कर सकते हैं। इससे इतिहास शिक्षा और विरासत पर्यटन को भी बढ़ावा मिलता है। भिलेखागार इतिहास के स्रोतों के संरक्षण और इतिहास लेखन दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

5. भारत के विभिन्न राज्यों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत :

भारत की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। प्रत्येक राज्य की अपनी

विशिष्ट ऐतिहासिक परंपराएँ, स्मारक, धार्मिक स्थल, किले, युद्धस्थल, पांडुलिपियाँ, पुराने दस्तावेज, चित्रकला, लोककथाएँ, लोकगीत और मौखिक परंपराएँ हैं। पंजाब की विरासत में सिख गुरुओं से संबंधित ऐतिहासिक स्थल, गुरुद्वारे, किले, युद्धस्थल, पांडुलिपियाँ, पुराने दस्तावेज और विभाजन (Partition) से संबंधित मौखिक इतिहास महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान में किले, महल, हवेलियाँ, युद्धस्थल, राजपूतकालीन स्थापत्य, लोकगीत और लोककथाएँ प्रमुख सांस्कृतिक धरोहर हैं। उत्तर प्रदेश में अयोध्या, वाराणसी, आगरा, मथुरा और प्रयागराज जैसे ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल, मुगलकालीन स्मारक, प्राचीन पांडुलिपियाँ और लोक परंपराएँ महत्वपूर्ण हैं। मध्य प्रदेश में सांची स्तूप, खजुराहो के मंदिर, ग्वालियर किला, प्राचीन शैलचित्र और जनजातीय संस्कृति महत्वपूर्ण विरासत हैं। महाराष्ट्र में अजंता–एलोरा की गुफाएँ, छत्रपति शिवाजी महाराज से संबंधित किले, मराठा इतिहास, पांडुलिपियाँ और लोक परंपराएँ प्रमुख हैं। गुजरात में सिंधु घाटी सभ्यता से संबंधित स्थल, प्राचीन मंदिर, किले, समुद्री व्यापार की विरासत, लोककला और हस्तशिल्प महत्वपूर्ण हैं। बिहार में नालंदा, बोधगया, राजगीर और वैशाली जैसे ऐतिहासिक एवं बौद्ध विरासत स्थल, प्राचीन ग्रंथ और पांडुलिपियाँ महत्वपूर्ण हैं। पश्चिम बंगाल में कोलकाता की औपनिवेशिक विरासत, मुर्शिदाबाद के ऐतिहासिक स्थल, बंगाल पुनर्जागरण से संबंधित दस्तावेज तथा लोक संस्कृति महत्वपूर्ण हैं। तमिलनाडु में चोल एवं पल्लवकालीन मंदिर, तंजावुर की कला, प्राचीन शिलालेख, मूर्तिकला और तमिल साहित्यिक पांडुलिपियाँ महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत हैं। केरल में प्राचीन मंदिर, चर्च, मस्जिदें, महल, आयुर्वेदिक परंपराएँ, लोकनृत्य और समुद्री व्यापार से जुड़ी ऐतिहासिक विरासत महत्वपूर्ण है। ओडिशा में कोणार्क सूर्य मंदिर, पुरी जगन्नाथ मंदिर, प्राचीन बौद्ध स्थल, शिल्पकला और ओडिसी नृत्य जैसी सांस्कृतिक परंपराएँ महत्वपूर्ण हैं। इन सभी राज्यों की विरासत को डिजिटल तकनीक के माध्यम से डिजिटल मानचित्रण, 3D Documentation, पांडुलिपियों का Digitization, पुराने दस्तावेजों के Digital Archives तथा मौखिक इतिहास की Audio-Video Recording द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। विशेष रूप से स्थानीय इतिहास, लोककथाओं और मौखिक परंपराओं का डिजिटल संरक्षण भविष्य के इतिहासकारों, शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है।

6. डिजिटल संरक्षण की चुनौतियाँ :

डिजिटल तकनीक अनेक अवसर प्रदान करती है, लेकिन इसके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। इनमें प्रमुख हैं :–

पर्याप्त डिजिटल अवसंरचना का अभाव। उच्च गुणवत्ता वाले डिजिटलीकरण की लागत। डिजिटल सामग्री की दीर्घकालीन Storage समस्या। साइबर सुरक्षा। Copyright और Intellectual Property से जुड़े प्रश्न। डिजिटल स्रोतों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करना। ग्रामीण एवं दूरदराज क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच की कमी। स्थानीय भाषाओं एवं लिपियों के डिजिटलीकरण की चुनौती।

इसलिए केवल सामग्री को बंद करना पर्याप्त नहीं है। उसके साथ स्रोत–सत्यापन, उचित metadata और वैज्ञानिक documentation भी आवश्यक है।

7. भविष्य की संभावनाएँ :

भविष्य में Artificial Intelligence, 3D technology, VR और GIS जैसी तकनीकें सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को और अधिक प्रभावी बना सकती हैं। AI की सहायता से पुराने दस्तावेजों की पहचान, OCR, भाषाई विश्लेषण तथा बड़े डिजिटल अभिलेखागारों में सामग्री की खोज आसान हो सकती है। इसी प्रकार Virtual

Reality के माध्यम से विद्यार्थी ऐतिहासिक नगरों, किलों और स्मारकों का अनुभवात्मक अध्ययन कर सकते हैं। इससे इतिहास शिक्षा अधिक दृश्य, रोचक और अनुभवात्मक बन सकती है।

8. भारतीय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत :

भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए ज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत है। ऐतिहासिक स्मारक, पांडुलिपियाँ, दस्तावेज, पुरातात्त्विक अवशेष और लोक परंपराएँ भारतीय समाज के ऐतिहासिक विकास को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डिजिटल तकनीक ने इनके संरक्षण, प्रलेखन, शोध और वैश्विक प्रसार के लिए नए अवसर प्रदान किए हैं। डिजिटल अभिलेखागार, 3D तकनीक, GIS, AI, Virtual Museum तथा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म भारतीय विरासत को सुरक्षित रखने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भारत में सांस्कृतिक विरासत स्थलों के लिए डिजिटल संरक्षण विधियों पर किए गए इस अध्ययन ने डिजिटल माध्यमों के द्वारा भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने के अवसरों, चुनौतियों और सर्वोत्तम प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला है। डिजिटल संरक्षण में सांस्कृतिक विरासत संसाधनों के दस्तावेजीकरण, संरक्षण और प्रसार को बेहतर बनाने की अपार संभावनाएँ हैं।

इसके माध्यम से शोधकर्ता, शिक्षक और आम जनता भारत की विविध सांस्कृतिक विरासत तक पहुँच प्राप्त कर सकते हैं तथा नवीन तरीकों से उसके साथ जुड़ सकते हैं। इस अध्ययन के दौरान विभिन्न डिजिटल संरक्षण विधियों और तकनीकों का अध्ययन किया गया है, जिनमें डिजिटलीकरण तकनीक, मेटाडेटा निर्माण, डेटा भंडारण की प्रक्रियाएँ और पहुँच संबंधी तंत्र शामिल हैं। इन विधियों को प्रभावी ढंग से लागू करने पर ऐसे व्यापक डिजिटल संग्रह तैयार किए जा सकते हैं, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक विरासत की दीर्घकालीन उपलब्धता और संरक्षण सुनिश्चित कर सकें इसके अतिरिक्त, अध्ययन डिजिटल संरक्षण के लिए समावेशी और समुदाय–आधारित दृष्टिकोणों के महत्व को रेखांकित करता है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि डिजिटल संग्रहों में विभिन्न समुदायों के दृष्टिकोण, आवाजों और कथाओं को उचित स्थान और सम्मान मिले। संरक्षण की पहलों में स्थानीय समुदायों, आदिवासी समूहों और वंचित हितधारकों को शामिल करने से सांस्कृतिक विरासत संसाधनों के प्रति स्वामित्व और संरक्षण की भावना विकसित होती है। इससे सामाजिक एकता और सांस्कृतिक स्थिरता को बढ़ावा मिलता है निष्कर्ष रूप में, डिजिटल संरक्षण विधियाँ डिजिटल युग में भारत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने और बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती हैं। चुनौतियों का समाधान करके, उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाकर और सहयोग को बढ़ावा देकर भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का दीर्घकालीन संरक्षण और उसकी पहुँच आने वाली पीढ़ियों के लिए सुनिश्चित कर सकता है, ताकि वे इस विरासत को संजो सकें और उसका सम्मान एवं उत्सव मना सकें।

संदर्भ (References) :

1. Archaeological Survey of India, Government of India.
2. Ministry of Culture, Government of India.
3. Indira Gandhi National Centre for the Arts (IGNCA), Cultural Informatics.
4. IGNCA, National Databank on Indian Art and Culture.
5. IGNCA, Digital Resources and Manuscripts.
6. UNESCO, Cultural Heritage and Digital Technologies.
7. UNESCO, Charter on the Preservation of Digital Heritage, 2003.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित विमर्श

शिवलाल अहिरवार, शोधार्थी, हिंदी विभाग
सहायक प्राध्यापक, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरी जिला–सागर, म.प्र.–470226
डॉ. घनश्याम भारती, शोध निर्देशक, हिंदी विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गढ़ाकोटा, जिला–सागर, म. प्र.

दलित विमर्श : अवधारणा एवं स्वरूप साहित्य में आज दलित विमर्श के रूप में एक मुहिम–सी चल पड़ी है। सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत, दबी–कुचली मानवता ने आज जीवन का मर्म सीख लिया है।

भारतीय समाज–व्यवस्था की मूल वृत्ति वर्ण–व्यवस्था, जातिवाद व ऊँच–नीच के कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग अपने मानवीय अधिकारों से वंचित और नारकीय जीवन जीने को विवश था। सदियों से भारतीय समाज व्यवस्था को संचालित करने वाली मनुवादी व्यवस्था ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के नाम पर समाज को बाँटकर विषमता की गहरी खाई खोद दी थी। एक ओर ऐसा वर्ग था, जिसके हाथ में सभी तरह के अधिकार थे, तो दूसरी तरफ ऐसा वर्ग भी था, जिसे समाज में जीने तक का अधिकार नहीं था। पशु से भी बदतर जीवन जीने को विवश यह वर्ग शूद्र के रूप में अभिहीत हुआ। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अथक संघर्ष एवं संवैधानिक व्यवस्था के कारण समाज के निचले पायदान का व्यक्ति आज जागृत होने लगा है, अपने मानवोचित अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है। जिसकी पीड़ा साहित्य में कभी अभिव्यक्ति नहीं पाई, वह स्वयं आज अपने भोगे हुए यथार्थ को कलमबद्ध करने को उद्यत है। उसी पीड़ा की अभिव्यक्ति आज दलित साहित्य के रूप में हो रही है। दलित साहित्य को समझंने से पूर्व भारतीय समाज–व्यवस्था व दलित शब्द पर थोड़ी चर्चा अपेक्षित है।

दलित साहित्य का प्रयोजन –

दलित साहित्य परम्परागत साहित्य से बिलकुल भिन्न है नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने काव्य का प्रयोजन निर्धारित करते हुए लिखा है कि धर्मम यशस्यमागुष्य हितं बुद्धिविवर्द्धनम् लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद् भविष्यति। (नाट्यशास्त्र भरतमुनि) Ourses अर्थात नाठ्य (काव्य) धर्म, यश और आयु का साधक, हितकारक, बुद्धि का वर्दधक तथा लोकोपदेशक होता है। इस सम्बन्ध में काव्यालंकार के रचयिता भामह के भी विचार जानने योग्य है– धर्मार्थकाम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कला सु च। करोति कीर्ति प्रीति च साधू काव्य निबन्धन। (काव्यालंकार : भामह) अर्थात उत्तम काव्य (साहित्य) की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुपी चारों पुरुषार्थों को तथा समस्त कलाओं में निपुणता को और प्रीति (आनन्द) तथा कीर्ति को उत्पन्न करती है।

दलित चेतना और विरोध के प्रारंभ –

उन्नीसवीं सदी में महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे सामाजिक सुधारकों ने दलितों के उत्थान और महिला शिक्षा

के लिए काम किया। फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की और जाति भेद के खिलाफ आवाज उठाई। तत्पश्चात अनेक अन्य समाज सुधारकों जैसे नारायण गुरु, पीरियार रामास्वामी नायकर, स्वामी अछूतानंद आदि ने भी दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। 1923 में बंबई विधान परिषद में दलितों को समान अधिकार देने का प्रस्ताव आया, और महाड़ सत्याग्रह हुआ, जिसने दलित राजनीति को जन्म दिया। डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में दलितों ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व और संवैधानिक अधिकारों की मांग की, इसने दलित विमर्श को और संगठित रूप दिया।

इक्कीसवीं सदी में हिंदी दलित उपन्यास लेखन ने सामाजिक यथार्थ को बेबाकी से उकेरा है। दलित साहित्यकारों ने अपने स्वानुभूतिगत अनुभवों को कथा–विधा को माध्यम बनाकर जाति–व्यवस्था की क्रूर सच्चाइयों को साहित्य में दर्ज किया है। वे अपने समाज की पीड़ा, आक्रोश और संघर्ष को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त करते हैं, इसलिए दलित साहित्य सहानुभूति नहीं, स्वानुभूति का साहित्य कहलाता है। पाँच प्रमुख हिंदी उपन्यासों उधर के लोग, पलायन, सुअरदान, मिस रमीला, और मुक्तिपर्व – का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। ये कृतियाँ दलित–विमर्श की विविध प्रवृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रत्येक उपन्यास के कथानक, पात्र, विषयवस्तु एवं शिल्प का विश्लेषण करते हुए यह अध्याय दिखाएगा कि किस प्रकार दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ को ये लेखक साहित्यिक आकार देते हैं। साथ ही, दलित साहित्य के विकास–क्रम में इन उपन्यासों का स्थान भी स्पष्ट किया जाएगा।

उधर के लोग : मध्यमवर्गीय दलित जीवन का यथार्थ :

अजय नावरिया कृत उधर के लोग (2008) समकालीन हिंदी दलित उपन्यासों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह उपन्यास स्वतंत्रता के दशकों बाद उभर रहे एक नए दलित मध्यमवर्ग शिक्षित मध्यमवर्गीय व्यक्ति है, अतः इस कहानी में आत्मकथात्मक तत्व भी शामिल हैं। उपन्यास का शीर्षक उधर के लोग उस विभाजन की ओर संकेत करता है जो समाज में इस पार मुख्यधारा और श्उस पार हाशिये के लोगों के बीच अब भी बना हुआ है। इस कृति में नायक एक महानगरीय परिवेश में नौकरीपेशा दलित है, जो उच्च शिक्षा और शहरी जीवन के बावजूद जातीय पहचान के सवालों से जूझ रहा है। उपन्यास में शैली में लिखा गया है, जिससे नायक के दृष्टिकोण और आंतरिक संघर्ष सीधे पाठक तक पहुँचते हैं।

नावरिया ने इस उपन्यास में बाजारवाद, यौन शोषण, विचारधाराओं की प्रासंगिकता, प्रेम–विवाह और तलाक जैसे आधुनिक जीवन के पहलुओं को खुलकर उठाया है। उपन्यास का नायक भले ही आर्थिक व सामाजिक रूप से उन्नति कर चुका हो, परंतु अपने दलित होने की पहचान से पूरी तरह मुक्त नहीं है। कहानी में दिखाया गया है कि मध्यमवर्गीय परिवेश में भी जाति–भेद सूक्ष्म रूपों में मौजूद रहता है और दलित व्यक्ति के मन में हीनता या विद्रोह की भावना पैदा कर सकता है। कंवल भारती लिखते हैं कि दलित लेखक जैसे अजय नावरिया ने दलितों में भी पाई जाने वाली जातीय चेतना और विभाजन को उजागर किया है, साथ ही एकजुटता का संदेश दिया है। उधर के लोग इसी जातिगत पहचान–निर्माण के विरुद्ध सामूहिकता की बात कहता है।

उपन्यास के कथानक में नायक विभिन्न सामाजिक वर्गों से संपर्क में आता है। उसमें प्रेम और वैवाहिक संबंधों के प्रसंग हैं जहाँ जाति एक अदृश्य दीवार बनकर उभरती है। एक प्रसंग में नायक की दलित पृष्ठभूमि प्रेम संबंध में अवरोध पैदा करती है, जिससे उसके भीतर आत्मसम्मान बनाम सामाजिक स्वीकृति का द्वंद्व उभरता है। नवरिया ने दिखाया है कि नए शहरी दलितों को बाहरी भेदभाव के साथ–साथ आंतरिक रूप से अपनी

अस्मिता की चुनौतियों से भी जूझना पड़ता है।

- **पलायन :** पलायन उपन्यास दलित समुदाय के ग्रामीण पलायन (माइग्रेशन) की थीम पर केंद्रित है। यह कहानी उन सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों को उजागर करती है जिनके चलते दलित एवं अन्य हाशिए के वर्ग बेहतर जीवन की तलाश में गाँव छोड़कर शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर होते हैं । कथा का परिवेश उत्तर भारत का एक ग्रामीण अंचल है जहाँ भूमिहीन दलित किसान और मजदूर सूखे, कर्ज, भुखमरी और जातिगत अत्याचार से त्रस्त हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र (या परिवार) इन्हीं परिस्थितियों से जूझते हुए आखिरकार गांव से पलायन का निर्णय लेता है। इस पलायन में पीड़ा, असमंजस और आशा का मिला–जुला चित्रण है एक ओर वे अपना जन्मभूमि, अपनी जमीन छोड़ने को मजबूर हैं, दूसरी ओर शहर में नए अवसरों की आस है।

उपन्यास दलित विमर्श को आर्थिक परिप्रेक्ष्य से जोड़ता है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में बेरोजगारी और गरीबी ने गांवों से बड़े पैमाने पर श्रमिकों का पलायन बढ़ाया, जिसका प्रभाव दलितों पर सबसे अधिक पड़ा पलायन में दिखाया गया है कि किस तरह शहरों की चमक–दमक दलित ग्रामीण युवाओं को आकर्षित करती है, परंतु शहर पहुँचने पर उनका सामना भयंकर वास्तविकताओं से होता है फुटपाथ पर जीवन, असंगठित क्षेत्र में शोषण, जाति–व्यवस्था का नए रूप में पीछा करना आदि। एक प्रसंग में नायक को शहर में भी अपनी जाति छिपानी पड़ती हैय जब उसका उपनाम लोगों को पता चलता है तो मकान मालिक उसे कमरे से निकाल देता है –यह संकेत करता है कि जातीय भेदभाव ग्रामीण से शहरी जीवन तक निरंतर बना हुआ है।

मुक्तिपर्व (प्रथम प्रकाशन 1999, पुनर्प्रकाशन 2012) मोहनदास नैमिशराय का पहला उपन्यास माना जाता है। यह स्वतंत्रता–पूर्व और स्वतंत्रता–पश्चात् भारत के समय को समेटे हुए एक सामाजिक इतिहास का आख्यान है, जो दलित समुदाय के दृष्टिकोण से लिखा गया है। मुक्तिपर्व शीर्षक से ही स्पष्ट है कि यह उपन्यास 'मुक्ति' या आजादी के पर्व (उत्सव) की बात करेगा लेकिन कौन सी मुक्ति? नैमिशराय ने इसमें बड़े प्रतीकात्मक ढंग से तर्क रखा है कि 1947 में देश को अंग्रेजों से आजादी मिली, परन्तु दलितों के लिए वास्तविक आजादी का पर्व (मुक्ति–पर्व) अभी आना शेष है। इस उपन्यास को हिंदी का चर्चित दलित उपन्यास माना जाता है और इस पर शोध आलेख भी प्रकाशित हुए हैं, जो इसके कथ्य को 'दलितों की विद्रोह गाथा' के रूप में विश्लेषित करते हैं।

- **कथानक और परिवेश :** मुक्तिपर्व की कहानी उत्तर प्रदेश के एक कस्बाई क्षेत्र में बसे चमरौटी दलित मोहल्ले के एक परिवार की गाथा से चलती है। यह परिवार तीन पीढ़ियों को जोड़ता है दादा बंसी, पिता रामदयाल और बेटा सुनीत (कहीं–कहीं नाम बदल सकते हैं पर सुविधा के लिए यही मानते हैं)। उपन्यास आरंभ होता है 1942 के भारत छोडो आंदोलन के दौर से, जब देशभर में अंग्रेजों के खिलाफ लहर है। लेकिन उसी समय दलित बस्ती में एक दूसरा संघर्ष चल रहा है जमींदार नवाब साहब की रियासत में दलितों के साथ होने वाले अत्याचारों का। लेखक ने शुरू में दिखाया है कि नवाब साहब (जो स्थानीय तालुकेदार हैं) अपने खेतों में बंधुआ जैसे हालत में दलितों से काम कराते हैं, महिलाओं के साथ दुराचार भी होता है और विरोध करने पर कठोर सजाएँ दी जाती हैं। बंसी (दादा) इस दमन का चश्मदीद है पर बेबस हैय वह अपने पोते सुनीत के भविष्य के लिए चिंतित रहता है।

1947 में देश स्वतंत्र होता है दलित बस्ती के लोग आशा करते हैं कि शायद अब उनके दिन बदलें। लेकिन आजादी के तत्काल बाद के अध्यायों में लेखक दिखाते हैं कि 'उन्हें आजादी जैसी कोई चीज महसूस नहीं हुई। नवाब साहब जैसे जमींदार नए लोकतंत्र में भी शक्तिशाली बने रहे और दलितों पर जुल्म जारी रहे।

सुनीत अब किशोर हो चुका है, स्कूल जाना चाहता है। किंतु गाँव के उच्च जाति के लोग उसे ताने मारते हैं कि 'आजादी आ गई तो क्या हुआ, तुम्हारी औकात नहीं बदली। सुनीत को स्कूल में भेदभाव झेलना पड़ता है अध्यापक उसे बैठाने को अलग चटाई देते हैं, कुछ बच्चे उसके साथ मारपीट भी करते हैं।

• **सुअरदान :** रुपनारायण सोनकर कृत सुअरदान इस दशक का एक बेहद चर्चित और क्रांतिकारी दलित उपन्यास है। 2010 में प्रकाशित इस कृति ने साहित्यिक जगत में हलचल मचा दी थी क्योंकि इसमें पहली बार दलित समाज की आर्थिक मुक्ति के एक विशिष्ट मार्ग सूकर पालन (पिगरी फार्म) को उपन्यास का केंद्र बनाया गया। उपन्यास का शीर्षक 'सुअरदान' प्रतीकात्मक एवं व्यंजक है : हिंदू मिथकों में भगवान विष्णु के वराह अवतार (सूअर) का जिक्र आता है, किन्तु यथार्थ में सूअर को नीच या अपवित्र जीव माना गया है। सोनकर ने इसी विसंगति को पकड़कर सुअरदान में ब्राह्मणवादी मानसिकता पर प्रहार किया है। उपन्यास में सूअर एक मूल्यवान संसाधन साबित होता है जो दलितों के जीवन को आर्थिक संबल देता है। कथानक के अनुसार, दलित बस्ती के कुछ नवयुवक बेरोजगारी और दरिद्रता से जूझ रहे हैं। पारंपरिक पेशों में उन्हें सिर्फ अपमान मिला, अतः वे कुछ नया करने की ठानते हैं। नायक (या प्रमुख पात्र) पहल करके एक सुअर पालन केंद्र खोलता है। प्रारंभ में समाज के तथाकथित उच्चवर्ग इस पहल का उपहास उड़ाते हैं और बाधाएँ खड़ी करते हैं सूअर पालना नीचों का काम है ऐसी ताने उसे सुनने पड़ते हैं। लेकिन धीरे–धीरे यही पिगरी फार्म आस–पास के लोगाँ को रोजगार देने लगता है और आर्थिक स्वावलंबन का द्वार खोलता है। सोनकर जी ने 'सुअरदान' में दिखाया कि पिगरी फार्म लोगों को रोजगार के द्वार खोल रहा है। अर्थात जो काम सवर्णों की नजर में घृणित था, वहीं दलितों के लिए आजीविका और उन्नति का साधन बन गया। उपन्यास में कई प्रसंगों द्वारा इस परिवर्तन को दर्शाया गया है। एक स्थान पर वर्णन है कि सूअर पालन से हुई कमाई से एक दलित पिता अपनी बेटी की शादी धूमधाम से करने में सफल होता है, जबकि पहले गाँव के सूदखोर महाजन से ऋण लेकर भी शादियाँ सूखी पड़ जाती थीं। इस प्रकार आर्थिक सशक्तिकरण का संदेश सुअरदान के हर पृष्ठ पर है।

• **वीरांगना झलकारी बाई :** मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित वीरांगना झलकारी बाई एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में झाँसी की वीरांगना झलकारी बाई के चरित्र को केंद्र में रखता है। झलकारी बाई भारतीय इतिहास की उन दलित नायिकाओं में से एक थीं जिनका उल्लेख मुख्यधारा के इतिहास में बहुत कम मिलता है। वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की सेनानी एवं सखी थीं और युद्ध के समय रानी के हमशक्ल बनकर अंग्रेजों को छल देने तक का साहस दिखाया था। नैमिशराय ने इस उपन्यास में ऐतिहासिक अनुसंधान और कल्पना के सहारे झलकारी बाई के त्याग, शौर्य और राष्ट्रभक्ति की गाथा को जीवंत किया है। लेखक स्वयं झाँसी जाकर झलकारी बाई के वंशों, रिश्तेदारों से मिला, किले–दुर्ग देखे और लोक–स्मृतियों को एकत्र किया है।

उपन्यास का आरंभ झाँसी के पास भोजला गाँव से होता है, जहाँ झलकारी का जन्म एक कोली (दलित) परिवार में होता है। बचपन से ही उसमें अद्‌भुत साहस था लोककथाओं में प्रसिद्ध है कि किशोरावस्था में उसने एक तेंदुए को मार गिराया था। नैमिशराय ने झलकारी के इस पारंपरिक चरित्र को विस्तार देते हुए दिखाया है कि कैसे वह बचपन से ही अन्याय के विरुद्ध थी और सैनिक बनने के गुण उसमें प्रकट थे। युवा झलकारी की शादी पूरन कोली से होती है, जो झाँसी की सेना में सैनिक थे। शादी के बाद झलकारी झाँसी आती है और रानी लक्ष्मीबाई की सेना में शामिल हो जाती है। 'झलकारी बाई दलित–पिछड़े समाज से थी और निस्वार्थ भाव से देश

सेवा में रहीं' लेखक स्पष्ट बताता है कि झलकारी बाई की पृष्ठभूमि उन्हें एक साधारण जन नायिका बनाती है, न कि किसी राजघराने की रानी, लेकिन देशप्रेम में उनका योगदान रानी से कम नहीं था।

• **मिस रमिया (लेखिका : कावेरी)** उपन्यास समकालीन शहरी परिवेश में एक दलित महिला के जीवन–संघर्ष पर केंद्रित है। यह कथा इक्कीसवीं सदी की उस दलित नारी की दास्तान कहती है जिसने 'मिस' जैसे आधुनिक संबोधन के साथ अपनी पहचान बनाई है, परंतु जाति और लिंग के द्वंद्व आज भी उसके मार्ग में रोडे अटका रहे हैं। उपन्यास की नायिका रमीला एक शिक्षित दलित युवती है, जो शहर में एक कार्यालय में काम करती है (शायद एक बहुराष्ट्रीय कंपनी या सरकारी दफ्तर में)। दलित स्त्रियाँ समाज में दोहरे शोषण का शिकार होती हैं– एक तो स्त्री होने के नाते पितृसत्ता द्वारा, दूसरे दलित होने के कारण सामाजिक भेदभाव द्वारा और मिस रमीला इसी दोहरे संघर्ष का चित्रण करती है।

कहानी के प्रारंभ में रमीला आत्मविश्वास से भरपूर नजर आती है उसने आधुनिक परिधान और जीवनशैली अपनाई है, वह अपने नाम के आगे जातिसूचक उपनाम नहीं लगाती, और सहकर्मी उसे 'मिस रमीला' कहकर संबोधित करते हैं। ये संकेत हैं कि नई सदी में एक उभरती दलित महिला अपनी स्वतंत्र पहचान गढ़ना चाहती है। रमीला के चरित्र में महत्वाकांक्षा भी है –वह कार्यालय में तरक्की करना चाहती है, अपनी क्षमताओं को साबित करना चाहती है। लेकिन जैसे–जैसे कथा आगे बढ़ती है, प्रच्छन्न सामाजिक बाधाएँ सामने आती हैं। कार्यस्थल पर कुछ लोग रमीला की योग्यता पर सवाल उठाते हैं और चुपचाप उसकी पृष्ठभूमि जानने की चेष्टा करते हैं।

एक सीन में ऑफिस की एक पार्टी में रमीला से उसका सरनेम पूछा जाता है वह टाल जाती है। कुछ दिनों बाद उसके सहकर्मियों को पता चलता है कि वह दलित (अनुसूचित जाति) है। इसके बाद माहौल बदलने लगता हैरू जिन सहयोगियों से वह पहले दोस्ती समझ रही थी। वे दूरी बढ़ाने लगते हैं, कोई पीठ पीछे फुसफुसाकर कहता है आरक्षण कोटा से आई है शायद, ये स्थितियों रमीला के मनोविश्व में आघात पहुँचाती हैं। वह सोचती है. मेरी काबिलियत एक पल में बेकार हो गई, सिर्फ मेरी जाति जान लेने भर से।' उपन्यास इन मनोभावों को गंभीरता से उकेरता है और पाठक रमीला की पीड़ा के साथ आत्मसात होने लगते हैं। उपन्यास में एक तरफ रमीला का करियर और आत्मनिर्भरता का संघर्ष है, वहीं दूसरी ओर उसका निजी जीवन और रिश्तों का द्वंद्व भी चलता है। रमीला के परिवार में (संभवतः माँ–पिता गाँव में रहते हैं जिनसे वह शहर आकर दूर हो गई है) उसे दोहरे अपेक्षाओं का सामना करना पड़ता है। परिवार चाहता है कि वह जल्द विवाह कर ले क्योंकि ष्ज्यादा पढ़–लिख गई तो लड़का नहीं मिलेगा यह वाक्य उस सामाजिक सोच को दर्शाता है जो दलित ही नहीं, व्यापक समाज में स्त्रियों के लिए मौजूद है। दूसरी तरफ, रमीला स्वयं निर्णय लेना चाहती हैय वह देख रही है कि उसके आसपास की सवर्ण सहकर्मी तो 30 की उम्र के बाद भी स्वतन्त्र रहती हैं, फिर उसी पर जल्दबाजी का दबाव क्यों? इन अंतद्वंद्वों में उपन्यास स्त्री–विमर्श को दलित परिप्रेक्ष्य में सामने लाता है।

पाँचों लेखकों की शैली और दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी एक समानता यह है कि सभी ने डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरणा पाई है। इन उपन्यासों में व्यक्त पीड़ा, आक्रोश और बदलाव की आकांक्षा बाबा साहेब के आंदोलन से जुड़े सवालों की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है। सभी रचनाकार अपने–अपने तरीके से दलित स्वाभिमान को उजागर करते हैं कोई शहर के परिप्रेक्ष्य में (नावरिया), तो कोई ग्रामीण क्रांतिधारा में (नाथ, सोनकर, नैमिश्राय), तो कोई नारी चेतना के माध्यम से (कावेरी)।

निष्कर्ष –

अध्ययन के अंत में, यह रेखांकित करना उचित होगा कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित–विमर्श ने न सिर्फ पूर्ववर्ती दलित साहित्य के तेवर को आगे बढ़ाया, बल्कि उसे नए सामाजिक–आर्थिक संदर्भों में व्यापक आयाम भी दिए। अगर 1990 के दशक तक दलित साहित्य मुख्यतः वर्ण व्यवस्था के प्रतिरोध और आत्मकथात्मक साचों तक सीमित था, तो 2000 के बाद के उपन्यासों ने शहरीकरण, वैश्वीकरण, लैंगिक विमर्श और आंतरिक आलोचना जैसे पहलू भी समाहित कर लिए हैं। इन पाँच उपन्यासों में हमने देखा कि दलित साहित्य अब एक परिपक्व विधा के रूप में विकसित हो चुका है जो अपने अंदर विषय–वैविध्य रखता है और जिसके पात्र दलित जीवन के विविध रंग पेश करते हैं।

इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते ही हिंदी का दलित उपन्यास एक नई वैचारिक और शिल्पगत जमीन पर खड़ा हुआ दिखाई देता है। यदि 1990 के दशक तक दलित साहित्य मुख्य रूप से वर्ण–व्यवस्था के विरोध, जातीय उत्पीड़न की पीड़ा और आत्मकथात्मक अनुभवों तक सीमित था, तो 2000 के बाद के उपन्यासों ने इसके विषय–फलक को अत्यंत व्यापक कर दिया है।

प्रस्तुत अध्ययन में विवेचित 'सूअर दान' और 'मुक्ति पर्व' – मोहनदास नैमिशराय', 'मिस रमिया' – कावेरी, जैसे उपन्यास इस बदलाव के सशक्त प्रमाण हैं। इन रचनाओं में अब केवल वर्ग विशेष द्वारा किए गए अत्याचार का वर्णन नहीं है, बल्कि दलित जीवन के नए सामाजिक–आर्थिक संदर्भ भी उभर कर सामने आए हैं। शहरीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, दलित राजनीति, शिक्षा, आरक्षण और स्त्री–दलित विमर्श जैसे मुद्दे इन उपन्यासों के केंद्रीय सरोकार बन गए हैं।

'सूअर दान' और 'मुक्ति पर्व' में दलित राजनीति और धार्मिक अंधविश्वासों की आलोचना की गई है, तो 'मिस रमिया' और 'का कावेरी' ने दलित स्त्री की दोहरी पीड़ा को स्वर दिया है। इस प्रकार इन उपन्यासों में दलित समाज के अंदर व्याप्त विसंगतियों की आंतरिक आलोचना भी मिलती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी का दलित उपन्यास अब केवल 'प्रतिरोध का साहित्य' नहीं रहा। वह एक परिपक्व, बहुआयामी और आत्म–सजग विधा बन चुका है। इसके पात्र अब एक–आयामी पीड़ित नहीं हैं, बल्कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत, प्रश्न करने वाले और अपनी नियति के निर्माता हैं। दलित उपन्यास आज हिंदी साहित्य की मुख्यधारा का अभिन्न अंग बनकर समाज को नई दिशा देने का कार्य कर रहा है।

संदर्भ सूची –

1. नाथ. के. 2006 पलायन।
2. नैमिशराय, मोहनदास. (2011) मुक्ति पर्व नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
3. सोनकर, रूपनारायण. (2010) सूअरदान'. नई दिल्ली : सम्यक प्रकाशन।
4. नैमिशराय, मोहनदास. (2003) वीरांगना झलकारी बाई।
5. कावेरी. (2007) मिस रमिया।

shivlala77@gmail.com , 8823045608

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

हिंदी कहानियों का सिनेमा में रूपांतरण : एक यात्रा

डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर
हिंदी विभागाध्यक्ष,
महात्मा फुले कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, पनवेल।

व्यक्ति को समाज में कथा कहने और सुनने की परंपरा बहुत पुरानी है। किस्सा, कहानी, आँखों देखी, आपबीती आदि को मनुष्य भाषा के उदय काल से परस्पर एक दूसरे को सुनाता रहा है। धार्मिक कथाएँ, काल्पनिक कथाएँ, विभिन्न समाजों में विकसित ऐतिहासिक एवं दन्तकथाओं की सुदीर्घ परंपरा विश्व में रही है। कहानी पहले मौखिक माध्यम से ही प्रसारित होती थी। कहानी श्रोता को प्रभावित करती है। यह प्रभाव कथा की प्रस्तुति पर आधारित होता है। प्रस्तुति जितनी प्रभावशाली, आकर्षक और रोचक होगी प्रभाव उतना ही तीव्र होता है। इस दृष्टि से रंगमंच और नाटक विधा दृश्य और श्रव्य माध्यम का प्रथम प्रारूप है, जिसके द्वारा पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ प्रचलित हुईं। इसके बाद का युग सिनेमा नामक एक तकनीकी माध्यम का युग आया जिसने आधुनिक युग में किस्सागोई के स्वरूप को आमूलचूल बदलकर जनमानस को तीव्र रूप में उद्वेलित किया। भारत में सिनेमा के आगमन से पूर्व से ही शृंखलाबद्ध चित्रों के माध्यम से कथाएँ कहने का चलन रहा है।

हिन्दी कहानियों पर आधारित हिन्दी फिल्म यह सिनेमा और साहित्य के संबंधों को विकसित एवं स्वयं पूर्ण बनाती है। कहानी जैसी विधा को एक विशेष समय, घटना या विविध छोटे–छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है। कहानी में निर्देशक विभिन्न प्रसंगों को लेते हुए समय को बांधता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं, उत्कंठाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। "आज हिंदी कहानियों पर अधारित अनेक फिल्में हैं जिन्हें राष्ट्रीय ही नही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा एवं पुरस्कृत किया गया है।"[1]

ऐसा कहाँ जाता है कि "साहित्य और सिनेमा यह अभिव्यक्ति के दो माध्यम हैं और प्रभाव की दृष्टि से कौन ज्यादा ताकतवर है यह कह पाना थोड़ा मुश्किल है। साहित्य अभिव्यक्ति का आदिम माध्यम है, जबकि सिनेमा तकनीक आधारित बिल्कुल नया। साहित्य को सिनेमा की जरूरत है क्योंकि हर कथाकार यह चाहता है कि उसकी कहानी पर फिल्म बने, उसकी बात जन जन तक पहुँचे। लेकिन सिनेमा को साहित्य की जरूरत है या नही, कहना मुश्किल है। दोनों ही भिन्न और अपनी–अपनी तरह के बेजोड़ कला–माध्यम हैं। दोनों की प्रकृति, रचना विधान और इसलिए दोनों के असर और समाज निर्माण की फितरतें भी अलग अलग हैं। तभी तो आज तक कोई भी साहित्य को पढ़कर डाकू या बलात्कारी नहीं बना, जबकि सिनेमा से यह भी हो सका है। कहने की आवश्यकता नही साहित्य का उद्देश्य व्यवसाय नही है, लेकिन सिनेमा काम बिना व्यवसाय के चल नही

सकता। यह भी सत्य है कि दोनों ही एक दूसरे से रस खींचने का प्रयास करते रहे है।"[2]

एक कहानी 'मिल' जोकि मजदूरों की व्यथा पर आधारित थी। फिल्मों ने बोलना अभी शुरू ही किया था। प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में फिल्म 'मिल मजदूर' बनी। निर्देशक ने मूल कहानी में बदलाव किए जो प्रेमचंद को पसंद नही थे। फिर अंग्रेजों के सेंसर ने फिल्म में काफी काँट–छाँट कर दी। इसके बाद फिल्म का, जो रूप सामने आया उसे देख प्रेमचंद को काफी धक्का लगा। उन्होंने कहा यह प्रेमचंद की हत्या है। प्रेमचंद की यह कहानी फिल्म के निर्देशक और मालिक की कहानी है। इस फिल्म पर मुंबई में प्रतिबंध लग गया और पंजाब में यह 'गरीब मजदूर' के नाम से प्रदर्शित हुई।"[3]

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर 'द चेस प्लेयर्स' नाम से सत्य जीत रे ने फिल्म बनाई थी। यह कहानी 1957 के ब्रिटिश भारत की पृष्ठभूमि पर है। फिल्म में मुख्य किरदारों में संजीव कुमार और शबाना आजमी थे। राय ने मूल कहानी के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए कहानी के शब्दों में झलकने वाले समय और स्थान विशेष को वैसा ही पर्दे पर उतार दिया है। "कहानी मूल कलेवर में छोटी है और उसमें परोक्ष रूप से ही ऐतिहासिकता के दर्शन होते हैं। कहानी में नबाबों की अय्याशी और उसके सामयिक परिवेश को प्रेमचंद ने प्रमुखता से उभारा है।"[4]

प्रेमचंद के ही कहानी 'सद्गति' के नाम से ही सत्यजीत रे ने 1981 में फिल्म बनाई थी। इसमें ओमपुरी और स्मिता पाटिल ने मुख्य भूमिका निभाई थी। यह फिल्म भारतीय जाति–व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती है। कृष्ण चौपड़ा ने 'दो बैलों की कथा' पर 'हीरा मोती' नाम से फिल्म बनाई। 1979 में सत्येन बोस के निर्देशन में बनी 'सांच को आंच नही' का मूल आधार भी प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' से था।

मौनी भट्टाचार्य ने पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया। इसमें सुनील दत्त और नंदा मुख्य भूमिका में थे। "फिल्म 'तीसरी कसम' राजकपूर और वहीदा रहमान की ये फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित है। इसे शैलेंद्र ने प्रोड्यूस किया और बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित। जिसकी पटकथा और संवाद खुद रेणु ने लिखे। मित्रता के नाते राज कपूर व वहीदा रहमान जैसे सितारों ने फिल्म में काम किया।"[5]

निर्मल वर्मा की कहानी 'माया दर्पण' पर प्रसिद्ध फिल्म निर्माता और निर्देशक कुमार शाहनी ने इसी नाम से फिल्म बनाई। एच.के.वर्मा ने अमृता प्रीतम की कहानी 'कादम्बरी' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। "निर्देशक मणिकौल ने हिंदी हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' पर इसी नाम से फिल्म बनाई।"[6]

हिंन्दी सिनेमा में जब हम गुलजार साहब की बात करते हैं तो पता चलता है कि वे सबसे भिन्न निर्देशक थे। वे स्वतंत्र साहित्यकार थे और कथा वाचन की बारीकियों को बखूबी जानते थे। "गुलजार मानवीय रिश्तों के कथाकार रहे हैं, पर स्त्री–पुरुष के प्रेम संबंधों की विविधता, जटिलता को उन्होंने जिस खूबसूरती के साथ अपनी फिल्मों में बयान किया है वह हिन्दी फिल्मों की एक बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने कमलेश्वर की दो कहानियों पर 'काली आँधी' पर 'आँधी' और 'आगामी अतीत' पर 'मौसम' बनाई और दोनों ही फिल्में मील का पत्थर साबित हुई। 'आँधी' में आरती देवी और जे.के. दोनों से अलग उन दोनों के बीच के रिश्ते फिल्म में अपनी खामोश उपस्थिति से दशर्कों का मन छू लेती है।"[7]

कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी को लेकर ही निर्माता निर्देशक शिवेंद्र सिन्हा ने 'फिर भी' नामक फिल्म का

निर्माण किया। मूल रूप में तलाश कमलेश्वर की एक बहुत छोटी सी कहानी है जिसमें पात्रों के आपसी संवाद के द्वारा लेखक ने स्थान, परिस्थितियों, घटनाओं और समय को अधिक महत्व दिया है। मूल कहानी माँ और बेटी के आपसी अंतद्वंन्द की कहानी है। बढ़ते समय के साथ–साथ जहां एक ओर "हिन्दी कथा–साहित्य में बदलाव आ रहा था वहीं हिन्दी भाषी फिल्मकारों की संख्या भी बढ़ रही थी। फिल्मकार बासु चटर्जी जो बांग्ला भाषी थे लेकिन उन्होंने हिन्दी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' पर आधारित एक बहुत खूबसूरत फिल्म 'रजनीगंधा' का निर्माण किया जो काफी लोकप्रिय साबित हुई। हिन्दी फिल्मों की इस नई धारा को समांतर सिनेमा भी कहा गया।"[8]

सामांतर फिल्मों के आरंभिक दौर के फिल्म निर्देशकों में सत्यजित राय, ऋत्विक घटक, बिमलराय, मृणाल सेन, तपन सिन्हा, ख्वाजा अहमद अब्बास, चेतन आनंद, गुरू दत्त, वी. शांताराम आदि थे। "इसे निस्संदेह भारतीय सिनेमा का स्वर्ण युग कहा जा सकता है इस दौर में फिल्मों ने प्रायः उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया, जिसके चलते साहित्य की तरह फिल्मों ने भी समाज का यथार्थ पेश कर अपना राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व निभाया।"[9]

इसी दौर के "हिन्दी साहित्य को सबसे ज्यादा महत्व और निष्ठाभरी समझ फिल्मकार कुमार शाहनी ने निर्मल वर्मा की कहानी 'माया दर्पण' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। इसके इलावा दामुल, परिणिति, पतंग, कोख जैसी फिल्में भी साहित्यिक रचनाओं पर बनी।"[10]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बहुत–सी कहानी साहित्य पर जो–जो फिल्में बनी हैं वे सुपर हिट तो बनी हैं लेकिन उसी के साथ–साथ साहित्य को भी गहरे रिश्ते में दर्शा रही हैं। अगर कहें तो जब, साहित्यिक फिल्में बनती हैं जो बराबर फिल्मकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं। इस तरह कहानी साहित्य की फिल्म यात्रा काफी बृहत दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हरीश कुमार–सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 84
2. गोपेश्वर सिंह–साहित्य का अनुवाद नही है सिनेमा, जनसत्ता, 21 मई, 2017, पृ. 7
3. हरीश कुमार–सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 116
4. श्रीशचंद्रमिश्र–हिन्दी साहित्य का फिल्मों से जुड़ा नही गहरा नाता, जनसत्ता, 9 जून, 2017, पृ. 14
5. हरीश कुमार–सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 88
6. अशोक भौमिक– सत्तर का सिनेमा और गुलजार, जनसत्ता, 29 मई, 2016, पृ. 7
7. साकेत सहाय – साहित्य, सिनेमा और समाज, जनसत्ता 11 दिसंबर, 2016, पृ. 4
8. अशोक भौमिक – सत्तर का सिनेमा और गुलजार, जनसत्ता, 29 मई, 2016, पृ. 7
9. साकेत सहाय – साहित्य, सिनेमा और समाज, जनसत्ता, 11 दिसंबर, 2016, पृ. 4

ईमेल–vishwanathpatekar87@gmail.com

संपर्क नं.–9011933917

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी भूमिका

अनुराधा
शोधार्थिनी, शिक्षा विभाग
के. आर. महिला पी.जी. कॉलेज, मथुरा,
डॉ. बी. आर. अंबेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, यू.पी.

सारांश :

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके प्राकृतिक संसाधनों से अधिक उसके ज्ञान, कौशल, नवाचार तथा तकनीकी क्षमता पर निर्भर करती है। भारत सरकार द्वारा प्रारंभ किया गया 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान देश को आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी दृष्टि से सशक्त बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा नागरिकों में ज्ञान, कौशल, नैतिक मूल्यों तथा नवाचार की भावना का विकास करती है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा को अधिक सुलभ, प्रभावी एवं समावेशी बनाती है। अध्ययन में आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में डिजिटल समावेशन तथा उद्यमिता को प्रोत्साहित कर वर्तमान चुनौतियों एवं उनके समाधान पर भी विचार प्रस्तुत किया गया है।

कुंजी शब्द : आत्मनिर्भर भारत, शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास।

प्रस्तावना :

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसकी शिक्षित एवं जागरूक जनसंख्या होती है। यदि नागरिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करें, नवीन तकनीकों का उपयोग करना सीखें तथा आत्मविश्वास के साथ नवाचार करें, तो वह राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनता है। इसी विचार को आधार बनाकर भारत सरकार ने आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य देश को उत्पादन, कौशल, अनुसंधान, नवाचार तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना है।

आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल स्वदेशी वस्तुओं का निर्माण नहीं है, बल्कि ऐसी व्यवस्था का निर्माण भी है जिसमें प्रत्येक नागरिक अपनी क्षमता का पूर्ण विकास कर सके और राष्ट्र के विकास में सक्रिय भागीदारी निभा सके। इस दृष्टि से शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा व्यक्ति को ज्ञान एवं कौशल प्रदान करती है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी उस ज्ञान को व्यापक समाज तक पहुँचाने तथा उसे व्यवहार में

परिवर्तित करने का प्रभावी माध्यम बनती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने शिक्षा को रोजगारोन्मुख, कौशल–आधारित तथा तकनीक–सक्षम बनाने पर विशेष बल दिया है। इसके साथ ही डिजिटल इंडिया, दीक्षा (DIKSHA), स्वयं (SWAYAM), पीएम ई–विद्या तथा राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय जैसी पहलें शिक्षा के डिजिटलीकरण को गति प्रदान कर रही हैं। इन पहलों ने शिक्षा की पहुँच को ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों तक विस्तारित किया है तथा विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराई है।

यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वय आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में किस प्रकार परिवर्तनकारी भूमिका निभा रहा है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका को समझने के लिए विभिन्न शोधकर्ताओं एवं संस्थाओं द्वारा किए गए अध्ययनों का अवलोकन किया गया। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का डिजिटलीकरण, कौशल विकास तथा तकनीकी नवाचार राष्ट्र की आत्मनिर्भरता के प्रमुख आधार हैं।

1. डे एवं पांडा (2026) ने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला गया कि SWAYAM, डिजिटल मूल्यांकन तथा प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षण विद्यार्थियों में स्व–अधिगम, कौशल विकास एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्रोत्साहित करते हैं, जो आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा को सुदृढ़ बनाते हैं।
2. अपार बिंजोला एवं कुलदीप शर्मा (2026) शोध के अनुसार DIKSHA, SWAYAM तथा PM eVIDYA जैसी पहलों ने शिक्षा की पहुँच एवं गुणवत्ता में वृद्धि की है, यद्यपि डिजिटल विभाजन अभी भी एक प्रमुख चुनौती है।
3. श्वेता सिंह (2026) ने शोध में पाया गया कि नीति के माध्यम से डिजिटल साक्षरता, ई–लर्निंग तथा समावेशी शिक्षा को बढ़ावा मिला है, जिससे भविष्य के लिए तकनीकी रूप से दक्ष मानव संसाधन तैयार हो रहे हैं।
4. करनम पुष्पनाधम (2019) ने यूनेस्को के लिए प्रकाशित अध्ययन में भारत में MOOCs एवं SWAYAM जैसे मंचों की उपयोगिता का विश्लेषण किया। अध्ययन के अनुसार डिजिटल शिक्षण मंच उच्च शिक्षा की पहुँच बढ़ाने तथा आजीवन अधिगम को प्रोत्साहित करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए हैं।
5. ज्योति झा एवं डी. हरिचंदन (2022) ने भारत में ऑनलाइन शिक्षा के विकास का अध्ययन किया। शोध के अनुसार SWAYAM मंच गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सभी वर्गों तक पहुँचाने तथा डिजिटल असमानता को कम करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शोधों में डिजिटल शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, ऑनलाइन शिक्षण मंचों तथा तकनीकी नवाचारों के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी के समन्वित प्रभाव का मूल्यांकन करना।

4. इस क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियों एवं समाधान प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, शिक्षा मंत्रालय, नीति आयोग, यूनेस्को, यूजीसी, विभिन्न शोध–पत्रों, पुस्तकों, सरकारी प्रतिवेदनों तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। संकलित तथ्यों का वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन किया गया है।

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की अवधारणा में शिक्षा की भूमिका :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती है। यह केवल साक्षरता तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व, चिंतन क्षमता, नैतिक मूल्यों तथा व्यावसायिक दक्षता का समग्र विकास करती है। आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना तभी सफल हो सकती है, जब देश का युवा वर्ग ज्ञान के साथ–साथ कौशल एवं नवाचार से भी परिपूर्ण हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, अनुसंधान तथा कौशल विकास पर विशेष बल दिया गया है। इससे विद्यार्थियों में समस्या–समाधान की क्षमता विकसित होती है, जो आत्मनिर्भर समाज की मूल आवश्यकता है।

वर्तमान समय में स्टार्टअप संस्कृति, नवाचार तथा उद्यमिता को बढ़ावा देने में उच्च शिक्षा संस्थानों की भूमिका निरंतर बढ़ रही है। अनेक विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में नवाचार प्रयोगशालाएँ, इनक्यूबेशन केंद्र तथा उद्यमिता विकास प्रकोष्ठ स्थापित किए गए हैं, जहाँ विद्यार्थी अपने विचारों को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। इससे रोजगार खोजने वाले युवाओं के स्थान पर रोजगार उपलब्ध कराने वाले युवा तैयार हो रहे हैं।

आत्मनिर्भर भारत में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वित प्रभाव व परिवर्तनकारी भूमिका :

वर्तमान युग को सूचना एवं ज्ञान का युग कहा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी ने शिक्षा, उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, प्रशासन तथा व्यापार सहित प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में इसकी भूमिका केवल तकनीकी सुविधा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ज्ञान के प्रसार, नवाचार को प्रोत्साहन, डिजिटल समावेशन तथा आर्थिक विकास का प्रमुख आधार बन चुकी है।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी ने शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, सुलभ एवं लचीला बनाया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को देश के दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी ने केवल शिक्षा के प्रसार में ही नहीं, बल्कि कौशल विकास एवं रोजगार सृजन में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), डेटा विज्ञान, साइबर सुरक्षा, क्लाउड कम्प्यूटिंग तथा डिजिटल विपणन जैसे क्षेत्रों में लाखों युवाओं के लिए नए अवसर उपलब्ध हुए हैं। इससे भारत वैश्विक डिजिटल अर्थव्यवस्था में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

ग्रामीण भारत में भी डिजिटल शिक्षा ने सकारात्मक परिवर्तन लाया है। इंटरनेट एवं मोबाइल प्रौद्योगिकी के माध्यम से ग्रामीण विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो रही है। इससे शैक्षिक असमानता में कमी आई है तथा शिक्षा का दायरा व्यापक हुआ है। यदि डिजिटल संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित किया जाए, तो यह परिवर्तन और अधिक प्रभावी सिद्ध होगा।

चुनौतियाँ एवं सुझाव :

यद्यपि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी ने आत्मनिर्भर भारत की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दिया है, तथापि अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। देश के अनेक ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित उपलब्धता, डिजिटल उपकरणों का अभाव तथा आर्थिक विषमता डिजिटल शिक्षा के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं। इसके अतिरिक्त अनेक शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में डिजिटल दक्षता का अभाव भी प्रभावी तकनीकी उपयोग में बाधा उत्पन्न करता है।

साइबर सुरक्षा, व्यक्तिगत आँकड़ों की गोपनीयता तथा ऑनलाइन माध्यमों के दुरुपयोग जैसी समस्याएँ भी निरंतर बढ़ रही हैं। इन चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता से नहीं, बल्कि उनके सुरक्षित एवं उत्तरदायी उपयोग से संभव है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक है कि डिजिटल अवसंरचना का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों तक किया जाए, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए नियमित डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाएँ, स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण ई–शैक्षिक सामग्री विकसित की जाए तथा अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहित करने हेतु शिक्षा एवं उद्योग के मध्य सहयोग को और सुदृढ़ बनाया जाए। साथ ही, डिजिटल साक्षरता को विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी तकनीकी रूप से दक्ष एवं आत्मनिर्भर बन सके।

निष्कर्ष :

आत्मनिर्भर भारत का निर्माण केवल आर्थिक नीतियों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए शिक्षित, कुशल, नवाचारी एवं तकनीकी रूप से सक्षम नागरिकों का निर्माण आवश्यक है। शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक एवं नैतिक विकास का आधार है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी उस शिक्षा को व्यापक, प्रभावी एवं समावेशी बनाती है। दोनों के समन्वित प्रयासों से ही ऐसा समाज निर्मित किया जा सकता है जो ज्ञान–आधारित, आत्मविश्वासी एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी हो।

अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी केवल आत्मनिर्भर भारत के सहायक साधन नहीं हैं, बल्कि वे उसके मूल प्रेरक तत्व हैं। एक शिक्षित, तकनीकी रूप से दक्ष एवं नवाचारी नागरिक ही आत्मनिर्भर, समृद्ध एवं विकसित भारत की आधारशिला रख सकता है।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020. शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
2. नीति आयोग. (2020). आत्मनिर्भर भारत : विकास की नई दिशा।
3. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE) प्रतिवेदन।
4. शिक्षा मंत्रालय. यू–डाइस प्लस (UDISE+) प्रतिवेदन।
5. UNESCO. (2021). Reimagining Our Futures Together : A New Social Contract for Education.
6. World Bank. (2020). The COVID-19 Pandemic: Shocks to Education and Policy Responses.
7. भारत सरकार. डिजिटल इंडिया कार्यक्रम.
8. भारत सरकार. स्वयं (SWAYAM) पोर्टल.
9. भारत सरकार. दीक्षा (DIKSHA) मंच.

10. भारत सरकार. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI).

- Dey, B., & Panda, B. N. (2026). *Understanding the Role of Digital Technologies in Transforming Educational Practices and Evaluation Methods: An NEP 2020 Perspective*. International Journal of Management and Development Studies. DOI: **10.53983/ijmds.v15n04.006**
- **Link:** https://ijmds.in/index.php/IJMDS/article/view/52
- Binjola, A., & Sharma, K. (2026). *Digital Transformation in Indian Education: A Systematic Review of NEP 2020 Initiatives, Challenges, Impacts, and Enhancement Strategies*. IJFMR.
- **Link:** https://www.ijfmr.com/research-paper.php?id=80397
- Singh, S. (2026). *A Study of the Role of the National Education Policy 2020 in Digital Education*. International Journal of Research – GRANTHAALAYAH. DOI: **10.29121/granthaalayah.v14.i6.2026.7013**
- **Link:** https://granthaalayahpublication.org/journals/granthaalayah/article/view/7013
- Pushpanadham, K. (2019). *Massive Open Online Courses: The Emerging Landscape of Digital Learning in India*. UNESCO International Institute for Educational Planning.
- **Link:** https://www.iiep.unesco.org/en/publication/massive-open-online-courses-emerging-landscape-digital-learning-india
- Jha, J., & Harichandan, D. (2022). *MOOCs in India and SWAYAM: An Overview*. Indian Journal of Educational Technology.
- **Link:** https://journals.ncert.gov.in/IJET/article/view/497

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

जैन परम्परा में नारी शिक्षा

चन्दन कुमार मिश्र
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका रही है। प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं था, बल्कि इससे बालक का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास होता था। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में आत्मानुशासन, कर्तव्यबोध, सामाजिक दायित्व, संस्कार आदि की भावना का विकास किया जाता था। इसलिए शिक्षा व्यवस्था केवल पुरूषों तक सीमित नहीं रखी गई थी, बल्कि विभिन्न कालखण्ड में स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। भारत वर्ष के समाज में नारियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में नारी का समाज में विशेष स्थान था तथा पुरूषों की भाँति उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में बराबर का स्थान प्राप्त था। स्त्रियाँ तात्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनात्मक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

जैन परम्परा में नारी की स्थिति अच्छी थी। उन्हें स्वतंत्रता, समानता जैसे अधिकार प्राप्त थे। इस परम्परा में स्वाबलम्बी नारी–जीवन की कल्पना प्रचुर मात्रा में मिलती है। वैदिक परम्परा में नारी के लिए कोई धार्मिक संघ नहीं था, परन्तु जैन संघ में सुश्राविका नारी और पूज्य साध्वी कठोर जैसे अनुशासन से अपना जीवन व्यतीत करती थी। जैन संघ संरचना में साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका के रूप में चार अंगों की व्यवस्था विकसित हुई।[1] इस संघ में साध्वियों तथा श्राविकाओं को सम्मिलित होना यह स्पष्ट करती है कि जैन शैक्षिक एवं धार्मिक परम्परा में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी थी। पुरूषों की अपेक्षा स्त्री समाज में धार्मिक भावना अधिक पाई जाती है। इसलिए तीर्थंकर के साधु एवं श्रावकों से साध्वियों और श्राविकाओं की संख्या प्रायः ज्यादा पाई जाती है।

जैन साहित्य में उल्लेखित आख्यानों से यह प्रमाणित होता है कि पुरूषों के समान ही नारियों में शिक्षा का प्रचार था। जैन धर्म के आदिपुरूष अथवा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने पुरूषों को 72 कलाएँ और स्त्रियों को 64 कलाएँ सिखलाई है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि जैन धर्म के प्रारम्भ से ही नारी शिक्षा का प्रावधान था। पद्मानन्द काब्य में भी वर्णित है कि ऋषभदेव ने पुत्रों के समान ही कन्याओं को गणित, लिपि और भाषा की शिक्षा दी। आदिपुराण के अनुसार अपनी पुत्रियों को विद्या का महत्व समझकर भगवान् ऋषभदेव ने विशाल स्वर्ण के पट्टे पर अपने चित्रों में श्रुतदेवता का पूजन कर स्थापना किया। फिर दोनों हाथों से अ, आ, ई आदि अक्षर मालिका लिखि तथा अनुक्रम से ईकाई–दहाई आदि अंकों के द्वारा संख्या का ज्ञान कराया। इस प्रकार उन दोनों पुत्रियों को भगवान् ने लिखने का उपदेश दिया।[3]

आदि पुराण से यह स्पष्ट होता है कि कन्याओं की शिक्षा को महत्वपूर्ण पहलु माना गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षण व्यवस्था में विद्या आरम्भ की उम्र लगभग 5 वर्ष स्वीकार की गई है। आदिपुराण में लिपि संस्कार का उम्र 5 वर्ष बताया गया है। इसी संस्कार से अक्षर ज्ञान प्रारम्भ हो जाता था। सम्भवतः नारी की शिक्षा भी पाँच वर्ष की अवस्था में हो जाता था। बालिकाओं को किसी राजकीय पाठशाला में उनके ही महलों में ही शिक्षकों की व्यवस्था कर दी जाती थी। शान्तिनाथचरित में वर्णित सत्यकि पुत्री सत्यभामा भी विदुषी है। धर्मामृत में आई हुई अनन्तमती की कथा से भी यह प्रमाणित होता है कि माता–पिता किशोरावस्था में अपनी पुत्रियों को शिक्षा हेतु आर्यिका के समक्ष छोड़ देते थे। आयिकाएँ धर्म, आचार, गणित एवं आगम आदि की शिक्षा देकर उन्हें योग्य बनाती थी। जैन साहित्य में वर्णित है कि नृत्य, संगीत की शिक्षा के लिए भी माता–पिता अपनी लड़की को शिक्षिकध शिक्षिका के पास भेजते थे।

जैन परम्परा में दो प्रकार की छात्राओं का उल्लेख है, जिसमें प्रथम वे छात्राएँ थी जिनका अध्ययन काल लगभग आठ वर्षों का होता था तथा दूसरी वे छात्राएँ थी, जो भिक्षुणी बनकर आजीवन अध्ययन करती रहती थी।[4] सामान्यतः स्त्रियाँ अपने परिवार के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करती थी। दूसरे शब्दों में जैन साहित्य में चौंसठ कलाओं में निपुण स्त्री एवं साधारण ज्ञान से युक्त स्त्री दोनों का उल्लेख मिलता है। पद्मपुराण में वर्णित केकया की शिक्षा से तात्कालीन जैन समाज में स्त्री शिक्षा के विषय का पता चलता है। केकया को तीन प्रकार के नृत्य, वाद्य एवं गीत तीनों की सम्यक् शिक्षा प्रदान की गई थी। साथ ही इन्होंने समस्त लिपि ज्ञान को भी ग्रहण किया। स्थान, स्वर, संस्कार विन्यास, विराम जैसे भाषा ज्ञान को भी प्राप्त किया।

प्राचीन काल से ही भाषण कला की महता स्वीकार की गई। इस कला को पुरूष–स्त्री दोनों ही शिक्षा के रूप में इसे ग्रहण करते थे। भाषण कला में शब्दों के चयन, वाणी में उतार–चढ़ाव तथा भाव–भगिंमा का उचित उपयोग सीखकर अपनी भाषण कला से जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते थे। जो जितना ही भाषण कौशल में निपुण होता। वह उतना ही समाज में लोगों के द्वारा सम्मानित होता और लोकप्रिय बना रहता। इस प्रकार यह कहा जा सकता है। नारी शिक्षा के विषय में भाषण कला भी सूचीबद्ध है।

तात्कालीन समय में जैन शिक्षण व्यवस्था के नारी शिक्षा के विषय में सिलाई–कढ़ाई की शिक्षा एक अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित थी। इस शिक्षा को जैन वाङ्मय में वुष्किम कहा गया है। सूई द्वारा कपड़े पर कढ़ाई करना अथवा हाँथी दाँत के ऊपर महीन कुर्चिका अथवा छेनी–हथोड़ी द्वारा आकृतियाँ उत्कीर्ण करना वुष्किम कहलाता है। वुष्किम के दो भेद बताए गए हैं– छिन्न और अछिन्न। छिन्न कर्म में कैंची से काटकर कपड़े को सीना तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की, रेशम या अन्य किसी चीज से कढ़ाई का कार्य करना छिन्न के अन्तर्गत आता था।[5] इसके साथ ही वस्त्रों को रंगना, धागे द्वारा वस्त्रों की कढ़ाई करना आदि भी शिक्षा में शामिल थे।

धातु एवं अधातु के संबंध में भी स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस सन्दर्भ में धातु एवं अधातु के गुण–दोष, उसके परीक्षण का ज्ञान, उससे बनाए गए आभूषण एवं उपयोगी वस्तु को बनाने की जानकारी भी इन्हें प्रदान की जाती थी। जीव–विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान बालक से संबंधित ज्ञान की भी जानकारी इन्हें प्रदान की जाती थी। साथ इन्हें विभिन्न प्रकार के खेल एवं उसके नियमों की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। माप–तौल से संबंधित जानकारी देकर इन्हें सामाजिक जीवन के निर्वहन की जानकारी देने का उल्लेख है। तात्कालीन समय में भूगोल, इतिहास वनस्पति शास्त्र की भी शिक्षा राजकुमारियों को दिये जाने का उल्लेख साहित्य में मिलता

है।

राजेश्वर सूरि की रचना प्रबन्धकोश के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नारियों को भी उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। मदनमंजरी जो विजयपुर के राजा कुन्ती भोज की पुत्री थी, ने पर्दे के पीछे से दिगम्बर साधु द्वारा रचे गए पाँच सौ श्लोकों को लिखा था।[6] जिससे उसका लिपि ज्ञान का बोध होता है। साथ ही इस ग्रंथ से यह भी पता चलता है कि स्त्रियाँ भिन्न–भिन्न देशों की कई ज्ञाषा की जानकारी रखती थी।[7] जैन साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि कई बिदुषी महिलाओं ने अनेक जैन साधु एवं विद्वानों को शिक्षा प्रदान की है और उनके भविष्य के निर्माण में योगदान दिया है।

परीक्षा उपरान्त उपाधि देने की प्रथा प्राचीन काल के शिक्षा–व्यवस्था से चली आ रही है। इस क्षेत्र में स्त्रियाँ पुरूषों से कहीं भी पीछे नजर नहीं आती है। ये उपाधियाँ, संघ, समाज या राजा के द्वारा उनके अध्ययन की समाप्ति पर एवं शैक्षणिक सफलता पर दी जाती थी। इन उपाधियों में पण्डिता, आर्यिका, आचार्या, गणिनी, प्रतिहारी, साध्वी, प्रवतिनी, महतरा आदि उपाध्यों का उल्लेख मिलता है।[8] उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं को 'पण्डिता' की उपाधि से विभुषित किया जाता था।

नारी शिक्षा के प्रचार–प्रसार में जैन संघ में उपस्थित साध्वियों, आर्यिका ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शिक्षा के प्रसार में तात्कालीन समय के महावीर स्वामी के संघ में रहने वाली कई हजार साध्वियों और श्राविकाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया है। जैन मुनियों के संघ में भ्रमण करने वाली आर्यिकाएँ सजीव शिक्षा संस्था के रूप में उल्लेखित है। चन्दनवाला जो कि एक शिक्षिका थी, उन्होंने शिक्षा का व्यापक–प्रचार–प्रसार किया। इनका क्षेत्र विशेषकर बिहार में था। इन्होंने अपनी योग्यता के बल पर आर्यिका के पद को सुशोभित किया। साथ संघ में उपस्थित छतीस हजार साध्वियों का मार्गदर्शन भी किया। नारी शिक्षा के केन्द्र के रूप में जैन संघ के अतिरिक्त मठ, चौत्यालय, मंदिर आदि भी शिक्षा का ज्ञान फैलाते थे। जैसे साध्वी चन्दना की प्रेरणा से श्रावस्ती और कौशाम्बी में बड़े–बड़े कन्या विद्यालय की स्थापना हुई। साथ ही राजगृह, पाटलिपुत्र, नालन्दा, वैशाली आदि स्थानों पर नारी शिक्षा पर विशेष कार्य किये गये।[9]

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही जैन शिक्षण–व्यवस्था में नारी शिक्षा को समान अधिकार प्रदान किया गया है। जैन शिक्षण व्यवस्था में नारी शिक्षा में ज्ञान के साथ विनय, संयम, करूणा, अनुशासन, अहिंसा जैसे गुणों के विकास पर बल दिया गया है। जिससे महिला के व्यक्तित्व का नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव हो पाया है। इस प्रकार जैन समाज में नारी शिक्षा का प्रभाव व्यक्तिगत, आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन पर भी पड़ता था। जिसका परिणाम यह हुआ कि जैन समाज में नारी की स्थिति अच्छी बनी हुई है।

संदर्भ-सूची :

1. शैलेश कुमार, जैन प्रकीर्णक साहित्य में समाज एवं संस्कृति, मनीष प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ0– 127
2. अगरचन्द नाहटा, कतिपय श्वेताम्बर बिदुषी कवयित्रियाँ, पृ0– 570 (चन्दाबाई अभिनंदन ग्रंथ), अ0भा0दि0 जैन महिला–परिषद, 1954
3. जिनसेन, आदिपुराण, लाला राम जैन (अनुवादक), ग्रन्थ प्रकाशक कार्यालय, इन्दौर, 1973
4. एल0सी0 जैन, वैशाली इंस्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन नं0–6, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान,

वैशाली, 1988, पृ0– 153
5. निशानन्द शर्मा, जैन वाङ्मय में शिक्षा के तत्व, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, 1988, पृ0– 217
6. राजशेखर सूरी, प्रबन्धकोश (भाग–1), अधिष्ठाता–सिंघी जैन ज्ञानपीठ, अहमदाबाद, 1935, पृ0– 34
7. वही, पृ0– 92
8. मेरूतुंगाचार्य, प्रबन्ध चिंतामणि, सी0एच0 टौनी (अनुवादक), एशियाटिक सोसाइटी, कलकता, 1901, पृ0– 36
9. निशानन्द शर्मा, पूर्व उद्धधृत, पृ0– 223

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

डिजिटल युग में गुरूकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता एवं पुनर्पाठ की संभावनाएं

Dr. Suman Baliyan
Professor and Dean Faculty of Art's & Humanities,
Mahaveer University Meerut, Uttar Pradesh.

सार :

आधुनिक डिजिटल युग में तकनीकी प्रगति और गतिशीलता के बीच गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूल सिद्धांतों की प्रासंगिकता लगातार बढ़ती जा रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली जहाँ केवल किताबी ज्ञान और व्यावसायिक कौशल पर अधिक जोर देती है, वहीं गुरुकुल पद्धति समग्र विकास, नैतिक मूल्यों, चरित्र निर्माण और मानसिक शांति पर आधारित है।

डिजिटल युग में स्क्रीन टाइम बढ़ने और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं के समाधान के रूप में गुरुकुल प्रणाली के तत्वों 'जैसे गुरु–शिष्य संवाद, प्रकृति के सान्निध्य में सीखना, योग, ध्यान और आत्म–अनुशासन को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ना अत्यंत प्रासंगिक हो गया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक तकनीक का एक संतुलित समन्वय तैयार किया जाए, जिससे विद्यार्थी तकनीकी रूप से दक्ष होने के साथ–साथ नैतिक और मानसिक रूप से भी सशक्त बन सकें।

मुख्य शब्द :

गुरुकुल शिक्षा पद्धति, डिजिटल युग और शिक्षा, समग्र विकास, नैतिक मूल्य और चरित्र निर्माण, गुरु–शिष्य संबंध, मूल्य–आधारित शिक्षा, प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, आधुनिक शिक्षा प्रणाली का समन्वय।

प्रस्तावना :

भारतीय शिक्षा प्रणाली की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि यहां ज्ञान को सदा से सर्वोपरि माना गया हैद्य गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ भी नहीं मानते हैं।– 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति'।। इसी ज्ञान के आदान–प्रदान हेतु प्राचीन भारत में गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली विद्यमान थी। यह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान प्रदान करने का माध्यम ही नहीं थी, बल्कि वहां गुरुओं द्वारा शिष्यों का व्यक्तित्व निर्माण, नैतिक उन्नति, अनुशासन, समस्त उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता, और आत्मिक विकास का भी आधार थी। जिसमें विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर प्रकृति के सानिध्य में अनुशासन एवं सेवा भाव के साथ ज्ञानार्जन करते थे।

समय के साथ–साथ शिक्षा में अनेक बदलाव आए विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया। इंटरनेट कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ऑनलाइन शिक्षक मंच और स्मार्ट कक्षाओं ने ज्ञान को पहले की अपेक्षा अधिक सुलभ, व्यापक और त्वरित बना दिया है। आज विद्यार्थी भौगोलिक सीमाओं से परे विश्व भर के ज्ञान–संसाधनों तक सहजता से पहुंच सकते हैं लेकिन इसके साथ ही यह भी उतना ही सच है कि तकनीकी केंद्रित शिक्षा ने नई चुनौतियों को जन्म दिया है विद्यार्थियों में बढ़ता मानसिक तनाव, एकाग्रता में कमी, सामाजिक संवाद का सीमित होना, नैतिक मूल्यों का ह्रास होना, तथा शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आत्मीय संबंधों का कमजोर होना आज शिक्षा के क्षेत्र में गंभीर समस्याओं में शामिल है। आज ज्ञान की उपलब्धता तो हमारे हाथ में है लेकिन जीवन मूल्यों, संवेदनशीलता और मानवीय दृष्टिकोण का विकास अपेक्षित गति से नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में यह विचारणीय है कि क्या भारतीय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मूलभूत सिद्धांत आज भी हमारी शिक्षा व्यवस्था को नई दिशा दे सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन कर रोजगार प्राप्त करने का माध्यम नहीं मानती, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व, नैतिक मूल्यों और रचनात्मक सोच, सांस्कृतिक चेतना और जीवन कौशल के विकास का आधार मानते हुए ऐसे उत्तरदाई नागरिक के निर्माण पर बल देती है, जो स्वयं के साथ–साथ समाज और राष्ट्र के विकास में भी सक्रिय योगदान दे सके। इस दृष्टि से देखा जाए तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय गुरुकुल परंपरा के अनेक मूल सिद्धांत एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं दोनों ही शिक्षा को जीवन निर्माण की प्रक्रिया मानते हैं। जहां ज्ञान के साथ–साथ चरित्र, संस्कार और सामाजिक चेतना का विकास भी आवश्यक है।

गुरूकुल शिक्षा पद्धति का दार्शनिक आधार :

शिक्षा मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान, असत्य से सत्य और संकीर्णता से व्यापक दृष्टिकोण की ओर ले जाती है उपनिषदों में वर्णित 'सा विद्या या विमुकतये' का सिद्धांत यही स्पष्ट करता है कि वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को बौद्धिक ही नहीं बल्कि मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर भी विकसित करें। उपनिषदों, वेदों और स्मृति ग्रन्थो में भी शिक्षा को आत्मज्ञान तथा व्यक्तित्व के परिष्कार का माध्यम बताया गया है तैत्तिरीय उपनिषद का प्रसिद्ध उपदेश – 'सत्यं वद धर्मं चर' इस बात का प्रमाण है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा की साथ–साथ 'पूर्ण मानव' के निर्माण पर केंद्रित था। इसे ही प्राचीन भारतीय दर्शन में पंचकोश विकास भी कहा गया है।

गुरुकुल पद्धति में जो कुछ भी वेदों, उपनिषदों या शास्त्रों से सीखा जाता था उसे तुरंत दैनिक जीवन के व्यवहार में उतारा जाता था। समाज के प्रति कर्तव्य, अतिथियों का सत्कार, (अतिथि देवो भवः) और छोटो के प्रति स्नेह – ये सभी बातें किताबी ज्ञान न होकर जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव थे। चरित्र निर्माण को शिक्षा की धूरी माना गया था। ज्ञान वही है जो मनुष्य को विनीत और परोपकारी बनाए, न कि केवल प्रतियोगिता में आगे रखने वाला। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का दार्शनिक आधार इस कटु सत्य पर आधारित है कि शिक्षा सूचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि चेतना का विस्तार है। जब हम इस पद्धति को मानवीय दृष्टिकोण से देखते हैं, तो पाते हैं कि आज की तनावपूर्ण और एकांकी होती जा रही युवा पीढ़ी को एक ऐसा संबल देती है जहां वे अपनी जड़ों से जुड़कर अधिक आत्मविश्वासी, करुणा मय और मानसिक रूप से सुदृढ़ बन सकते हैं।

समग्र व्यक्तित्व विकास की अवधारणा :

आज जब हम आधुनिक जीवन की भाग दौड़ भरी और मशीनी जिंदगी से थोड़ा ठहरकर प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की ओर देखते हैं तो महसूस होता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्रियां लेकर रटकर परीक्षा पास करना नहीं है। गुरुकुल शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी को भीतर और बाहर से पूरी तरह तराशना यानी समग्र व्यक्तित्व विकास करना था। गुरुकुल में पढ़ाई केवल कक्षा तक सीमित नहीं थी बल्कि वह जीने की एक पूरी कला और आत्म साक्षात्कार का मार्ग थी, जहां साधारण बच्चे को एक जिम्मेदार सशक्त और संतुलित इंसान बनाना था। और इससे भी बढ़कर उसके भीतर छिपी हुई मानवीय क्षमताओं को जागृत करना था। वेदो, उपनिषदों और प्राचीन ग्रंथो में शिक्षा को यज्ञ के समान पवित्र माना गया है जिसमें छात्र अपने अहंकार की आहुति देकर ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित करता था। विद्या और ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए श्रीमद् भागवत में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जब मनुष्य का अंतकरण ज्ञान के प्रकाश से जगमगा उठता है तब उसे समस्त संसार में चेतना का रूप दिखाई देता है। ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।। अर्थात जिनका अज्ञान आत्मज्ञान के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है, उनका वह ज्ञान सूर्य के समान उसे परम तत्व को प्रकाशित कर देता है।

गुरुकुल में जब एक गुरु अपने शिष्य को पढ़ाता था तो वह केवल सूचनाओं का आदान–प्रदान नहीं करता था बल्कि एक आध्यात्मिक ऊर्जा का मिलन होता था। तैत्तिरीय उपनिषद् में भी कहा गया है कि– सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।। अर्थात ईश्वर हम दोनों गुरु और शिष्य की एक साथ रक्षा करें, हम दोनों का एक साथ पालन करें, हम दोनों मिलकर पराक्रम करें, हम जो पढ़े वह तेजवान हो, और हम कभी आपस में द्वेष ना करें, जैसे तिलों में तेल, दूध में घी, लकड़ी में अग्नि छिपी होती है वैसे ही यह संपूर्ण सत्य मनुष्य के अपने भीतर निवास करता है और गुरुकुल शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इसी छिपे आत्म बल को जागृत करना था। तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पि–रापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः। एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।। छात्रों के भीतर से भय, आलस, और अज्ञान को दूर करके उन्हें निर्भीक और ओजस्वी बनाने के लिए वेदों में प्रार्थना की जाती थी यजुर्वेद का यह मंत्र गुरुकुल के विद्यार्थियों की नित्य चेतना का हिस्सा थी जो उन्हें बल, और ओज से परिपूर्ण करता था। 'तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।'

समाज और प्रकृति के साथ सामंजस्य के लिए कल्याण की कामना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है अर्थववेद का यह श्लोक से निकलने वाले हर युवा के संस्कार में निहित होता था–भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः व्यशेम देवहितं यदायुः।। इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा परंपरा का उद्देश्य ऐसे दिव्य और मानवीय गुणों से संपन्न मनुष्य को बनाना था, जो अपने आत्मबल, उच्च चरित्र, अनुशासन, और सार्वभौमिक दृष्टिकोण के माध्यम से संपूर्ण मानवता के उत्थान में अपना योगदान दे सके।

डिजिटल युग में गुरूकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता एवं पुनर्पाठ की संभावनाएँ :

गुरु केवल पाठ पढ़ाने वाले शिक्षक नहीं थे, बल्कि वे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण के मार्गदर्शक भी थे। वे प्रत्येक विद्यार्थी की क्षमता, रुचि और आवश्यकता को समझते हुए उसका मार्गदर्शन करते थे। यह संबंध एकतरफा निर्देश का नहीं, बल्कि पारस्परिक संवाद, आदर और स्नेह का था। गुरु शिष्य को केवल 'क्या सोचना

है' नहीं सिखाते थे, वरन् 'कैसे सोचना है' और 'क्यों सोचना है' का अभ्यास कराते थे।

आज के डिजिटल परिवेश में यह संबंध एक गहरी आवश्यकता बन गया है। ऑनलाइन शिक्षा, वीडियो व्याख्यान और स्वचालित मूल्यांकन प्रणालियों ने ज्ञान की उपलब्धता को तो अत्यंत सरल बना दिया है, परंतु वे उस मानवीय स्पर्श की पूर्ति नहीं कर पाते जो एक सच्चे गुरु–शिष्य संवाद में निहित है। विद्यार्थी को जब जीवन के कठिन प्रश्नों का सामना करना होता है 'चाहे वह करियर का चुनाव हो, नैतिक दुविधा हो, या आत्मविश्वास का अभाव हो' तब एक सहानुभूतिपूर्ण मार्गदर्शक की उपस्थिति अपरिहार्य हो जाती है।

समकालीन शैक्षिक मनोविज्ञान भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मेंटरशिप और पर्सनलाइज्ड लर्निंग 'जो आज की आधुनिक शिक्षा–पद्धति के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं' मूलतः गुरु–शिष्य परंपरा के ही आधुनिक पुनरावर्तन हैं। अंतर केवल इतना है कि गुरुकुल में यह संबंध स्वाभाविक, सहज और जीवनव्यापी था, जबकि आज इसे संस्थागत ढाँचे में सीमित किया गया है।

अतः गुरु–शिष्य संबंध की पुर्नस्थापना का अर्थ यह नहीं है कि हम प्राचीन भौतिक संरचना को पुनः स्थापित करें, वरन् यह है कि शिक्षक और विद्यार्थी के बीच उस आत्मीय, निरंतर और समग्र संवाद को पुनर्जीवित किया जाए जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की नींव है। डिजिटल माध्यम इस संबंध को तोड़ने के बजाय, यदि सही दिशा में उपयोग किए जाएँ, तो उसे और व्यापक बना सकते हैं।

समग्र एवं चरित्र-केंद्रित शिक्षा की आवश्यकता :

गुरुकुल पद्धति की एक अन्य मौलिक विशेषता यह थी कि शिक्षा का केंद्र केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि विद्यार्थी का समग्र विकास था। इसमें शारीरिक शिक्षा, मानसिक अनुशासन, नैतिक मूल्यों का संवर्धन, व्यावहारिक कौशल और आध्यात्मिक चिंतन सभी का समन्वय होता था। विद्यार्थी को केवल 'जानकार' नहीं, बल्कि 'विद्वान', 'संवेदनशील' और 'सामाजिक रूप से उत्तरदायी' नागरिक बनाना शिक्षा का लक्ष्य था।

डिजिटल युग में इस समग्रता की आवश्यकता और भी तीव्र हो गई है। आज सूचना की बाढ़ में विद्यार्थी के पास तथ्य तो असीमित हैं, परंतु विवेक का अभाव है। सोशल मीडिया, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और एल्गोरिद्म–आधारित कंटेंट ने 'क्या सही है' और 'क्या सत्य है' के बीच की रेखा को धुँधला कर दिया है। ऐसी स्थिति में गुरुकुल की वह शिक्षा जो विद्यार्थी को विवेक, आत्म–अनुशासन और नैतिक निर्णय–क्षमता प्रदान करती थी, अत्यंत प्रासंगिक हो उठती है।

चरित्र–निर्माण गुरुकुल शिक्षा का अविभाज्य अंग था। विद्यार्थी गुरु के साथ रहकर, उनका आचरण देखकर, दैनिक कर्तव्यों का पालन करके और सहपाठियों के साथ मिलकर कार्य करके जीवन–मूल्यों को 'सीखता' नहीं, बल्कि 'जीता' था। यह अनुभवात्मक शिक्षा किसी भी डिजिटल मॉड्यूल या ऑनलाइन पाठ्यक्रम से प्रतिस्थापित नहीं की जा सकती।

डिजिटल युग में शिक्षा : अवसर और चुनौतियां :

इक्कीसवीं सदी में सूचना एवं संचार तकनीकी तथा जेनरेटिव ए आई के विकास ने शिक्षा के पारंपरिक रूप को बदलकर ज्ञान को सुलभ बनाया है। इसमें कोई संदेह नहीं है परंतु इसके कारण अनेक चुनौतियां भी सामने आकर खड़ी हो गई है। आज विद्यार्थियों के पास पर्याप्त रूप से अध्ययन सामग्री तो है, परंतु असीमित सूचना के महासागर में तैरते हुए भी शिक्षार्थी की सोचने की क्षमता का आज मशीनीकरण हो गया है। जिसके कारण विद्यार्थियों के सोचने समझने और मस्तिष्क के कार्य करने की शैली एवं चिंतन प्रक्रिया प्रभावी हो रही है।

अब विद्यार्थी को पहले से ही यह ज्ञात है कि कोई भी सूचना (ज्ञान) इंटरनेट पर 24/7 उपलब्ध है, तो मस्तिष्क उस सूचना को याद रखने का प्रयास बंद कर देता है इसे न्यूरोसाइंस में 'डिजिटल एम्नेसिया' कहा जाता है। विद्यार्थी अब किसी भी समस्या पर स्वयं चिंतन करने, उसकी रूपरेखा बनाने या तर्क देने की बजाय जेनरेटिव ए आई को प्रॉमप्ट देकर उस समस्या का समाधान कर लेते हैं इससे उनके मौलिक सोच मशीनी निष्पादन द्वारा समाप्त हो रही है।

गहन अध्ययन एवं पुस्तकों के मूल अंश पढ़ने के स्थान पर ए आई द्वारा प्रसारित दो मिनट का वीडियो पर निर्भर हो गया है जिससे उसमें कार्य– कारण संबंध को समझने में कठिनाई उत्पन्न हो रही है और उसकी सोचने समझने की क्षमता कम होती जा रही है।

अब विद्यार्थी मूल ग्रन्थो, संदर्भ पुस्तकों को पढ़ने के स्थान पर ऑनलाइन उपलब्ध नोट्स यूट्यूब समरी या एआई जेनरेटेड बुलेट प्वाइंट्स पर निर्भर हो चुका है जब मस्तिष्क को बिना बौद्धिक श्रम के सीधे उत्तर मिल जाते हैं तो उसकी विश्लेषण करने, तुलना करने, और कार्य कारण संबंध को खोजने की क्षमता कम होने लगती है। सूचना तो है, परंतु वह ज्ञान और विवेक में परिवर्तित नहीं हो पा रही है।

अब शिक्षा ने तो पूरी तरह भौतिक है और ना पूरी तरह डिजिटल इसको 'फिजिटल मॉडल' कहा जा सकता है जहां विद्यार्थी थ्योरी और सैद्धांतिक समझ डिजिटल माध्यमों से प्राप्त करता है और व्यवहारिक ज्ञान भौतिक कक्षाओं से ही प्राप्त करता है ।

आज शिक्षा जगत इस बात से अनभिज्ञ है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म छात्र की सोच को कैसे नियंत्रित कर रहे हैं। सर्च इंजन एक ही सामग्री को बार–बार दोहराते हैं जो उसकी पहले सर्च हिस्ट्री से मेल खाती है। जिसके कारण छात्र को किसी भी विषय के ज्ञान के एक पहलू की जानकारी ही हो पाती है। वह विविध विरोधी एवं तुलनात्मक विचारों को पढ़ने से वंचित रह जाता है, जिससे उसके अंदर असहमति को स्वीकार करने और निष्पक्ष विश्लेषण करने की क्षमता घट जाती है।

डिजिटल युग में शिक्षा का अंतिम उद्देश्य छात्र को 'सूचना का उपभोक्ता' बनाना नहीं हो सकता यदि हमने अपनी शिक्षण पद्धतियों में मौलिक बदलाव नहीं किया तो एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो जाएगी जिसके पास ज्ञान का भंडार तो होगा परंतु स्वतंत्र और आलोचनात्मक सोच का अभाव होगा। समय की मांग है कि हम तकनीक को छात्र का मस्तिष्क बनने देने की बजाय केवल उसका सहायक उपकरण ही बने रहने दें।

वर्तमान समय में जब शिक्षा का केंद्र कई बार केवल प्रतिस्पर्धा और रोजगार तक सीमित हो जाता है तब गुरुकुल शिक्षा का मूल्यपर दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इसी शिक्षा दर्शन को बल देती है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति केवल अतीत की विरासत नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य की शिक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण प्रेरणा है उसके मूल सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन भारत में थे आवश्यकता इस बात की है कि सिद्धांतों को आधुनिक तकनीकी परिवेश और समकालीन शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप समझा और अपनाया जाए।

निष्कर्ष :

डिजिटल युग ने शिक्षा के साधनों को अभूतपूर्व रूप से विस्तृत किया है, परंतु शिक्षा की आत्मा 'जो मानवीय संवाद, नैतिक चिंतन, सहानुभूति और समग्र विकास में निहित है' वही रहती है जो सहस्रों वर्ष पूर्व गुरुकुलों में जीवित थी। गुरुकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता इसी बात में है कि वह हमें शिक्षा के मूल प्रयोजन

की स्मृति दिलाती है : मनुष्य को केवल 'सूचित' नहीं, 'संस्कृत' और 'सुसंस्कारित' बनाना।

पुनर्पाठ की संभावनाएँ असीम हैं, परंतु उनकी शर्त यह है कि हम प्राचीन को आदर्श मानकर वर्तमान को नकारें भी नहीं, और वर्तमान की तकनीकी चकाचौंध में प्राचीन की मूल अंतर्दृष्टि को भूलें भी नहीं। एक संतुलित, विवेकपूर्ण और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण ही वह मार्ग है जिस पर चलकर डिजिटल युग की शिक्षा को सार्थक, समग्र और सत्यनिष्ठ बनाया जा सकता है।

'विद्या ददाति विनयम्' ज्ञान विनय प्रदान करता है। यह सूत्र आज भी उतना ही सत्य है जितना सहस्रों वर्ष पूर्व था, और आगामी सहस्रों वर्षों तक रहेगा। तकनीक बदलेगी, माध्यम बदलेंगे, परंतु शिक्षा का यह मूल धर्म 'मनुष्य को मनुष्य बनाना' अपरिवर्तनीय है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. व्यास महर्षि श्रीमद्भागवत गीता, गोरखपुर गीता प्रेस 2018
2. शास्त्री, हरिनारायण संपादक उपनिषद, संग्रह (शांकरभाष्य सहित) गोरखपुरः गीता प्रेस 2022
3. दयानन्द सरस्वती, महर्षि, ऋग्वेद भाष्य/युजुर्वेद भाष्य, नई दिल्ली।
4. तैत्तिरीय उपनिषद महर्षि कृष्ण द्वैपायन, वेद व्यास पृष्ठ संख्या 200 से 250 शांकरभाष्य प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर (शिक्षावल्ली अनुवाद 11)
5. अग्रवाल जे. सी. शिक्षा का इतिहास।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2024 शिक्षा मंत्रालय।
7. शुक्ल, बलराम भारतीय ज्ञान परंपरा का सातत्य तथा संवर्धन।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

दलित लेखिका कुसुम मेघवाल की कहानियों में दलित स्त्री का समाज से संघर्ष

अलका जिलोया
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सार :

प्रस्तुत अध्याय में दलित लेखिका कुसुम मेघवाल की कहानियों के आधार पर दलित स्त्री का समाज से संघर्ष का विश्लेषण किया गया है। लेखिका की कहानियाँ स्पष्ट करती हैं कि दलित स्त्री का संघर्ष केवल पितृसत्ता से नहीं है, बल्कि वह जातिगत भेदभाव, सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक पाखंड, लैंगिक असमानता, यौन हिंसा तथा सामाजिक बहिष्कार जैसी बहुआयामी समस्याओं से भी संघर्ष करती है।

कुंजी शब्द : दलित स्त्री, समाज से संघर्ष, कुसुम मेघवाल, पितृसत्ता, जातिगत भेदभाव, सामाजिक रूढ़ियाँ, यौन हिंसा, सामाजिक न्याय, स्त्री–अस्मिता, दलित स्त्री–विमर्श।

भूमिका :

सामाजिक होने के कारण मनुष्य जन्म से ही दूसरों पर निर्भर रहता है। जैसे एक नवजात शिशु अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह परिवार पर निर्भर होता है और धीरे–धीरे अपने परिवार, मित्रों और समाज के संपर्क में आकर भाषा, व्यवहार, संस्कृति और परंपराएँ सीखता है इसलिए समाज मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समाज के साथ रहने के कुछ दायित्व भी होते हैं। मनुष्य को सामाजिक नियमों और नैतिक मूल्यों का पालन करना पड़ता है और यदि वह इन नियमों का उल्लंघन करता है या उन्हें स्वीकार नहीं करता है तो सामाजिक निंदा या दंड का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, समाज व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित भी करता है। अत्यधिक सामाजिक नियंत्रण और दबाव व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करता है। समाज में स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार उन्हें संघर्ष का रूख अपनाने के लिए बाध्य करता है। मानव समाज के विकास के साथ–साथ स्त्री की भूमिका भी निरंतर परिवर्तित होती रही है, परंतु यह परिवर्तन सहज नहीं था। स्त्रियों ने अपने अस्तित्व, अधिकार और सम्मान के लिए हमेशा संघर्ष किया है। स्त्री का समाज से संघर्ष केवल निजी जीवन की पीड़ा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है।

भारतीय समाज मूलतः पितृसत्तात्मक संरचना पर आधारित है, जहाँ पुरुष को सत्ता और नियंत्रण का केंद्र माना जाता है। इस व्यवस्था में स्त्री की पहचान प्रायः उसकी पारिवारिक भूमिकाओं जैसे माँ, पत्नी, पुत्री तक सीमित कर दी जाती है। जिसके कारण उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में विकसित होने के अवसर बहुत कम

मिलते हैं। यही स्थिति उसके संघर्ष की शुरुआत का मूल कारण बनती है। स्त्री का संघर्ष सामाजिक असमानता से है। समाज में शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता के अवसरों में गैर–बराबरी साफ दिखाई देती है। जहाँ लड़कों को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, वहीं लड़कियों को पारंपरिक मर्यादाओं में बाँध दिया जाता है। यह भेदभाव स्त्री के आत्मविश्वास और विकास में रुकावट पैदा करता है। दूसरा कारण आर्थिक निर्भरता है। लंबे समय तक स्त्री को आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ा जिससे उसकी स्वतंत्रता सीमित हो गई। आर्थिक निर्भरता के कारण वह अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठा पाती। तीसरा कारण सांस्कृतिक और मानसिक बंधनों का है। समाज में अनेक रूढ़ियाँ और परंपराएँ स्त्री को नियंत्रित करने की कोशिश करती है।

'अच्छी स्त्री' की परिभाषा आज्ञाकारी, सहनशील और त्यागमयी मूर्ति की तरह गढ़ी गई। जो स्त्री इन मानकों से हटकर अपने अधिकारों की बात करती है, उसे समाज द्वारा निंदा, अपमान और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, स्त्री का संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी है, जहाँ उसे अपने भीतर बैठे भय और संकोच से भी लड़ना पड़ता है। स्त्री के संघर्ष का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है हिंसा और शोषण। घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, बाल विवाह और यौन उत्पीड़न जैसी समस्याएँ आज भी समाज में विद्यमान हैं। ये समस्याएँ स्त्री की गरिमा और सुरक्षा को चुनौती देती हैं। यद्यपि कानूनों के माध्यम से इन पर नियंत्रण का प्रयास किया गया है, लेकिन आज भी यह समस्याएँ सामने खड़ी हैं। स्त्रियों ने अपने साथ हो रहे शोषण और गैरबराबरी के खिलाफ आवाज उठा रही है। इतिहास में अनेक स्त्रियाँ ऐसी रही हैं जिन्होंने सामाजिक बंधनों को तोड़कर नई राह बनाई। आधुनिक समय में स्त्रीवादी आंदोलन ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। शिक्षा, साहित्य, राजनीति और अन्य क्षेत्रों में स्त्रियों की बढ़ती भागीदारी इस संघर्ष की सफलता का प्रमाण है। साहित्य ने स्त्री के संघर्ष को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न कहानियों, उपन्यासों और कविताओं के माध्यम से स्त्री की पीड़ा, उसकी आकांक्षाएँ और उसके संघर्ष को उजागर किया गया है। साहित्य न केवल समाज का दर्पण है, बल्कि यह परिवर्तन का माध्यम भी है। यह लोगों को सोचने और अपनी मानसिकता को बदलने के लिए प्रेरित करता है। दलित स्त्री जाति, लिंग और आर्थिक विपन्नता के कारण कारण पितृसत्तात्मक समाज द्वारा तिहरे शोषण का शिकार होती है। कुसुम मेघवाल की कहानियों में दलित स्त्री का समाज से संघर्ष पितृसत्ता, जातिवाद, यौन हिंसा, रूढ़ियों और परंपराओं के विरुद्ध है।

कुसुम मेघवाल की अनुष्ठान कहानी में राधा समाज की उस रूढ़िवादी सोच का विरोध करती है जो स्त्री के अस्तित्व को केवल मातृत्व और संतानोत्पत्ति से जोड़कर देखती है। समाज में प्रचलित रूढ़ियों, अंधविश्वासों, धार्मिक पाखंड और स्त्री–विरोधी मानसिकता के विरुद्ध दलित स्त्री के संघर्ष का यथार्थ प्रस्तुत करती है। निःसंतान स्त्री को 'बन्ध्या' कहकर अपमानित करना समाज की अमानवीय मानसिकता का परिचायक है। राधा वर्षों तक यह अपमान सहने के बाद भी स्वयं को दोषी नहीं मानती, बल्कि उस सोच को ही चुनौती देती है "हमारे इस रूढ़िजन्य समाज में 'बन्ध्या' एक गाली है– सबसे बड़ी गाली। इसे मैं वर्षों से सुनती आ रही हूँ। समाज के लिए स्त्रियाँ मंदिर, मस्जिद, टोनाटोटका, ओझस्याना आदि जाने किस किस द्वार पर मस्तक टेकती हैं। किंतु मैं इसे अंधविश्वास ही मानती हूँ। ममता उड़ेलने के लिए, अपनी कोख से ही पुत्र–पुत्री उत्पन्न हो, यही क्या आवश्यक है?"[1] राधा इस सामाजिक सोच को स्वीकार नहीं करती। वह संतान प्राप्ति के लिए टोटकों, झाड़–फूँक, धार्मिक कर्मकांडों और अंधविश्वासों का विरोध करती है। उसके अनुसार मातृत्व केवल जैविक संतान तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रेम, ममता और मानवीय संवेदना का विस्तार भी है। इस प्रकार वह समाज द्वारा निर्मित स्त्री की

पारंपरिक भूमिका को चुनौती देती है। धार्मिक आस्था का लाभ उठाकर एक महंत राधा का यौन शोषण करने का प्रयास करता है। राधा उसकी मंशा को समझ जाती है और निर्भीक होकर उसका विरोध करती है।

अंगारा कहानी में कहानी में जमना के साथ बलात्कार होता है। जब वह अपनी जान बचाकर गाँव लौटती है तब उसका संघर्ष सबसे पहले समाज की उस मानसिकता से है जो बलात्कार की शिकार लड़की को ही अपमानित करती है। घर लौटने पर गाँव के लोग उसके दर्द को समझने के बजाय उसे 'छिनाल' कहकर उसके चरित्र पर प्रश्न उठाते हैं "घिसती रेंगती सत्रह वर्षीय जमना आज किसी तरह अपने पिता की चौखट पर पहुँच गई थी किन्तु उसे क्या पता था कि पिता की चौखट पर भी उसे इसी तरह अपमानित पीड़ित होना पड़ेगा। भीड़ में चेहरे स्पष्ट नजर नहीं आ रहे थे, पर लोगों के मुँह से निकले व्यंग्य बाणों की आवाज स्पष्ट आ रही थी। "छिनाल कैसी कूदती फिरती थी अपनी जवानी बताने को।" "पता नहीं किन–किन के साथ मुँह काला करके आई है?"[2] लेकिन किसी का ध्यान अपराधियों की ओर नहीं जाता। यह स्थिति उस सामाजिक सोच को उजागर करती है जहाँ स्त्री की अस्मिता से अधिक तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठा को महत्व दिया जाता है। जमना इस अपमान को सहते हुए भी टूटती नहीं, बल्कि अंततः अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए प्रतिरोध करती है। कुसुम मेघवाल की कहानियाँ दलित स्त्रियों के साथ होने वाली यौन हिंसा का यथार्थ प्रस्तुत करती है। यौन हिंसा भारतीय समाज की एक गंभीर सामाजिक समस्या है। यह केवल किसी स्त्री के शरीर पर किया गया हमला नहीं, बल्कि उसकी गरिमा, आत्मसम्मान और अस्तित्व पर भी प्रहार है। दलित स्त्रियों के संदर्भ में यौन हिंसा का स्वरूप और भी गंभीर हो जाता है, क्योंकि यहाँ यह हिंसा जातिगत प्रभुत्व और सामाजिक नियंत्रण का उपकरण बन जाती है। अनेक बार दलित स्त्रियों के साथ होने वाली यौन हिंसा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत शोषण नहीं होता, बल्कि पूरे दलित समुदाय को भयभीत करना और उसके आत्मसम्मान को चोट पहुँचाना भी होता है। सितम्बर 2020 में उत्तर प्रदेश के हाथरस में एक दलित किशोरी के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, जिसके पश्चात उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार अगस्त 2024 में बिहार के मुजफ्फरपुर में एक 14 वर्षीय दलित लड़की के साथ बलात्कार कर उसकी हत्या कर दी गई। बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों के आँकड़े गंभीर चिंताजनक रूप में सामने आए हैं। 'अखिल भारतीय स्तर पर वर्ष 2017 में दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के 2771 मामले दर्ज हुए, जिनमें 2104 पीड़ित महिलाएँ 18 वर्ष से अधिक आयु की थीं तथा 667 लड़कियाँ 18 वर्ष से कम आयु की थीं। वर्ष 2018 में यह संख्या बढ़कर 2957 हो गई, जिनमें 2086 स्त्रियाँ 18 वर्ष से अधिक आयु की तथा 871 लड़कियाँ 18 वर्ष से कम आयु की थीं।'[3]

ज्वालामुखी कहानी में दलित स्त्रियों को सार्वजनिक कुएँ से पानी नहीं भरने दिया जाता है। उनका संघर्ष समाज के उस वर्ग से है जो वर्णव्यवस्था में स्वयं को उच्च मानता है "राष्ट्रीय समाचार पत्रों में छपे अपने गाँव झाड़ेली के समाचार पढ़े तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। विभिन्न अखबारों में समाचार विभिन्न शीर्षकों से छपा था– 'आजादी के 60 वर्षों बाद भी पानी के लिए दलित महिलाएँ उच्च वर्णों पर आश्रित हैं।' 'राजस्थान में सामन्तवाद चरम सीमा पर' उसने उन समाचारों को बार–बार पढ़ा। कहीं यह व्यंग्य तो नहीं है, किन्तु उसका यह भ्रम गलत निकला। यह हकीकत थी।"[4] ज्वालामुखी कहानी में दलित महिलाओं को पानी भरने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। छुआछूत और जातिगत भेदभाव सदियों पुरानी सामाजिक परंपराओं का हिस्सा हैं। ज्वालामुखी इन परंपराओं का विरोध करती है और महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है "आओ, टाँके की सीढ़ियों पर चढ़ो और पानी भरो। जीने का जितना हक इन्हें हैं, उतना

ही तुम्हें भी है।"[5] आजादी को अस्सी साल होने वाले हैं लेकिन स्थितियों में बदलाव नहीं आया है। आज भी राजस्थान के गांवों में दलितों और सवर्णों के कुएँ, नल, हैडपंप अलग अलग होते हैं। दैनिक भास्कर में 25 अगस्त 2025 को 'राजस्थान के नीमच, पीपलियां गाँव में दलित स्त्री द्वारा हैडपंप से पानी भरने को लेकर हुए विवाद के कारण सवर्ण पुरुषों ने उसके साथ मारपीट की जिसके कारण वह बेहोश हो गई। पीड़िता के परिजनों ने पुलिस को शिकायत की।'[6] फेमिनिज्म इंडिया में 10 अगस्त 2023 को प्रकाशित खबर के अनुसार "2019 तक, राजस्थान के भीलवाड़ा तहसील के कनिया गांव में, जहां अनुसूचित जाति और जनजाति की अल्पसंख्यक आबादी रहती है (2011 की जनगणना के अनुसार), तीन कुएं थे, जो जातिगत आधार पर स्पष्ट रूप से विभाजित थे। इनमें से स्वच्छ और भरपूर पानी वाला कुआं उच्च जातियों (राजपूत, ब्राह्मण, जाट और मुस्लिम) के लिए आरक्षित था, जबकि अन्य दो मिट्टी से भरे हुए कुएं अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित थे, जो जल असमानता के शिकार थे। इसका मतलब यह था कि बाद की दोनों समुदायों की महिलाओं को पर्याप्त पानी मिलने के लिए मिट्टी से भरे कुओं के सामने 6–8 घंटे तक कतारों में इंतजार करना पड़ता था।"[7] वर्तमान में घटित इन घटनाओं से मालूम होता है कि पानी जैसे बुनियादी अधिकार से आज भी दलित स्त्रियों को समाज में संघर्ष करना पड़ता है।

मुखाग्नि कहानी में सुनन्दा और उसकी माँ का संघर्ष पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ परंपराओं के विरुद्ध सामाजिक प्रतिरोध के रूप में उभरकर सामने आता है। भारतीय समाज में मुखाग्नि और पिण्डदान का अधिकार परंपरागत रूप से केवल पुत्र को दिया जाता रहा है। इस कारण समाज में बेटी को श्मशान तक जाने और अंतिम संस्कार करने के अधिकार से भी वंचित रखा जाता है। कहानी इसी रूढ़ मान्यता को चुनौती देती है। परिवार और समाज के लोग सुनंदा को मुखाग्नि देने से मना करते हैं तब उसकी माँ कहती है "सुनन्दा ने अपनी माँ की बात को आगे बढ़ाया – "हाँ, मामा वें मुझे भी सीख देते रहते थे कि बेटे के लोभ में कहीं जनसंख्या मत बढ़ा लेना। जनसंख्या की वैसे ही कौन सी कमी है हमारे देश में। उन्होंने यही आदर्श समाज के सामने रखने के लिए मेरे होते ही ऑपरेशन करवा लिया था कि यदि कहीं दूसरा लड़का हो गया तो समाज मुखाग्नि और पिण्डदान का अधिकार उसे ही देगा। सदियों से चली आ रही यह परम्परा कैसे मिटेगी? यह सब सुनकर पहले तो सभी के तेवर चढ़ गए। सभी शान्त खड़े थे किन्तु अर्थी को कोई उठा नहीं रहा था। महेन्द्र बाबू की पत्नी ने पुनः समाज के सामने विनम्रतापूर्वक अपनी बात कही – "मैं हाथ जोड़ कर आप सभी से एक ही बात कहना चाहती हूँ कि यदि हम बेटे–बेटी में फर्क नहीं मानते तो लड़की को यह मुखाग्नि का अधिकार देने से क्यों कतराते हैं? आदर्शवाद की बात करना बहुत आसान है किन्तु उसे वास्तविक जीवन में जीना बहुत मुश्किल।"[8] सुनंदा और उसकी माँ दोनों सामाजिक रूढ़ि का विरोध करती है और मिखाग्नि देकर सदियों पुरानी सामाजिक परंपरा को तोड़ती है।

निष्कर्ष :

कुसुम मेघवाल की कहानियाँ यह स्थापित करती हैं कि दलित स्त्री का समाज से संघर्ष बहुआयामी है। उसे एक ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सामना करना पड़ता है, तो दूसरी ओर जाति–आधारित भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार, धार्मिक पाखंड, आर्थिक विषमता तथा यौन हिंसा जैसी समस्याओं से संघर्ष करना पड़ता है। राधा, जमना, सुनंदा तथा अन्य स्त्री पात्र अपने आत्मसम्मान, समान अधिकार और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। कहानियों में समाज की उन मान्यताओं पर तीखा प्रश्न उठाया गया है जो स्त्री की पहचान

को मातृत्व, पुत्र–प्राप्ति, जाति अथवा पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित कर देती हैं। साथ ही, दलित स्त्री के विरुद्ध होने वाली यौन हिंसा, सामाजिक अपमान और संसाधनों से वंचित किए जाने जैसी समस्याओं को लेखिका ने यथार्थपरक ढंग से चित्रित किया है। प्रस्तुत आँकड़े भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि दलित महिलाओं के विरुद्ध अपराध आज भी गंभीर सामाजिक चुनौती बने हुए हैं। समकालीन सामाजिक परिदृश्य तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के आँकड़ों के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया गया है कि दलित महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, यौन उत्पीड़न और सामाजिक भेदभाव आज भी गंभीर समस्या बने हुए हैं। इस प्रकार कुसुम मेघवाल की कहानियाँ दलित स्त्री के समाज से संघर्ष को केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं बनातीं, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन, न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना के वैचारिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ –

1. जुड़ते दायित्व– डॉ. कुसुम मेघवाल, पृष्ठ संख्या– 18, सिद्धार्थ प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण 1996
2. अंगारा– डॉ. कुसुम मेघवाल, पृष्ठ संख्या–7, मूलनिवासी प्रकाशन, संस्करण 2006
3. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2018–19 एवं 2019–20, पृ. 68–73
4. ज्वालामुखी– डॉ. कुसुम मेघवाल, पृष्ठ संख्या– 12, सूचि प्रकाशन, संस्करण– 2015
5. वही, पृष्ठ संख्या–16
6. दैनिक भास्कर, 28 अगस्त 2025– दलित महिला को हैडपंप से पानी भरने से रोका https://www.bhaskar.com/amp/local/mp/neemuch/news/dalit-woman-prevented-from-filling-water-from-hand-pump-135782284.html
7. दलित और आदिवासी महिलाओं के विरुद्ध संकट के समय में जल असमानता– ऊर्जा कौशिक, फेमिनिज्म इंडिया, 10 अगस्त, 2023 https://feminisminindia-com.translate.goog/2023/08/10/water-inequality-against-dalit-and-adivasi-wonen/?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc
8. किसके लिए– डॉ. कुसुम मेघवाल, पृष्ठ संख्या– 86, शिल्पी प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012

alkajiloya@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

पत्रकारिता का वर्तमान परिदृश्य

डॉ. पंडित बन्ने
डी.लिट्, अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल), तह. करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :

पत्रकारिता सूचनाओं का स्त्रोत है। पत्रकारिता संचार का माध्यम है। दिनभर घटित होने वाली सहस्त्रों घटनाओं को सुसंघटित रुप में प्रस्तुत करने की कला है। पत्रकारिता नई–नई जानकारियों के प्रति लोगों की उत्सुकता और उत्कंठाओं को शांत करने की विधा है। पत्रकारिता का स्वरुप गंभीर हो सकता है और मनोरंजनात्मक भी। पत्रकारिता का प्रयोग जनमत निर्माण और सूचनाओं के प्रचार के लिए किया जाता है। पत्रकारिता आम–आदमी की जिंदगी की तस्वीरों से लिखी कहानी है। 'हिंदुस्तान टाईम्स', 'टाईम्स ऑफ इंडिया', 'दैनिक जागरण' आदि अकबारों में प्रकाशित खबरों की आत्मा पत्रकारिता है। पत्रकारिता जनभाव की अभिव्यक्ति है। पत्रकारिता समाचारों की संप्रेषण है। खबरों की वाहक है। भारत में वेब पत्रकारिता को लगभग एक दशक बीत चुका है। लगभग सभी छोटे–बड़े समाचार पत्रों ने ई–पेपर, यानी इंटरनेट संस्करण निकाले हुए हैं।

बीज शब्द : पत्रकारिता, संचार, सूचना, आधुनिक, समाज, वर्तमान।

डॉ. शंकरदयाल शर्मा के अनुसार – 'पत्रकारिता पेशा नहीं है, जनता के सेवा का माध्यम है। म.गांधी जी के अनुसार – पत्रकारिता का उददे्श्य जनसेवा हैं। कुछ विद्वान पत्रकारिता को मिशन मानते हैं। वर्तमान में इसे एक व्यवसाय और आजीविका का साधन माना जाता है।

पत्रकारिता आज समाज की धडकन बन गई है। दैनिक समाचार से लेकर साप्ताहिक, मासिक, पाक्षिक, त्रैमासिक, द्विमासिक, वार्षिक पत्रिकाओं, प्रिंट मीड़िया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, इंटरनेट आदि में इसका विकसित स्वरुप देखा जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में – "अन्य लेखकों का सहयोग इस पत्र को प्राप्त था परंतु उनमें राधाचरण गोस्वामी सदानंद मिश्र का प्रतिभा का कोई न था। उनका पत्र तब के जन साहित्य का प्रतीक।"[1]

ईस्ट इंडिया कंपनी के एक मुलाजिम विलियम बोल्ट्स ने यह एलान किया – 'मेरे पास ऐसी बहुतत सारी बातें है जो मुझे कहना है और जिनका संबंध हर व्यक्ति से है।' तब वह भारत में आधुनिक पत्रकारिता की नींव रख रहा था। 29 जनवरी, 1780 में ईस्ट इंडिया कंपनी के ही दूसरे मुलाजिम जेम्स आगस्टस हिकी ने 'द.बंगाल गजट आर केलकटा जनरल एडवरटाइजर' नाम का साप्ताहिक समाचारपत्र प्रकाशित कर भारत में पत्रकारिता के सूत्रपात का श्रेय प्राप्त किया। 30 मई, 1826 में जब कोलकाता से युगल किशोर शुक्ल ने हिंदी का पहला

साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड़' प्रकाशित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भटट्, प्रतापनारायण मिश्र, मदनमोहन मालवीय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, श्यामसुंदर सेन, बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल चक्रवर्ती, प्रेमचंद, कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त, सुंदरलाल प्रभृति अनेक पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को संस्कारित किया। पुनर्जाकरण काल और भारत का स्वतंत्रता संग्राम इस बात का साक्षी है कि पत्रकारिता के माध्यम से समाज को युगांतकारी परिवर्तन के लिए जागरुक और उद्धत बनाया जा सकता है। 1878 में गर्वनर जनरल लार्ड लिटिन ने जब भारतीय भाषायी प्रेस पर अंकुश लगाने के लिए वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया, तब उसने बांगला, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं कई मुखर और प्रखर समाचारपत्रों के उद्धरण दिए थे। 'एक भारतीय आत्मा सुधीर पचौरी के अनुसार – "इन दिनों भारत के कोई उस अखबार, जिनमें पत्रिकाएँ शामिल है, अपनी–अपनी वेबसाइटें रखती है और कम्प्यूटर का बटन दबते ही इंटरनेट चौबीसों घंटे उपलब्ध है।"[2]

नई तकनीकी और प्रौद्योगिकी ने पत्र–पत्रिकाओं की साज–सज्जा, संप्रेषण, सुंदर मुद्रण को आकर्षक रुप दिया है। बाजार बढ़ा तो विज्ञापन भी बढ़ा है। मीडिया में एक वर्ग ऐसा पनपा है जो दृढ़ता और उदंदड़ता, स्वतंत्रता और स्वच्छंदता, बढ़ा और बडप्पन के बीच भेद नहीं कर पाता है। ध्येयवादी पत्रकारिता को इसलिए मिशन कहा जाता है क्योंकि उसके साथ लाभ और लोभ का कोई नाता नहीं था।

आजादी के संघर्ष के दौर में समाज को ज्ञानवान, सजग, जागरुक एवं गतिशील बनने में साहित्य और पत्रकारिता दोनों का बहुत भारी योगदान रहा है। साहित्यकारों और पत्रकारोंने अपनी लेखनी से स्वतंत्रता के संघर्ष को जनांदोलन का रुप दिया। साथ ही साथ सामाजिक जागरण एवं समाज सुधार को गति देने और पिछड़ापन, दकियानूसीपन, बनावटीपन, आपसी फूट के खिलाफ भी माहौल बनाया। साहित्यकारों और पत्रकारों ने विदेशी शासकों के खिलाफ जनमत बनाने के लिए जेल यात्रा ये भोगी, बलिदान दिए, त्याग किया। वह पत्रकारिता और साहित्य का संघर्ष–काल था। अपने आचरा से आदर्श पेश किया। देश के साहित्यकारों और पत्रकारों ने अपनी पैनी कलम से समस्त जनता को जागरुक किया। आजादी के पूर्व की पत्रकारिता हमारे जीवन, जनजीवन, संस्कारों, राष्ट्रीय चेतना के उदात्त मूल्यों तथा महान लक्ष्य के प्रति पूरे समर्पण से जुट जाने के उदात्त भावों से जुड़ी हुई थी। आजादी के बाद देश के नवनिर्माण एवं बहुमुखी विकास का दौर चला। विज्ञान और तकनीकी विकास से आर्थिक विकास अन्य क्षेत्रों के विकास में क्रांति आयी। तकनीकी क्रांति और सूचना क्रांति से व्यापक बदलाव आए। दूरदर्शन, आकाशवाणी, कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल, ई–मेल, वेबसाइट, ऑनलाईन आदि ने सारा ढांचा एवं कार्यशैली को बदल दिया। नई सोच, नई कार्य शैली और नई जीवनशैली से बहुत कुछ बदला। हिंदी पत्रकारिता भी उससे प्रभावित हुई। हिंदी पत्र–पत्रिकाओं और चौनल की संख्या प्रसार संख्या एवं दर्शकों की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई। आज देश के सारे समाचार–पत्रों का जायजा लिया जाए तो आंकडे बताते हैं कि सर्वोच्च प्रसार संख्या में हिंदी के अखबार सबसे ऊपर है। आजादी के आंदोलन का मुख्य माध्यम हिंदी थी।

नई आर्थिक क्रांति से अखबारों, टीवी चैनलों ,आकाशवाणी की भारी प्रगति हुई। उनकी संख्या बढ़ गयी। पाठक श्रोता, दर्शक भी बढ़ गए लेकिन आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण की होड ने पत्रकारिता को सूचना देने समाज को शिक्षित एवं राष्ट्र के प्रति जागरुक करने के उददे्श्यों को गौण कर दिया। ग्रामीण अंचल, ग्रामीण

समस्याएँ, न्याय दिलाने, शोषण–विषमता के खिलाफ संघर्ष पिछड़ गया। नव पूँजीवाद, पत्रकारिता पर भी हावी हो गया। "वेब पत्रकारिता के उद्य ने सूचना समाचारों को लोगों तक पहुँचाने के अनेक विकल्पों का सृजन किया है।"[3]

निष्कर्ष :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पत्रकारिता का विकास तीव्र गति से हुआ है। आज पत्रकारिता बहुआयामी बन गई है। हिंदी पत्रकारिता का संबंध सिर्फ खबरे देने से नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सहित्यिक मुद्दों को जन–जन तक पहुँचाने से है। लोकतंत्र में पत्रकारिता को चौथा स्तंभ माना जाता है। आज भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने नई–नई प्रेरणाएँ, परिकल्पनाएँ और दिशाएँ, देश, समाज और उसकी अभिव्यक्तियों को आंदोलित कर रही है। रेड़ियो, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट और पत्रकारिता के अत्याधुनिक तकनीकों से आज हिंदी जुड़ी है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास में भारत का महत्वपूर्ण योगदान है। आज ई–मेल, ई–बिझनेस, ई–बैंकिग, ई–गवर्नेस, ई–कॉमर्स, ई–केश, ई–चॅट आदि शब्द सुनते हैं। आज समाचार पत्र, पत्रिकाएँ हमारे लिए इंटरनेट पर उपलब्ध है। प्रशासन, व्यापार, न्याय, शिक्षा, विज्ञान, पत्रकारिता के रुप में जनसंपर्क की भाषा बनी है। वैश्वीकरण आधुनिक युग की माँग है। समाचार में सबसे अधिक लोकहित की भावना होती है। वर्तमान दौर संचार क्रांति का है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वार्तावाहक (पत्रिका) : सं.श्रीवत्स करशर्मा, अक्टूबर 2016, पृ.19, हिंदी शिक्षा समिति, ओड़िशा, कटक।
2. जनसंचार और पत्रकारिता विविध आयाम : डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, पृ. 242, निराली प्रकाशन पुणे, सं. 2012
3. वेब पत्रकारिता नया मीडिया नये रुझान : शालिनी जोशी, पृ. 7, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012

मो. 9834582128

Email –drpanditbanne@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

वर्तमान सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व एवं प्रासंगिकता

डॉ. राहुल प्रसाद
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)

भारतीय ज्ञान परंपरा भारत की वह महान विरासत है जो वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक सतत प्रवाहमान है। जिसमें दर्शन, ध्वन्यात्मक भाषा विज्ञान, अनुष्ठान, व्याकरण, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत के साथ–साथ विश्व बंधुत्व एवं विभिन्न मानव व मानवेत्तर कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना करके मानव जाति की उन्नति में अपना योगदान स्थापित किया है। वर्तमान समय में भी भारतीय ज्ञान परम्परा के वे महत्वपूर्ण सूत्र प्रासंगिक हैं जो केवल भारत ही नहीं अपितु समूचे विश्व को आलोकित कर रहे हैं। यदि भारतीय ज्ञान परंपरा की ऐतिहासिक विरासत का अध्ययन किया जाए तो हम देखते हैं कि यह अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, इहलोक और परलोक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, निष्ठा, कर्तव्यपरायणता अनुशासन, आत्मनिर्भरताऔर सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर बल देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। ऋग्वेद, छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद् के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों का सम्यक निर्वाह कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित हैं और आज भी प्रसांगिक बने हुए हैं।

हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली और ज्ञान परंपराएं मानवता को प्रोत्साहित करती थीं और उन्हें बल देती थीं। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के महत्वूपर्ण केन्द्र थे तथा यहां कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुखता से लिये जा सकते हैं। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व भर में भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रचार प्रसार किया है और साथ ही विश्व को भारतीय ज्ञान

परम्परा की महान विरासत से परिचित भी करवाया है।

भारतीय प्रज्ञा में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं। जिनमें सत्य बोलना भी अनिवार्य लक्षण के रूप में परिणत है। भारतीय ज्ञान परम्परा ने सत्य के मूल्य का हमेशा संरक्षण करने का प्रयास किया है। वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि राम को सदैव सत्यवादी कहते हैं। और अशोक वाटिका में बैठी सीता उन्हें सत्यसंगर कहती है। सत्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता श्रीराम अनेक स्थलों पर प्रकट करते हैं –

तद ब्रूहि वचनम देवि राज्ञों यदाभिकादिक्षतं।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विरनाभि षते।।

भारतीय मेधा की इस महान विरासत को तुलसीदास भी अपने महान काव्य में वर्णित करते है– 'सत्यसंध पालक श्रुति सेतु। राम जनमु जग मंगल हेतु।' धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना। – महात्मा गांधी द्वारा सदैव सत्य बोलने का निर्णय लिया जाना निश्चित रूप से भारतीय ज्ञान परम्परा को सहज रूप से स्वीकार करना है। वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय चिन्तन प्रारंभ से अन्य चिंतनों से भिन्न रहा है। भारतीय चिन्तन–दृष्टि वैदिक काल से ही समष्टिपरक एवं सर्वांगीण रही है। वैदिक ज्ञान एवं विज्ञान विनियोगपरक रहे हैं। यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि भले ही वैदिक वाङ्मय के वैज्ञानिक ग्रंथ प्रणालीबद्ध रूप में उपलब्ध न हो लेकिन नष्ट होने के उपरांत भी बचे ग्रंथों तथा विश्व भर में बिखरी सामग्री से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस वाङ्मय में अलग–अलग शास्त्रों के रूप में विज्ञान की अलग–अलग शाखाओं के ग्रंथ थे और कुछ अब भी हैं। भारतीय जीवन पद्धति के प्राचीनतम ज्ञानकोश–वेदों के विकास क्रम में चार वेदों के चार उपवेद आयुर्वेद अथर्ववेद गान्धर्ववेद तथा धनुर्वेद भी प्रकाश में आए जो भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीवविज्ञान के साथ–साथ वैमानिकी, चिकित्साशास्त्र, सैन्यविज्ञान, पर्यावरण, कृषिविज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान आदि विविध वैज्ञानिक विषयों से संबंधित हैं। वैदिक साहित्य में मनुष्य के स्वास्थ्य के संबंध में कुछेक ऐसी सूक्तियां हैं जो सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक सत्य (विश्वव्यापी सत्य) के रूप में स्वीकृत हो गयी हैं, यथा – सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सबके सब सुखी हों, सबके सब निरामय (निःआमय अर्थात् नीरोग) रहें। 2. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। धर्म–कर्म (भले कार्यों) का आदिम अर्थात् प्रथम साधन शरीर ही है। 3. धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं परम्। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का परम साधन शरीर ही है।

वास्तव में उर्पयुक्त सभी बातें भारतीय ज्ञान परम्परा एवं उसकी प्रासंगिकता को ही निद्रिष्ट करती हैं। भारत की महान परम्परा आरम्भिक काल से जनजीवन, पर्यावरण तथा प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़ी रही है। यही कारण है कि वेदों में वायु, जल, पेड़, पौधे, भूमि, सूर्य, आकाश आदि सभी पर्यावरण से जुड़े घटकों पर विशेष चिन्तन हुआ है। सम्पूर्ण जीवन पद्धति तथा व्यापक परिवेश की शुद्धता एवं पवित्रता को भारतीय मनीषियों ने ध्यान में रखा है।

भारत की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भौगोलिक स्थिति तथा इससे जुड़ा मौसम है जिसकी बहुविधता ने अनेक ऋतुओं में जनजीवन की विविधता, लोकाचार, जन्तुओं, अनेक प्रकार की फसलों, एवं वनस्पतियों को जन्म दिया और फलने फूलने का अवसर दिया। पर्यावरण का मूल आधार वातावरण है। अतः ऋग्वेद में वायु की शुद्धता, उसकी आरोग्यकारिता की अपेक्षा की गयी है। जल तथा अग्नि के माध्यम से अथवा सूर्यरश्मियों से जल का शोधन किया जाता था। एक मंत्र में वायु से कहा गया है – सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाआद्यामयच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। (हम याजक सविता देव की प्रेरणा से तेजस्वी सूर्य की रश्मियों से माध्यम से तुम्हें (वायु) को

शुध्द करते हैं। तुम तेज रूप हो, अमृत रूप हो, दिव्य आवास हो तथा किसी दबाब में न रहने वाले देवताओं के प्रिय, यज्ञ के साधन रूप हो।)

भारतीय चिंतन परंपरा सदैव वैज्ञानिक सोच पर आधारित रही है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के रहस्यों को जानने एवं समझने के लिए भावात्मक के साथ ज्ञानयुक्त और तार्किक चिंतन भी किया है, यही वैज्ञानिक सोच है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का कथन है कि, "ऋग्वेद के सूक्त इस अंश में के दार्शनिक हैं कि वे संसार के रहस्य की व्याख्या किसी अति मानवीय अंतर्दृष्टि अथवा असाधारण दैवीय प्रेरणा द्वारा नहीं, किंतु स्वतंत्र तर्क द्वारा करने का प्रयत्न है। (उपनिषदों का भी केंद्रीय विषय 'सत्य की खोज' रहा है। वृहदारण्य उपनिषद् में कहा गया है, 'असतो मा सद्गमय। तमसो का ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।" अर्थात् असत से सत की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।' भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रवाह की यह विशालता एवं व्यापकता पुराणों, महाकाव्यों, धर्मग्रंथों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत सम्पूर्ण लौकिक साहित्य और दार्शनिक चिंतन में परिव्याप्त है। इससे विशाल भारतीय बौद्धिक संपदा आज भी प्रभावी है। इस विचार संपदा में अध्यात्म के अतिरिक्त साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, भूविज्ञान, ज्योतिष, स्थापत्य, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद योग आदि भी सम्मिलित हैं।

ज्ञान मनुष्य में सोचने, विचार करने और जगत् के साथ अपने संबंधों को बनाने की दृष्टि विकसित करता है। यही दृष्टि संस्कृतियों और सभ्यताओं के विकास का आधार भी बनती है। विश्व में विभिन्न सभ्यताओं के बीच कई समानताओं के बावजूद जो कई विशिष्टिताएँ पाई जाती हैं तथा जो उन सभ्यताओं की विशेषताएँ कहलाती हैं, ज्ञान परंपरा का ही परिणाम होती हैं। उदाहरण के लिए, जीव और जगत् को तथा समूचे ब्रह्मांड को देखने की हमारी दृष्टि अन्य सभ्यताओं से भिन्न है। इसका मूल कारण हमारी ज्ञान परंपरा है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल साहित्य या दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, वह वास्तुशास्त्र, मूर्तिकला, शैलचित्र, चित्रकला, संगीत, नृत्य, वाद्ययंत्रों के रूप में हमें प्राप्त हुई है। सभी कलाएँ अपनी प्राचीनता और निरंतरता का अद्भुत उदाहरण हैं। किसी भी समाज के मानस में व्याप्त अंतर्निहित मूल्य एवं परंपराएँ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक आचरण का आधार होती हैं। यह आवश्यक नहीं कि पुस्तक पढ़कर ही ज्ञान प्राप्त किया जाए। भारतीय आचार्यों ने ऐसी व्यवस्था का विकास किया था, जिसमें समाज के सभी वर्गों में विकासोपयोगी व्यवहार स्वतः संचरित होता था। इस नीति के अंतर्गत ज्ञान को आस्था के साथ जोड़ा गया, ताकि समाज के ज्ञान संपन्न वर्ग की भाँति ही शास्त्रों से अनभिज्ञ वर्ग का आचरण सामाजिक हित का साधक हो सके। इसी लक्ष्य उन आस्थाओं का विकास हुआ, जिनमें नदियों माता, वृक्षों को देवता और पशु–पक्षियों को तो आदरणीय और पूजनीय माना गया।

इससे न तो नदियाँ अशुद्ध हुईं, न वृक्षों के कटान से पर्यावरण की समस्या का सामना करना पड़ा और न ही पशुपक्षियों की प्रजातियाँ समाप्त हुईं। किंतु आज की आधुनिक शिक्षा में, बिना इनके रहस्य को जाने समझे बिना ही इन्हें अंधविश्वास बताकर त्याज्य घोषित कर दिया गया। परिणामतः नित्य प्रति प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। पर्यावरण की समस्या नित्य ही बढ़ती जा रही है और इस आपदा से निकलने का रास्ता सारी दुनिया ढूँढ़ रही है, किंतु रास्ता कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा। इसका एकमात्र कारण है कि मानव समाज ने अपने अहंकार में प्रकृति को अपना अधीन बनाने की कोशिश की और वह भूल गया कि वह प्रकृति का अंग मात्र है, जिस दिन अत्याचारों और अतिक्रमण की अति हो जाएगी, (जो कि हो भी रही है) उस दिन प्रकृति मनुष्य के अहंकार को पूर्णतः समाप्त कर देगी और मनुष्य कुछ नहीं कर पाएगा। हाल ही में विभिन्न राज्यों

में आई प्राकृतिक आपदाएँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। भारतीय परंपरा में इस बात के प्रति सजगता भी थी और सचेष्टता भी। इसी कारण शांतिपाठ में धुलोक से लेकर मर्त्यलोक के प्राणियों तक सबकी शांति की प्रार्थना की जाती थी –

''द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। यजुर्वेद अर्थात्युलोक (आकाश) शान्तिमय हो, अन्तरिक्ष शान्तिमय हो, पृथ्वी शान्तिमय हो, जल शान्तिमय हो, औषधियाँ शान्तिमय हों, वनस्पति शान्तिमय हों, विश्वेदेव (समस्त देवता) शान्तिमय हों, ब्रह्म शान्तिमय हो, सबकुछ शान्तिमय हो, शांति (भी) शान्तिमय हो (और) वह शांति मुझे प्राप्त हो।

वास्तव में भारतीय ज्ञान परम्परा का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित भारतीय संस्कृति जीवन जीने की एक श्रेष्ठ कला है। इसमें वह सब समाहित है, जो परम्परानुसार पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमें उत्तराधिकार में हमें मिला है। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और योग– विज्ञान सभी भारतीय संस्कृति के अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इसके साथ संस्कृति में रीति–रिवाज, परंपराएँ, विभिन्न पर्व, जीवन की विविध शैलियाँ और अनेक पक्ष भी सम्मिलित हैं। इसमें सभी भौतिक और अभौतिक चीजें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान की जाती हैं। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। आज हम जिन प्रथाओं, परम्पराओं, मान्यताओं, विश्वासों और रीति–रिवाजों का पालन करते हैं, वह सब हजारों साल से चली आ रही हमारी श्भारतीय ज्ञान परंपराश पर ही आधारित हैं। भारतीय संस्कृति का मूल भारतीय ज्ञान परंपरा ही रही है तथा भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार वेद हैं। स्मृतिकार ने भी कहा है – 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' तथा 'वेदाधर्मो हि निर्बभौ।' भौतिकतावाद की इस अंधी दौड़ में विश्व में मनुष्य बहुत ही अशांत है। यही वजह है कि वर्तमान में हिंसा, वैमनस्य, आपसी मत–भेद, आतंकवाद, देशों का आपसी टकराव और अशांति का वातावरण निरन्तर बढ़ा है। ऐसे समय में विश्व को भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित भारतीय संस्कृति के वैश्विक मूल्यों को अपनाने की प्रबल आवश्यकता है।

संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में जोड़नेवाली भारतीय ज्ञान परंपरा में माना गया है कि – अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम्। उदार चरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्।। अर्थात् भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार, यह उसका है, यह मेरा है, इस तरह की दृष्टि संकुचित मानी गई है। और कहा गया है कि उदार चरित रखनेवाले लोगों के लिए तो यह संपूर्ण धरती एक परिवार ही है। भारतीय संस्कृति में न केवल भारतीयों के लिए, अपितु पृथ्वी पर रहनेवाले समस्त प्राणियों के हितसाधन हेतु मंगल कामना की गई है – ऊँ सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्। अर्थात् विश्व के सभी लोग सुखी रहें, निरोगी रहें, सभी का जीवन मंगलमय रहे और कोई भी दुःख का भागी न बने। विश्व में शांति की स्थापना हो भारत देश विभिन्न विचारों और विचारधाराओं का संगम है। ज्ञान, भक्ति कर्मों और भावनाओं से समृद्ध यह एक बहुत विशाल और संस्कृतिपरक देश है। यह भारतीय संस्कृति की व्यापक सोच ही है कि जहाँ कहीं से भी ज्ञान को ग्रहण किया जा सकता है, उसे आत्मसात् कर भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपनी परंपरा में जोड़ लिया जाता है। इस विषय में ऋग्वैदिक ऋषि कहता है– 'आ नो भद्राः क्रतवों यंतु विश्वतः' अर्थात् विश्व के सभी कल्याणकारी विचार हमारी ओर आकर्षित हों। संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे, सञ्जानाना उपासते।।" "साथ चलने, एक स्वर में बोलने और एक दूसरे के मन को जानने वाला समाज ही अपने युग को

बेहतर बनाने की सामर्थ्य से युक्त हो सकता है और ऐसे युग में जीने वाले स्वयं के लिए बेहतर वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए बेहतर भविष्य की संकल्पना करने वाले होते हैं।" ऋग्वेद का यह मन्त्र हमें ऐसी ही सनातन और दूरगामी दृष्टि को प्रदान करने वाला है।

हमारी संस्कृति और सनातन परंपरा अपने प्रचार–प्रसार के लिए कभी भी आक्रमण, युद्ध या कोई अनुचित साधनों में विश्वास नहीं करती है। विश्व–शांति का संदेश हमारी ज्ञान परंपरा का मूल रहा है। इस ज्ञान परंपरा के अंतर्गत समानता, करुणा विश्व बंधुत्व और प्रबुद्धता का संदेश सदैव ही समाहित रहा है। यहीं कारण है कि भारतीय संस्कृति और ज्ञान की यह अविरल धारा अविरल गति से दीर्घायु और निरंतरता लिये हुए है। अनेकता में एकता, विश्व–कल्याण की कामना, सहनशीलता, अध्यात्म और भौतिकवाद का मिलन हमारी ज्ञानपरंपरा को वैश्विक परिदृश्य प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान की यह महान संवादधर्मी परंपरा आधुनिक युग में भी सतत प्रवाहमान है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने अनेक भारतीय विद्वानों से संवाद किए। उन्हें वेदों के सच्चे ज्ञान पर पूरा भरोसा था। 1863 ई. में झूठे धर्मों का खंडन कर उन्होंने 'पाखंड खंडिनी पताका' लहराई। इनसे पूर्व राजा राममोहन राय ने ईसाई पादरियों के विरुद्ध हिंदू धर्म, ज्ञान और संस्कृति की रक्षा की। स्वामी विवेकानंद, जिन्होंने 1893 ई. में शिकागो में हुई धर्मों की संसद् में भाग लिया और अपनी विद्वतापूर्ण विवेचना द्वारा सबको प्रभावित किया। वस्तुतः मनीषियों द्वारा भारतीय ज्ञान परम्परा को जन–जन तक पहुंचाने का कार्य किया जाना तभी सम्भव हो पाया जब भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवीय मूल्यों के साथ साथ विश्व कल्याणकारी भावनाओं का प्राबल्य रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा विभिन्न अनुशासनों में इतनी विपुल और समृद्ध है कि अगर हम इसका गहन अध्ययन करें तो हममें स्वतः ही अपनी सभ्यता–संस्कृति के ज्ञानकोश के प्रति गौरव की भावना भर आएगी। भारत में जिस समय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मूल्य दृष्टि का सृजन हो रहा था, उस वक्त विश्व के अन्य देश क्या कर रहे थे? जब विश्व के अन्य महादेशों में अँधकार था, तब भारत विश्व को अपने ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित कर रहा था।

सामवेद, यजुर्वेद, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, चरक संहिता, रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि अपने आप में ज्ञान का समृद्ध सागर हैं। औपनिवेशिक दौर में भारतवासियों में गौरव की भावना जगाने के लिए फिर से भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों की ओर लौटने की बात कही गई। स्वामी दयानंद सरस्वती का 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान इसका उदाहरण है। औपनिवेशिक दौर का पूरा समय भारतीय संस्कृति और उसकी ज्ञान परंपरा तथा यूरोपीय संस्कृति और उसकी ज्ञान परंपरा के संघर्ष का समय है।

हम निरन्तर अनुभव कर रहे हैं कि भारतीय ज्ञान, परंपरा एवं समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का विश्व में एक उच्च स्थान प्राप्त है क्योंकि भारत की संस्कृति उसकी परंपरा सदियों से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है क्योंकि भारतवर्ष जैसे बहु संस्कृति वाले देश में अनेकता में एकता का पाठ पढ़ाया एवं सिखाया जाता है और सभी को अपनी अपनी संस्कृति में रहते हुए एकता की भावना को विकसित किया जाता है। जो दुनिया के सभी देशों के लिए सदैव एक आकर्षण का केंद्र बना रहा है। भारतीय ज्ञान की वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा विश्व के समस्त देशों में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। जो अपनी विविधता, सहिष्णुता, आपसी समझ, धैर्य, शांतिपूर्ण जीवन एवं सह अस्तित्व के लिया विश्व में ख्याति प्राप्त किये हुए है। आज यूरोपीय राष्ट्रों और अमेरिका में योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, शाकाहार, यूनानी, होम्योपैथी जैसे उपचार लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं जो भारतीय ज्ञान परंपरा एवं स्वदेशी ज्ञान को वैश्विक स्तर पर एक उच्च स्थान प्रदान करता है। भारतीयों को अपनी जड़ी–बूटियों, नीम, दातून, हल्दी एवं गोमूत्र का ख्याल तब आया जब अमेरिका जैसे देशों

ने इन सब को पेटेंट करवा लिया है। हम सबने योग को उपेक्षित समझकर छोड़ दिया वही योग जब योगा बन दुनिया में सबके सामने आया तो पूरा विश्वय योग के महत्व को समझने लगा। भारत अपने ज्ञान एवं परंपरा के माध्यम से भाव, राग और ताल से स्पंदन उत्पन्न करके सम्पूर्ण विश्व को मानवता, भाईचारा और संवेदना का पारिवारिक संदेश देना चाहता है, अपनी जीवंत अमूर्त विरासत जो इसकी वैश्विक सभ्यता की विरासत है इस विरासत के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों, समाजों एवं संस्कृतियों के मध्य संस्कृति एवं सभ्यता का एक संवाद बनाने के प्रक्रिया आरंभ होती है। भारतीय ज्ञान एवं परंपरा में न केवल विश्वशक्ति बनने की क्षमता है बल्कि विश्व को भोगवाद के राक्षस से बचाने की भी क्षमता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में नैतिकता का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया गया है। जिसमें जीवन के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया गया है। इसके लिए पुरुषार्थ व्यवस्था का विधान किया गया है। पुरुषार्थ का परिपालन जीवन को एकांगी होने से बचाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन की पूर्ण स्वीकृति की उपज हैं। मनुष्य जीवन के समस्त सांसारिक सुखों को धन से ही प्राप्त कर सकता है, अतः अर्थ का अर्जन करने के लिए मनुष्य को भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। किंतु अर्थ का अर्जन और काम का परितोष दोनों धर्म की परिधि में होने चाहिए। महाभारत में कहा गया है– धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते। और यह भी कहा गया कि विद्वान् व्यक्ति समयानुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे। धर्महीन अर्थार्जन मनुष्य को उन्मत्त करता है और धर्महीन अर्थभोग उसे स्वैराचारी बनाता है। दोनों अनुचित हैं। अर्थ का धर्मपूर्वक उत्पादन करके उसका काम की धर्मपूर्ण तुष्टि के लिए उपयोग होना चाहिए। ऐसा होने से कामनाएँ–वासनाएँ तृप्त होती हैं और मोक्ष की सहज में ही उपलब्धि हो जाती है। पुरुषार्थ रचना एक सर्वांग परिपूर्ण मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है, जो व्यक्ति को उत्तरोत्तर संसार से असंसार की ओर ले जाकर उसे परम पद प्रदान करती है। यही कारण है कि हमारी ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ व्यवस्था भी नैतिक मूल्यों की संरचना की जन्मदात्री है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा उन सभी सनातन मूल्यों की संवाहक है जो केवल भारत को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को महामानव के रूप में स्थापित कर सकती है। भारतीय संस्कृति के अनुकरण से मानव इहलोक एवं पारलौकिक दोनों सुखों को प्राप्त कर सकता है। यह भारतीय ज्ञान परम्परा एवं भारतीय संस्कृति का ही अप्रतिम प्रभाव है कि भारत द्वारा जी ट्वेंटी की अध्यक्षता के अवसर पर इंग्लैंड जैसे महाशक्तिशाली देश के प्रधानमंत्री भारतीय परिधान में भारत के मंदिरों का भ्रमण करते हैं और स्वयं को गौरवान्वित अनुभव भी करते हैं। अंततः किसी भी देश की महानता उसके जीवन मूल्यों एवं समाज को दिए उसके संदेशों से होती है। जो कि भारतीय संस्कृति ने सदैव ही किया है। यही कारण है कि आज भी भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व एवं उसकी प्रासंगिकता नित्य प्रति बलवती होती जा रही है। यह हमें ज्ञान का एक विशाल भंडार प्रदान करती है जिसका उपयोग लोगों, विविध समाजों, प्राणिमात्र को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। अब समय है भारत के द्वारा विश्व को दिए गए ज्ञान को संजो कर इसका सरंक्षण एवं संवर्धन किया जाए और भारतवर्ष की जनता को संस्कृति, सभ्यता एवं महान विरासत से जोड़ा जाए। तब ही इसकी उपादेयता सिध्द होगी। अब यह हम सभी का यह भी नैतिक दायित्व बनता है कि भारत वर्ष की इस अनमोल धरोहर, ज्ञान को संवर्धित करके रखे जिससे कि विश्व का कल्याण हो सके और आने वाली पीढ़ी भारत को हीन दृष्टि से न देख कर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे और भारतवर्ष के अतीत और उसके वर्तमान पर गर्व कर सके।

संदर्भ :

- वाल्मीकि रामायण –2–18–30
- रामचरितमानस, तुलसीदास 2–94–5
- बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.14
- कुमारसम्भवम्, कालिदास, पंचम सर्ग, श्लोक 33
- यजु0 1/12/31
- भारतीय दर्शन, भाग –1, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पृ. सं. 55
- यजुर्वेद, अध्याय 36, मन्त्र 17।
- महाउपनिषद्, अध्याय 6, मन्त्र 71।
- बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.14
- ऋग्वेद 10.191.2

ईमेल– rahul@jdm.du.ac.in

सम्पर्क– 8368048147

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम

अनुराधा
(पी. एच. डी. हिन्दी, नेट), शोध छात्रा
डी. ए. वी. कॉलेज कानपुर – 208001

भूमिका :–

लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति का जीवंत प्रतिबिंब रहा है जो जनमानस की भावनाओं, रीति–रिवाजों, तीजदृत्योहारों, आस्थाओं और परंपराओं को लोकगीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यह मौखिक परंपराओं पर आधारित है। जो परंपरा, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों को जीवंत रखता है। यह सब विविधता में एकता को दिखाते हुए प्रकृति, विश्वास, लोक कला और सामूहिक ज्ञान के माध्यम से भारतीय जीवन शैली की सहज अभिव्यक्ति करता है। भारतीय संस्कृति में लोक साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा है अर्थात लोक साहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है, जितना कि मनुष्य उसमें अपने जीवन के प्रत्येक अवस्था प्रत्येक वर्ग प्रत्येक समय सब समाहित हो। लोक साहित्य आम जनता से सम्बन्धित होता है। क्योंकि सामान्य जीवन विशिष्ट जीवन से अलग होता है।

शोध पत्र :–

डॉ नीलम सोनी भारतीय संस्कृति एवं लोक साहित्य कानपुर से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक है। अर्थात हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति एवं लोक साहित्य का अटूट संबंध रहा है। यह एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। बिना लोक साहित्य के समाज की कल्पना कर पाना असंभव है।

प्रस्तुत शोध पत्र लोक "साहित्य में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम" विषय पर केंद्रित है। शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम के बारे में अवगत कराना है।

लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं जिसका विवरण इस प्रकार है :

1. **धार्मिक और आध्यात्मिक आस्था :** लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति का एक अलग ही प्रभाव देखने को मिलता है, जो धार्मिकता और आध्यात्मिकता में अपना पूर्ण योगदान देता है। लोक साहित्य में लोक कथाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान देखा गया है। व्यापकता एवं प्रचुरता के कारण इनका मूल्य बहुत अधिक समझा जाता है। इसमें धर्म से जुड़ी हुई लोक कथाएं सुनने को मिलती है। जो हम निश्चित रूप से रूढ़ियों और शैलियों में डाली हुई दादा–दादी, नाना–नानी की कहानियों का समूह है, जिसे हम बचपन से ही सुनते आ रहे हैं। इनका निर्माण कब, कहां, कैसे हुआ, यह बताना कठिन है लेकिन हमारा यह कहना सही होगा कि इन धार्मिक एवं आध्यात्मिक लोक कथाओं का जन्म मानव जन्म के साथ ही हुआ। इसलिए यह विधा सबसे प्राचीन मानी जाती

है। अर्थात लोकमानस से जुड़ी और लोक परंपराओं में मौखिक रूप से कहीं जाने वाली कथा ही लोक कथा कही जाती है। इसमें भजन, कीर्तन, देवी–देवताओं की स्तुति जागरण व्रत आदि होता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही कथाएं जनजीवन का प्रमुख अंग रही है। जिसका प्रवाह वर्तमान में भी हो रहा है। लोककथाएं लोक मानस के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विश्वास की पूर्ण अभिव्यंजना करती है। यह मानवीय संवेदना से जुड़कर लोक चेतना को सहज एवं सार्थक बनती है। प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन की दृष्टि से इसे निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। जैसे उपदेश कथा, व्रत कथा परीकथा, नाग कथाएं, प्रेम प्रधान कथाएं। इसमें टोन टोटका आदि के बारे में भी बताया गया है।

2. **तीज त्यौहार ऋतु चक्र :** लोक साहित्य की भारतीय संस्कृति में मानव मूल्यों का समावेश अपनी संपूर्णता में है। इसमें तीज त्यौहार एवं संस्कारों को संवेदनाओं से जोड़ा गया है। लोक साहित्य में इसे लोकगीतों के माध्यम से गया जाता है। लोकगीत हमें सामूहिक प्रसन्नता का अवसर देते हैं। लोकगीतों में जीवन के प्रति गहन आ सकती एवं भाव निहित होते हैं जीवन से पलायन न करके जीवन को संघर्षों के बीच ही उल्लास की तलाश, होली, दिवाली, सावन के गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

लोक साहित्य में तीज त्योहारों के साथ ऋतु चक्र के बारे में भी बताया गया है। इसमें चारों ऋतुओं का प्रकृति से सामंजस्य स्थापित किया गया है, जिसे लोकगीतों के माध्यम से गया जाता है।

3. **संस्कार एवं परंपराएं :** लोक साहित्य की भारतीय संस्कृति, सामाजिक संस्कारों का जीवंत दस्तावेज माना गया है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से बताया जाता है। लोकगीत, कथाओं, कहावतें और मुहावरों के माध्यम से जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों (जैसे विवाह जन्म मुंडन) ऋतुओं, तीज–त्योहारों, लोक विश्वासों और नैतिक मूल्यों की सहज अभिव्यक्ति करता है। जो कि भारतीय समाज के सामूहिक मन को दिखाता है।

सामाजिक संस्कारों में जन्म, नामकरण, मुंडन, यज्ञोपवीत और विशेष रूप से जुड़े विवाह संस्कार लोक साहित्य के अंग है, जो भारतीय संस्कृति को उजागर करते हैं। इसमें परम्पराएं एवं रीति–रिवाज हमारी वेशभूषा, सामाजिक मर्यादा, खान–पान, लोक गाथाओं, और गीतों में स्थानीय परंपराओं का सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

4. **लोक गाथाएं एवं महाकाव्य :** भारतीय लोक साहित्य, भारतीय संस्कृति की एक जीवंत आत्मा है जो मौखिक परंपरा, लोक कथाओं और गाथाओं के द्वारा वीडियो से नैतिक मूल्यों, विश्वासों और सामाजिक परंपराओं को बनाए हुए हैं। यह लोक जीवन, लोक गीत, लोक नृत्य और पौराणिक संदर्भों का एक मिश्रण है। जो जनमानस की आशा, निराशा और आस्था को दृष्टिगत करता है। भारतीय संस्कृति में लोक कथाओं और महाकाव्य का उल्लेख किस प्रकार किया गया है।

- **पंचतंत्र और जातक कथाएं :** पंचतंत्र एवं जातक कथाएं नीति कथाओं का एक उत्तम उदाहरण है। जिसमें पशु पक्षियों के माध्यम से व्यावहारिक ज्ञान और जीवन के मूल्य सिखाए गए हैं।
- **क्षेत्रीय लोक कथाएं :** भारत के विभिन्न राज्यों में प्रचलित क्षेत्रीय लोक कथाएं जैसे बंगाली लोक कथाएं राजस्थानी कथाएं जो वीर रस और प्रेम कहानियों से भरपूर है।
- **पौराणिक एवं दंत कथाएं :** पौराणिक एवं दंत कथाओं में राक्षस, परी, भूत–प्रेत और स्थानीय देवी–देवताओं से जुड़ी कथाएं होती हैं जो जनजीवन से जुड़ी हुई होती है।

भारतीय महाकाव्य (लोक गाथाएं)

- **रामायण और महाभारत :-** रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति का मूल स्तंभ है जो मानवीय मूल्य एवं लोक स्तर पर रामलीला और विभिन्न गीतों के रूप में मिलता है।
- **मौखिक महाकाव्य :-** मौखिक महाकाव्य केरल में प्रचलित पाबूजी की फड़, ओडियन और तेलु भाषा का सिरी महाकाव्य जो अहम है।
- **वीर गाथाएं :-** पृथ्वीराज रासो आला–ऊदल की गाथाएं जो बहादुरी और गौरवशाली इतिहास को याद दिलाती है।

लोक साहित्य में हम कह सकते हैं की रीतियां, परंपराएं, व्रत, त्योहार और सामाजिक–संस्कृति मान्यताओं की झलक हमें दिखाई देती है। एक समुदाय की विशिष्ट पहचान एवं समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को दर्शाती है।

5. भारतीय संस्कृति में कला और संगीत :- लोक साहित्य को भारतीय संस्कृति की आत्मा कहा जाता है जिसमें कला एवं संगीत का अटूट संबंध है। लोकगीत, लोक नृत्य और लोक कथाएं ग्रामीण परिवेश ऋतुओं संस्कारों और धर्म की सुर–ताल के साथ सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। जो रामायण, महाभारत जैसी कथाएं, लोक गाथाएं और विवाह जन्म के गीत, लोक संगीत के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी भारतीय संस्कृति को संरक्षित करते हैं।

भारतीय लोक संगीत में भारत की आत्मा बसती है जिसमें प्रकृति, दैनिक जीवन एवं पर्वों की संवेदनाओं का वर्णन किया जाता है। लोकगीतों में सामान्य मानवीय सुख–दुख की अभिव्यक्ति होती है जो और ले और लाल के साथ ग्रामीण संस्कृति को दर्शाते हैं। अर्थात लोक साहित्य में लोक नृत्य और वाद्य यंत्रों का उपयोग होता है जो सांस्कृतिक कला की जीवंतता का प्रतीक है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत शोध पत्र में लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयाम का उल्लेख किया गया है जिसमें धर्म एवं अध्यात्म के प्रति आस्था, तेज–त्यौहार, व ऋतु चक्र, सामाजिक परम्पराएं, लोक गाथाएं महाकाव्य कला और संगीत के बारे में बताया गया है। इसमें भारतीय संस्कृति में विविधता में एकता को बढ़ावा दिया गया है। लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विविध आयामों का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि ये सभी एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

- शोध पत्र– डॉ नीलम सोनी, भारतीय संस्कृति एवं लोक साहित्य कानपुर।
- अनुपम कुमार, लोक साहित्य के विविध आयाम, के० के० कॉलेज, इटावा, उत्तर प्रदेश।
- www.google.com

संपर्क सूत्र 7027297767

Email id : rajputanjali306@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Representation of Disability in Hindi Cinema : From Punitive Bodies to Negotiated Difference

Kanupriya
Reaserch Scholar
Department of English, Jamia Millia Islamia, New Delhi.

Abstract :

Hindi cinema has been one of the most influential cultural institutions through which Indian audiences have encountered, interpreted and emotionally negotiated bodily difference. Yet disability on the Hindi screen has rarely been represented simply as an ordinary dimension of human diversity. More often, the disabled body has been made to carry a moral, emotional, narrative or symbolic burden: it may punish a wrongdoer, generate pity, intensify the heroism of an able-bodied character, signify a temporary disturbance of social equilibrium, or mark a character as eccentric and socially maladjusted. This paper examines these representational patterns by placing Joyojeet Pal's extensive study of physical disability in Indian cinema at the centre of the analysis, while bringing it into dialogue with disability studies, gender studies and more recent scholarship on Bollywood. Pal's survey of more than two hundred Indian films identifies four recurring formations—disability as punitive, dependence, disequilibrium and maladjustment—and traces their cultural genealogy to sources including the Ramayana, Mahabharata and Upanishadic traditions. The paper argues that Hindi cinema has gradually moved from overtly moralistic and charitable representations towards more complex narratives of agency, education, labour, sexuality, selfhood and rights; nevertheless, ableist assumptions remain deeply embedded in the grammar of mainstream storytelling. Films such as Dosti, Koshish, Sparsh, Sadma, Iqbal, Black, Taare Zameen Par, My Name Is Khan, Guzaarish, Margarita with a Straw, Barfi!, Andhadhun, Srikanth and other contemporary texts demonstrate both continuity and transformation. The paper concludes that representational progress should not be measured merely by the presence of disabled characters, but by whether cinema permits disabled subjects to possess narrative agency without requiring cure, heroic exceptionalism, pity or the moral redemption of non-

disabled characters.

Keywords :

Disability; Hindi cinema; Bollywood; ableism; representation; visual culture; disability studies; gender; body; narrative.

1. Introduction :

Cinema does not merely reproduce social reality; it participates in producing the categories through which social reality becomes intelligible. In India, where commercial cinema reaches audiences across class, linguistic and geographical boundaries, the representation of disability assumes particular significance. The cinematic body is never a neutral body. It is photographed, edited, framed, sexualised, infantilised, celebrated, mocked or disciplined according to culturally available ideas of what a desirable and socially valuable body should look and behave like. Consequently, the question of how Hindi cinema represents disability is also a question about normality, citizenship, gender, family, labour, sexuality and social belonging.

The uploaded study by Joyojeet Pal, "Physical Disability and Indian Cinema," is particularly important because it moves beyond isolated readings of a few famous films. Pal examines more than two hundred Indian films from the mid-twentieth century into the early twenty-first century and proposes a broad typology of disability representation. His four categories—disability as punitive, disability as dependence, disability as disequilibrium and disability as social maladjustment—provide a powerful framework for understanding the recurrent narrative work performed by disability on screen. Pal also cautions that cinematic representations are culturally embedded: some stereotypes familiar from Western cinema have specifically Indian genealogies in mythology, epic literature and social practice.

This paper adopts Pal's framework but extends it in two directions. First, it asks what happens when disability is analysed through the social rather than exclusively medical model: that is, when barriers, stigma, inaccessible institutions and cultural expectations are treated as disabling forces rather than disability being reduced to bodily impairment. Second, it examines the gendered and intersectional character of representation. A disabled woman and a disabled man are not positioned identically by Hindi cinema; nor are disability, class, caste, religion, age and sexuality independent categories. Contemporary films have undoubtedly widened the representational field, but they frequently retain the assumption that a disabled subject must either overcome disability, become inspirational, or serve as a moral lesson for the non-disabled audience.

2. Conceptual Framework: Disability, Representation and the Cinematic Gaze :

Disability studies has challenged the assumption that disability is primarily an individual medical defect. The social model distinguishes impairment from the disabling barriers produced by institutions,

environments and social attitudes. In this perspective, a person may have an impairment, but disability is intensified by inaccessible buildings, discriminatory employment practices, exclusionary education, communication barriers and cultural prejudices. This distinction is indispensable for cinema because films frequently transform a social problem into an individualised bodily tragedy. The viewer is invited to feel sympathy for a character rather than to question the social arrangements that produce exclusion. David Mitchell and Sharon Snyder's concept of "narrative prosthesis" is also useful here. Disability often becomes a device through which stories acquire conflict, metaphor or emotional intensity. The disabled body can therefore function less as a lived identity than as a narrative instrument. In mainstream Hindi cinema, blindness, deafness, paralysis, intellectual disability and other forms of difference have repeatedly been used to motivate romance, revenge, family melodrama, comic misunderstanding, heroism or redemption. This does not mean that every such film is necessarily prejudicial; rather, it requires us to ask whether disability is allowed to exist as an ordinary condition of life or is required to perform a special narrative function.

Pal's intervention is especially valuable because he connects these cinematic conventions to Indian cultural histories. His argument does not claim that Hindu epics mechanically determine modern film narratives. Instead, he demonstrates that cultural repertoires make certain ways of imagining disability available and intelligible. Figures such as Gandhari, Dhritarashtra, Ashtavakra, Shakuni and Manthara contribute to a long history in which bodily difference may signify virtue, sin, punishment, abnormality, moral consequence or social otherness. Hindi cinema modernises these ideas but does not always abandon them.

3. Disability as Punitive: The Body as Moral Retribution :

One of Pal's most striking categories is disability as punishment. Here disability is not simply an impairment; it is a sentence imposed on the body. The cinematic logic is straightforward: a wrongdoer deserves to lose bodily capacity, and bodily suffering becomes a visible substitute for moral justice. Pal's discussion of Sholay is exemplary. Thakur, whose arms have been amputated by Gabbar, eventually retaliates against the villain by disabling his arms. The body becomes the site on which justice is enacted. The significance of the trope lies in the implication that life with disability is an appropriate punishment, a fate worse than death.

The punitive logic also appears in narratives where a character's disability is presented as the consequence of earlier moral failure. Pal traces this representational tendency through culturally familiar narratives in which bodily affliction is associated with sin, curse, repentance or karmic consequence. Such representations are problematic because they position disability within a moral economy of deservingness. The disabled person is implicitly asked: what did you do to deserve this? Even when the film eventually generates sympathy, the underlying association between disability and

punishment may remain intact.

The persistence of this trope matters because it influences everyday social imagination. If disability is repeatedly shown as punishment, viewers may unconsciously understand disabled bodies through pity, fear or moral distance. The social model of disability reverses this logic: the question should not be why an individual deserves impairment, but how social institutions respond to bodily difference. The cinematic challenge, therefore, is to represent disability without turning it into a moral verdict.

4. Disability as Dependence: Pity, Charity and the Family :

A second major formation is disability as dependence. In this narrative, the disabled person is constructed as unable to live, work, love or participate without assistance from an able-bodied individual. Pal's reading of Dosti (1964) is particularly significant. The friendship between the blind Mohan and physically disabled Ramu is one of the memorable examples of disability-centred storytelling in mainstream Hindi cinema. Both boys experience poverty, humiliation and social exclusion, and their friendship becomes a source of survival. Yet the film also differentiates their futures according to the type of impairment: the boy who can see is imagined as having greater educational and occupational possibilities, while blindness becomes associated with deeper dependence and social vulnerability.

Koshish (1972), directed by Gulzar, marks another crucial moment. Its deaf protagonists are given considerable narrative space and the film introduces audiences to sign communication, work and independent living. This makes it an important departure from purely marginal or comic representation. At the same time, Pal identifies troubling moments in the film, especially the anxiety surrounding whether the couple's child can hear and the climactic marriage proposal involving a deaf woman. The film therefore contains a tension characteristic of disability cinema: it seeks to humanise disabled characters while still reproducing the assumption that hearing and speech constitute the preferred condition of life.

The dependence model is also deeply gendered. Disabled women are frequently represented as objects of male protection, sacrifice or rescue. Pal observes that the female character's disability may motivate extraordinary action by the male protagonist, thereby converting her impairment into evidence of his courage. Meenu Bhambhani's work on women with disabilities is important in this regard because it directs attention to the intersection between ableism and patriarchy. A disabled woman is not simply denied bodily autonomy; she may also be denied sexual agency, economic independence and the right to define her own desirability.

5. Disability as Disequilibrium: The Promise of Cure :

The third category, disability as disequilibrium, is perhaps the most pervasive in melodramatic

Hindi cinema. Here disability represents a temporary departure from a presumed natural state of bodily completeness. The narrative therefore moves towards restoration. A blind character regains sight, a person who cannot walk begins walking, or a speech impairment disappears after an emotional or miraculous event. Pal notes that this tendency is particularly strong when protagonists are blinded or paralysed. Disability becomes a condition that the plot must eventually resolve.

This structure has deep cultural resonances. Pal connects the idea of temporary bodily disorder to stories of virtuous suffering and bodily restoration, including the traditions associated with Gandhari and Ashtavakra. The cinematic message is often that perseverance, repentance, love, technology or divine intervention can restore the body. Such narratives can appear optimistic, but their optimism is conditional: the happy ending is frequently achieved by returning the character to an able-bodied state.

The gendered implications are especially pronounced. In several films discussed by Pal, the romantic fulfilment of a disabled heroine is deferred until her impairment is removed. The underlying assumption is that an "incomplete" female body cannot occupy the final position of romantic desirability. The happy ending therefore restores not merely physical capacity but heterosexual and social equilibrium. This is a significant site at which ableism and patriarchy reinforce one another.

6. Disability as Social Maladjustment: The Deviant Body :

The fourth category identified by Pal is disability as social maladjustment. In these narratives, the disabled character is not merely physically different; disability is used to mark the character as eccentric, unreasonable, comic, villainous or socially inappropriate. Pal traces this pattern to figures such as Shakuni and Manthara, whose bodily difference is intertwined with social suspicion and moral otherness. In popular cinema, the disabled character can consequently become the butt of jokes, the suspicious outsider or the flamboyant sidekick.

This category is particularly important for understanding comedy. The disabled body becomes a spectacle because its movements, speech, appearance or sensory difference are treated as inherently funny. Contemporary controversies around films such as Aankh Micholi demonstrate that the older representational grammar has not disappeared. Joyojeet Pal's fourfold framework has continued to be used precisely because disability remains vulnerable to being transformed into a comic device rather than represented as lived experience.

The problem is not humour itself. Disabled people, like everyone else, can be comic subjects and agents of humour. The critical issue is who controls the joke and what the joke presupposes. If the audience laughs because a blind person is blind, a deaf person cannot hear, or a person with a physical impairment moves differently, the humour depends on ableist spectatorship. If, by contrast, humour emerges from social hypocrisy, inaccessible institutions or the character's own agency, the

representational politics are different.

7. From the "Disabled Character" to the "New Disabled": Agency and Resistance :

Pal's later discussion of the "new disabled" is especially useful for understanding the transformation of Hindi cinema. Films increasingly began to depict disabled characters as active participants rather than merely passive objects of pity. Sparsh, Iqbal, Black, Taare Zameen Par, My Name Is Khan, Guzaarish and Margarita with a Straw, among others, contributed to a broader cinematic vocabulary. These films differ substantially in genre and disability representation, but collectively they move towards questions of education, communication, autonomy, desire, work and self-determination.

Iqbal, for instance, makes deafness central to a sports narrative. The protagonist's achievement is not presented simply as a miraculous cure; communication and social support become part of the story. Taare Zameen Par shifts attention from the child's supposed deficiency to educational structures that misunderstand difference. Black and My Name Is Khan similarly foreground learning, communication, family and social recognition. Such films are significant because they relocate disability from the margins of the plot towards the centre of subjectivity.

Yet the inspirational narrative has its own limitations. The "supercrip" figure—an individual who achieves extraordinary success despite disability—can unintentionally create another standard that ordinary disabled lives are expected to meet. The audience may leave admiring the exceptional individual while learning little about structural discrimination. Disability representation therefore requires a balance between celebrating agency and refusing the expectation that disabled people must become extraordinary in order to be valued.

8. Disability, Gender, Sexuality and the Politics of the Body :

The politics of representation become more complicated when disability intersects with gender and sexuality. Hindi cinema has historically been more comfortable depicting disabled women as objects of sacrifice and disabled men as figures whose masculinity must be renegotiated. A disabled male protagonist may have to demonstrate courage, intelligence or physical compensation to restore masculine legitimacy. A disabled female protagonist, by contrast, is frequently required to become conventionally desirable through cure, romance or self-sacrifice.

Contemporary cinema has begun to disturb this structure. Margarita with a Straw is important because it places a woman with cerebral palsy at the centre of a narrative involving sexuality, intimacy and self-discovery. Its significance lies not simply in showing a disabled woman but in refusing to make desexualisation the default condition of disability. The film opens a space for considering disabled sexuality as part of ordinary human subjectivity. Such representations challenge the assumption that disabled bodies are either innocent and childlike or objects of pity.

This shift also invites an intersectional approach. Disability is experienced differently according to class, gender, caste, region, family resources and access to education. A wealthy urban disabled protagonist with assistive technology occupies a different social world from a poor disabled person dependent on informal care. Hindi cinema often universalises the experience of a middle-class protagonist and therefore risks obscuring the material inequalities that shape disabled lives. A more politically attentive cinema would connect bodily difference with employment, education, public infrastructure, digital access and social welfare.

9. Contemporary Hindi Cinema: Progress, Ambivalence and New Forms :

The twenty-first century has witnessed a substantial increase in disability-centred Hindi films. Films such as Barfi!, Andhadhun, Margarita with a Straw, Guzaarish, Srikanth and other recent productions demonstrate that disability can occupy genres ranging from romance and drama to thriller and biographical cinema. However, greater visibility does not automatically produce better representation. The central question remains whether the disabled character controls the narrative or whether disability continues to be a spectacle designed for the emotional education of able-bodied viewers.

Andhadhun is particularly revealing because blindness becomes entangled with performance, deception and spectatorship. The film deliberately destabilises the assumption that a blind body must be represented through a single emotional register of vulnerability. At the same time, the thriller format uses blindness as a narrative mechanism. This ambivalence illustrates a broader contemporary condition: disability may be granted greater complexity while still functioning as a genre device.

Recent scholarship also draws attention to production practices. Priyam Sinha argues that film editing participates in the construction of a "disability affect," meaning that disability representation is produced not only through scripts and performances but through editing, rhythm, framing and affective organisation. This expands the analysis beyond the question of what a film says about disability to how cinematic form makes disability emotionally legible. Representation is therefore located in the entire production culture of cinema.

10. Discussion: From Representation to Disability Justice :

The central finding of this study is that Hindi cinema has moved, but not travelled far enough. The older patterns identified by Pal remain visible beneath contemporary narratives. Punishment survives in moralised representations; dependence survives in paternalistic care narratives; disequilibrium survives in cure-based endings; and maladjustment survives in comic and villainous stereotypes. What has changed is the coexistence of these older forms with narratives of agency and rights.

A disability-justice perspective asks for a more fundamental transformation. Instead of asking

whether a film is sympathetic to disabled people, one should ask whose perspective structures the film, who speaks, who works, who desires, who makes decisions, and whose body is treated as normal. The disabled subject should not have to earn dignity by becoming inspirational. Nor should the character's impairment have to disappear for romance to become legitimate. Representation becomes politically meaningful when disability is allowed to be ordinary, complex and internally diverse.

The future of Hindi disability cinema therefore lies not simply in producing more films about disability but in changing the representational grammar through which disability is imagined. Disabled actors, writers, consultants and filmmakers can contribute to this transformation by shifting the authority of representation. The objective should be neither sentimental inclusion nor tokenistic visibility, but a cinema in which disabled people occupy the full range of human roles: lovers, workers, parents, students, politicians, criminals, friends, comedians, protagonists and ordinary citizens.

11. Conclusion :

The representation of disability in Hindi cinema reveals a long negotiation between cultural memory, commercial storytelling and changing social consciousness. Joyojeet Pal's analysis remains foundational because it identifies the recurring structures through which Indian cinema has made disability meaningful: punishment, dependence, disequilibrium and maladjustment. These categories demonstrate that the cinematic disability is often constructed less as a lived social identity than as a narrative problem to be punished, cured, cared for or explained.

At the same time, the trajectory from Dosti and Koshish to Iqbal, Taare Zameen Par, Margarita with a Straw, Andhadhun and newer disability-centred films indicates genuine transformation. Contemporary Hindi cinema increasingly recognises disabled subjects as capable of agency, desire, education, labour and self-definition. Nevertheless, the persistence of inspirational exceptionalism, cure narratives, comic stereotypes and gendered paternalism shows that representational change remains incomplete.

A genuinely inclusive Hindi cinema would move beyond the binary between tragedy and triumph. Disability need not be a punishment, a miracle, a metaphor or an obstacle to be overcome. It can simply be one dimension of embodied human existence. Such a shift would not merely improve the accuracy of cinema; it would contribute to changing the social imagination of disability itself. The ultimate political significance of representation lies precisely here: cinema can reproduce the boundaries of normality, but it can also make those boundaries visible, contestable and capable of being transformed.

Bibliography :

- Bhambhani, Meenu. "Bollywood Portrayals of Women with Disabilities." In Films and Feminism : Essays in Indian Cinema, edited by Jasbir Jain and Sudha Rai, pp. 72–85. New Delhi: Rawat Publications, 2002.

- Ghai, Anita. Rethinking Disability in India. New Delhi: Routledge, 2015.
- Longmore, Paul K. "Screening Stereotypes: Images of Disabled People in Television and Motion Pictures." In Images of the Disabled, Disabling Images, edited by Alan Gartner and Tom Joe, pp. 65–78. New York: Praeger, 1987.
- Mitchell, David T., and Sharon L. Snyder. Narrative Prosthesis: Disability and the Dependencies of Discourse. Ann Arbor: University of Michigan Press, 2000.
- Pal, Joyojeet. "Physical Disability and Indian Cinema." In Different Bodies: Essays on Disability in Film and Television, edited by Marja Evelyn Mogk, pp. 109–130. Jefferson, NC: McFarland, 2013.
- Pinney, Christopher. Camera Indica: The Social Life of Indian Photographs. Chicago: University of Chicago Press, 1997.
- Rao, Shridevi. "Body, Behavior, Boundaries, and Belonging: Disability in Contemporary Bollywood Films." In South Asia and Disability Studies: Redefining Boundaries and Extending Horizons, edited by Shridevi Rao and Maya Kalyanpur, pp. 263–286. New York: Peter Lang, 2015.
- Sinha, Priyam. "Beyond Cut, Copy and Paste: How Editors Stitch Bollywood's Disability Affect." European Journal of Cultural Studies, 2025. https://doi.org/10.1177/13675494251387065.
- Siebers, Tobin. Disability Theory. Ann Arbor: University of Michigan Press, 2008.
- Snyder, Sharon L., and David T. Mitchell. Cultural Locations of Disability. Chicago: University of Chicago Press, 2006.
- Staples, James. "Decolonising Disability Studies? Developing South Asia-Specific Approaches to Understanding Disability." In Disability Studies in India: Interdisciplinary Perspectives, edited by Nilika Mehrotra, pp. 25–42. Singapore: Springer, 2020.
- Young, Stella. "I'm Not Your Inspiration, Thank You Very Much." TED Talk, 2014.

Selected Filmography :

- Amar Akbar Anthony. Directed by Manmohan Desai, 1977.
- Andhadhun. Directed by Sriram Raghavan, 2018.
- Barfi! Directed by Anurag Basu, 2012.
- Black. Directed by Sanjay Leela Bhansali, 2005.
- Dosti. Directed by Satyen Bose, 1964.
- Guzaarish. Directed by Sanjay Leela Bhansali, 2010.
- Iqbal. Directed by Nagesh Kukunoor, 2005.
- Koshish. Directed by Gulzar, 1972.
- Margarita with a Straw. Directed by Shonali Bose, 2014.
- My Name Is Khan. Directed by Karan Johar, 2010.
- Sparsh. Directed by Sai Paranjpye, 1980.
- Srikanth. Directed by Tushar Hiranandani, 2024.
- Taare Zameen Par. Directed by Aamir Khan, 2007.
- Sholay. Directed by Ramesh Sippy, 1975.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक मूल्यों की शिक्षा : पंचतंत्र की कहानियों के संदर्भ में

डॉ. अर्शिया सैय्यद अफसर अली
हिंदी विभागाध्यक्षा,
तिरपुडे समाजकार्य महाविद्यालय, सदर नागपूर।

सारांश :

प्राचीन काल से भारत का इतिहास गौरवशाली रहा है। विश्व में भारतीय संस्कृति का कोई जोड़ नहीं है। दर्शन और आध्यात्म में भारत का कोई सानी नहीं है। भारत ने विश्व को विज्ञान, गणित, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, खगोलशास्त्र, कला, साहित्य से संबंधित जो ज्ञान दिया है, वह सर्वविदित है। भारतीय ज्ञान परंपराने सदियों से मानव संस्कृति और सभ्यता को आकार दिया। आध्यात्म और नैतिक मूल्य भारतीय संस्कृति के आधार है। मानव सभ्यता में नैतिक मूल्यों का अपना अलग स्थान है। नैतिक मूल्यों का पालन कर मनुष्य आदर्श जीवन जीता है। वर्तमान युग में हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है, यह एक गंभीर बात है। पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से बालकों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों में दिए जाने से बाल्यावस्था से ही उनके कोमल मानस में नैतिक मूल्यों के संस्कार होंगे। इस शोध पत्र के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा में चली आ रही नैतिक मूल्यों की शिक्षा को पंचतंत्र के संदर्भ में उजागर करने का प्रयास किया जा रहा हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य सामाजिक जीवन में हो रहे नैतिक मूल्यों के–हास की रोकथाम करने हेतु बाल्यावस्था से नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल कर, नैतिक शिक्षा के बीज बालमन में रोपित करने हेतु कारगर प्रयासों का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा, नैतिक मूल्य, पंचतंत्र की कहानियाँ, आध्यात्म, भारतीय संस्कृति।

प्राचीन काल से भारत की ज्ञान परंपरा ने संपूर्ण विश्व पर अपनी छाप छोड़ी है। भारतीय दर्शन में नैतिकता,चेतना, अस्तित्व और वास्तविकता पर बृहद प्रकाश डाला गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में जीवन का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है, जिसपर प्रकाश न डाला गया हो, जिससे संबंधित ज्ञान न बताया गया हो। ज्ञान की इस धारा को निरंतर प्रवाहित रखा गया। भारतीय ज्ञान परंपरा की धारा ने मनुष्यों के जीवन का सुखी एवं समृद्ध करने का महत् कार्य किया। मानव सभ्यता के विकास में महत योगदान दिया।

'भारतीय ज्ञान परंपरा' हजारों वर्षों से चली आ रही एक व्यवस्थित ज्ञान प्रणाली है, जो वेदों, उपनिषदों, दर्शन, विज्ञान, कला के माध्यम से पीढ़ियों तक हस्तांतरित हुई है। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, जीव, विज्ञान और गणित जैसे क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अनूठा मिश्रण प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत इसके

अध्ययन को महत्व दिया गया है।'[1]

'भारतीय ज्ञान परंपरा मानव जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक विकास में मार्गदर्शक है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने अस्तित्व, कर्तव्य और जीवन के उद्देश्य को समझता है।'[2]

'भारतीय ज्ञान परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करने की एक व्यवस्थित कला है।'[3] प्राचीन काल से भारत में ज्ञान की धारा प्रवाहित होती रही है। प्राचीन काल से ज्ञान, विज्ञान, कला, गणित, साहित्य, आयुर्वेद प्रत्येक क्षेत्र में भारत ने विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान कायम रखा है। वेदों और उपनिषदो में ब्रम्हांड, जीव, जगत, धर्म, मोक्ष आदि के संदर्भ में गहन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक रहस्य उजागर किए गए है।

'भारतीय ज्ञान परंपरा निहित नैतिक मूल्यों की शिक्षा को सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करके इसके गहन अध्ययन को प्रस्तुत करती है।'[4] भारतीय ज्ञान परंपरा में जीनव के प्रत्येक पहलू को समेटा गया है, जिसमें धर्म, अध्यात्म का अहम स्थान है। इसमें व्यक्ति के दैनिक जीवन के प्रत्येक आयाम पर प्रकाश डाला गया है, जिसके कारण आज भी भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता बनी हुई है। भारतीय ज्ञान परंपरा बहुत प्राचीन है। वैदिक काल से ही वेदों, उपनिषदों के माध्यम से यह ज्ञान परंपरा चली आ रही है। इस परंपरा ने हजारों साल से मानव सभ्यता और संस्कृति का पथप्रदर्शन किया है। इस ज्ञान परंपरा ने समूचे विश्व को प्रभावित किया है। साहित्य और कला ने विश्व को नई दिशा प्रदान की है। भारतीय ज्ञान परंपरा में साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य ने भारतीय संस्कृति, इतिहास और दर्शन को संरक्षित और प्रचारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके माध्यम से हम अपने प्राचीन ज्ञान और संप्रदाय को समझ सकते है और उन तक पहुंच सकते हैं।'[5]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में भारतीय ज्ञान परंपरा के पाठ्यक्रम को अभिन्न अंग बनाने की योजना है। जिसके द्वारा साहित्य के महत्व को रेखांकित करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार ही नैतिकता और आध्यात्म है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य के सभ्य आचरण और व्यवहार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत ने हमेशा विश्व को सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, क्षमा का संदेश दिया है। यह हमारे संस्कृति के आधार स्तंभ है। उन्हें ही नैनिक मूल्य भी कहा जाता है।

नैतिक मूल्य क्या है?

नैतिक मूल्य वह सिद्धांत होते हैं जिसके मार्गदर्शन से मनुष्य सही और गलत का निर्णय लेता है। जब कभी नैतिक दुविधा उत्पन्न होती है उससमय नैतिक मूल्य मार्गदर्शक का काम करते हैं। ये वह सिद्धांत, नियम और आदर्श है,जिसके माध्यम से मनुष्य का चरित्र–निर्माण किया जा सकता है। ईमानदारी, सम्मान, दया, करुणा, सत्य और सहानुभूति ये ऐसे नैतिक मूल्य है जो व्यक्ति के व्यवहार को सुधारते हैं, साथ ही उसे सुसंस्कृत और जिम्मेदार नागरिक बनाने में सहाय्यता करते हैं। नैतिक मूल्यों का विकास बाल्यावस्था से ही परिवार एवं स्कूली शिक्षा द्वारा किया जाना चाहिए।

नैतिक मूल्य आदर्शों का एक ऐसा समूह है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना रखने के लिए आवश्यक है। नैतिक मूल्य बच्चों में मजबूत नैतिक सिद्धांतों का विकास करने के साथ–साथ उन्हें अच्छे और बुरे में अंतर करने में भी सक्षम बनाते हैं। 'नैतिक सिद्धांत बच्चे के जीवन के कई चरणों में मार्गदर्शन करते हैं और उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालते हैं।'[6] नैतिक मूल्य, शब्द में दो शब्दों निहित

है, नैतिकता अर्थात् (मतलब क्या सही है) और मूल्य (क्या महत्वपूर्ण है) से बना है। ऐसे मूल्य जो हमारा मार्गदर्शन करते हैं कि कैसे हमें व्यवहार करना चाहिए। 'नैतिक मूल्यों की श्रेणी में आते हैं।'[7]

वर्तमान युग में हमारे समाज से नैतिक मूल्यों का पतन स्पष्ट दिखाई देता है। भ्रष्टाचार चोरी, छल–कपट, झूठ आदि असभ्य प्रवृतियों का समाज में बोल–बाला है। जिस भारत की संस्कृति का इतिहास इतना गौरवशाली रहा है, वही भारत आज नैतिक पतन की कगार पर खड़ा है। ऐसे में बाल्यावस्था से ही बालकों को नैतिक शिक्षा दिए जाने पर बल दिया जा रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 में इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध विषयों को पाठ्यक्रम में समाहित किया गया है। जिसके माध्यम से हम पुनः अपने अतीत के गौरव को पुनर्जीवित कर सकते हैं।

पंचतंत्र प्राचीन भारत का एक बहुत विख्यात ग्रंथ है। ऐसा माना जाता है कि इसकी रचना 2000 वर्ष से भी पहले हुई थी। मूल रूप से यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा गया। बाद में इसके बहुत से अनुवाद हुए। विश्व भर में कई भाषाओं में इसके अनुवाद उपलब्ध है। दंतकथा है कि पंचतंत्र की रचना राजा अमरशक्ति के राज्य में हुई थी। राजा अमरशक्ति ने अपने तीन उद्दंड पूत्रों को नैतिक शिक्षा देने हेतु विष्णुशर्मा को गुरु के रूप में नियुक्त किया और उन्होंने ही पंचतंत्र की रचना की। यह बात ग्रंथ के संस्कृत संस्करण की प्रस्तावना में कही गई है किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि यह इतिहास सत्य है या मनगढंत।[8]

पंचतंत्र की कथाओं में नैतिक शिक्षा दी गई है। प्रत्येक कथा के माध्यम से नैतिक सीख देकर उद्‌बोधित करने का प्रयास किया गया है। 'यह मानव जीवन के नैतिक आदर्शों को समझने का एक उत्कृष्ट साधन है। इन कथाओं के माध्यम से मनोविज्ञान और नैतिक मूल्यों के बारे में सीखा जा सकता है। पंचतंत्र सैद्धांतिक रूप से नीति की एक नियमावली है।'[9] पंचतंत्र की कहानियां पाँच भागों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक भाग के अलग–अलग नाम हैं एवं यह अलग विषय पर केंद्रित है। यह पाँच खंड इस प्रकार प्रकार है, अ) मित्र–भेद : मित्रों का वियोग, आ) मित्र–लाभ : मित्र–संप्राप्ति, इ) काकोलूकियम : कौवों और उल्लुओं की कहानी, ई) लब्धप्रकाश (मृत्यु या विनाश के आने परययदि जान पर आ बने तो क्या? उ) अपरिक्षितकारकम (जिसे परखा नहीं गया उसे करने से पहले सावधान रहे, हडबडी में कदम न उठाए)[10] यह पशु कथाओं आधारित है। पशु कथाओं के माध्यम से, हल्के–फुल्के अंदाज में नैतिकता के पाठ सीखाने का काम इनमें किया गया है। प्रत्येक कहानी में कोई ना कोई शिक्षा, सीख या मूल्य निहित है। यह नैतिक कहानियों का संग्रह है। इनमें जीवन के अनमोल पाठ और नैतिक मूल्यों को खेल–खेल में आनंददायक और आकर्षक ढंग से सीखाने की क्षमता है।

पशु–पक्षियों को कहानियों के मुख्य पात्र बनाकर कही गई यह कथाएँ बच्चों के ज्ञान और विवेक को विकसित करने में सहायक है। बच्चों को कहानियाँ पढ़ना, सुनना और सुनाना बेहद पसंद होता है। यदि इन कहानियों के माध्यम से उन्हें जीवन के पाठ पढ़ाए जाए, नैतिक मूल्य सीखाए जाए, तो वे जल्द ही इसे सीख जाते हैं। जिससे उनके मस्तिष्क का विकास होता है, साथ–ही–साथ इनके व्यक्तित्व का भी विकास होता है। पंचतंत्र की कहानियों के द्वारा बच्चों में समस्या समाधान, सहानुभूति, आलोचनात्मक सोच का विकास होता है। पंचतंत्र की कहानियां जटिल नैतिक दुविधाओं को प्रस्तूत करती है जो युवा पाठकों को विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करने और नैतिक निर्णय लेने की बारीकियों को समझने के लिए प्रोत्साहित करती है।'[11]

पंचतंत्र में दो दोस्त और भालू की कथा के माध्यम से लेखक ने बताया है कि सच्चा दोस्त कौन होता है? कैसे लोगों पर विश्वास करना चाहिए? बुरे वक्त पर साथ छोड़कर जाने वाला व्यक्ति कभी भरोसेमंद नहीं

होता। लकड़हारे की कथा के माध्यम से ईमानदारी के महत्व को समझाया गया है। चिडिया और खरगोश की कथा के माध्यम से झगड़ा न करने की सलाह दी गई हैं और समझाया गया है कि झगड़ा करने से किसी को लाभ नहीं होता। मगरमच्छ और बंदर की कथा के माध्यम से मुर्खों से दूर रहने और दोस्ती सही व्यक्ति से करने का संदेश दिया गया है। शेर और चूहे की कथा के माध्यम से एक–दूसरे की सहाय्यता करने की सीख एवं दूसरों पर दया करने की सीख दी गई है। हिरण और सियार की कथा के माध्यम से पाठकों को समझाया गया है कि झूठे दोस्त घोषित दुश्मन से भी बदतर होते हैं। मूर्ख बिल्लियों की कथा के माध्यम से लेखक पाठकों को नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं कि मूर्ख वह हैं जो दूसरे मुर्ख पर भरोसा करता है। चालाक लोमड़ी की कथा पाठको को समझाती है कि लोगों की बात पर भरोसा न करें बल्कि उनके कार्यों पर भरोसा करें। चतुर किसान की कथा जिसमें उसके पास एक बकरी, एक शेर और एक घास का गट्ठर था और उसे एक नदी पार करनी थी। इस कथा में किसान की चतुराई और सुझबुझ को दर्शाया गया है जिसके माध्यम से वह अपना काम सफलतापूर्वक करता है। दो मुर्गे और बाज की कथा के माध्यम से अहंकार को व्यक्ति के पतन का कारण बताया गया है और समझाया गया है कि जरूरत से ज्यादा घमंड सेहत के लिए खतरनाक होता है। घमंडी का अंत बहुत बुरा होता है।[12]

सोच का असर इस कहानी के माध्यमसे लेखक ने स्पष्ट किया है कि आपकी सोच आपका निर्माण करती है। प्रयास करने से कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। चिड़ियाँ और बहेलियाँ की कथा के माध्यम से एकता के महत्व को बताया गया है और सीख दी गई है कि एकसाथ मिलकर बड़े–से–बड़े दुश्मन को भी हराया जा सकता है। हाथी और तोते की कहानी सीखाती है कि शारीरिक बल से बुद्धिबल भारी होता है। पंचतंत्र की यह कहानियाँ बच्चों के बौद्धिक एवं चारित्रिक निर्माण में मील का पत्थर साबित हो सकती है। कहानियां बच्चों के मानस–पटल पर अमिट छाप छोड़ती है। मनोरंजन के साथ–साथ संस्कारित करने का कार्य यह कहानियां करती है। सकारात्मक सोच का निर्माण कर आदर्श जीवन जीने का पथ दिखाती है। यह कहानियाँ जीवन तथा नैतिकता के संदर्भ में बहुमूल्य शिक्षा देने का कार्य करती है। वर्तमान समय में युवा वर्ग में चिंता, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मत्सर आदि भावनाओं की प्रधानता दिखाई दे रही है। माता–पिता का कहना न मानना, झूठ बोलना, बड़ों का आदर न करना, चोरी करना, विश्वासघात करना, कामचोरी करना, अहंकार करना, व्यसनाधीन होना, आलस में पड़े रहना आदि बुरी आदतों से युवा ग्रसित है। ऐसे में बाल्यावस्या से ही उन्हें पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से नैतिकता के पाठ पढ़ाए जाए तो यह उनके चरित्र निर्माण में सहाय्यक होगी। जिसके माध्यम से हम एक आदर्श विदयार्थी, आदर्श नागरिक का निर्माण कर सकेंगे।

निष्कर्ष :

भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा का अध्ययन, संरक्षण एवं प्रचार प्रसार कर हम अपनी भारतीय संस्कृति की विरासत को भविष्य के लिए संजोकर रख सकते हैं। इस ज्ञान परंपरा के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी को नैतिकता के पाठ पढाकर हम जिम्मेदार एवं सर्वोत्कृष्ठ नागरिकों का निर्माण कर सकते हैं। समूचे संसार में जहाँ नैतिक पतन का बोलबाला है, जहाँ मनुष्य पशुवत व्यवहार करने लग गया है, जहाँ वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रह गया है, वहाँ पंचतंत्र की सुबोध, सरल, नैतिकता की सीख देने वाली कथाएँ उसे पुनः मनुष्य बनाने के लिए कारगर साबित हो सकती है। भारत ने अर्वाचीन काल से समूचे विश्व का मार्गदर्शन किया है। अंधेरों से उजालों की ओर बढने का रास्ता दिखाया है। आज वर्तमान समय में पुनः उसी मार्गदर्शन की संसार को आवश्यकता है।

निश्चित ही हम अपनी ज्ञान परंपरा के माध्यम से नैतिकता की शिक्षा का प्रचार–प्रसार कर मनुष्य को मनुष्य बनाने में सहायता कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. भारतीय ज्ञान परंपरा : AI overview.
2. भारतीय ज्ञान परंपरा : askfilo.com.
3. भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित वैज्ञानिक दृष्टिकोण की समकालीन प्रासंगिकता : मोहित वर्मा, Researchgate.net.
4. भारतीय ज्ञान परंपरा में नैतिक मूल्य, AI overview.
5. भारतीय ज्ञान परंपरा (संक्षिप्त परिचय) people university.edu.in.
6. https:// saralabirla academy.org.
7. https://www.drishtiias.com
8. https://brainly.in
9. पंचतंत्र की कथाएं >study.com
10. Vedanty.com > पंचतंत्र की कथाएं और उसका अर्थ.
11. पंचतंत्र की संपूर्ण कहानियां https:// librarykv rishikesh.wordpress.com.
12. पंचतंत्र : विकिपीडिया https:// hiwiki.iiit.ac.in.

8698147044
hakimarshiya@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी भाषा शिक्षण की प्रासंगिकता

डॉ. रीजा. आर. एस
सहायक आचार्य
क्रिस्त्यन कॉलेज काट्टाकडा, तिरुवनन्तपुरम, केरल, केरल विश्वविद्यालय।

सार :

इक्कीसवीं सदी के कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक और वैज्ञानिक आधार तथा हिन्दी भाषा शिक्षण की बदलती भूमिका की प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत करता है। एक ओर जहाँ पाणिनीय व्याकरण का तर्कसंगत ढाँचा, वैदिक गणित के एल्गोरिदम तथा नव्य–न्याय दर्शन प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण और मशीन लर्निंग के लिए सैद्धांतिक मॉडल प्रदान कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर कृत्रिम बुद्धिमत्ता और 'भाषिणी' जैसे आधुनिक प्लेटफॉर्मों ने भाषाई बाधाओं को समाप्त कर हिन्दी शिक्षण को वैश्विक, सुलभ और व्यावहारिक बनाया है।इसमें उच्च शिक्षा, विशेष रूप से तकनीकी, चिकित्सा एवं विधिक क्षेत्रों में औपनिवेशिक मानसिकता, प्रामाणिक अध्ययन सामग्री के अभाव और रोजगार की अनिश्चितता जैसी चुनौतियों के सुधार की गई है। साथ ही, राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के संदर्भ में यह रेखांकित किया गया है कि मातृभाषा में शिक्षा से छात्रों की मौलिक सोच और सृजनात्मकता का विकास होता है। यह अध्ययन निष्कर्षित करता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक सहयोगी तकनीक के रूप में अपनाकर और स्पष्ट सरकारी नीतियों के माध्यम से हिन्दी को रोजगार से जोड़कर इसे केवल साहित्य की भाषा न बनाकर विज्ञान, तकनीक और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की सक्षम भाषा के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

मुख्य शब्द : कृत्रिम बुद्धिमत्ता, भारतीय ज्ञान परंपरा, पाणिनीय व्याकरण, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, हिन्दी भाषा शिक्षण, भाषिणी, उच्च शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०।

आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, मशीन लेर्निंग और ज्ञान निरूपण जैसे क्षेत्रों में जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। इस समय भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एक मुख्य घटक प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण है। मशीनों के लिए किसी भी मानव भाषा को समझना अत्यंत कठिन होता है क्योंकि भाषाओं में अस्पष्टता होती है। महर्षि पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी विश्व का सबसे पहला और सबसे परिपूर्ण श्फॉर्मल ग्रामरश तंत्र है। इसमें लगभग चार हजार से अधिक नियम हैं जो एक प्रोग्रामिंग कोड की तरह कार्य करते हैं। संस्कृत में शब्दों की संरचना और वाक्य–विन्यास का ऐसा नियमबद्ध

गणितीय आधार है, जिससे मशीन के लिए भ्रम की स्थिति न्यूनतम हो जाती है। १९८५ में नासा के शोधकर्ता रिक ब्रिग्स ने स्वीकार किया था कि प्राचीन नव्य–न्याय दर्शन का तर्कशास्त्र कृत्रिम बुद्धिमत्ता में ज्ञान निरूपण के लिए सबसे उपयुक्त रूप प्रदान करता है।

कंप्यूटर की मूल आत्मा गणित और एल्गोरिदम में निहित है। भारतीय गणितीय परंपरा ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तकनीकी विकास को अप्रत्यक्ष रूप से दिशा दी है। आधुनिक कंप्यूटिंग का आधार है, जिसकी जड़ें शून्य की अवधारणा में हैं। वैदिक गणितीय सूत्र स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ द्वारा संकलित सोलह वैदिक सूत्र जटिल गणनाओं को बहुत कम चरणों में हल करने की क्षमता रखते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग में डेटा प्रोसेसिंग की गति बढ़ाने के लिए इन गणितीय तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है।

वर्तमान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता अनुसंधान 'आर्टिफिशियल जनरल इंटेलिजेंस' और 'सुपर इंटेलिजेंस' की ओर बढ़ रहा है। यहाँ प्रश्न केवल गणना का नहीं बल्कि 'चेतना' का है। भारतीय दर्शन मन, बुद्धि और चेतना में स्पष्ट भेद करता है। बुद्धि प्रकृति का भाग है लेकिन कृत्रिम बुद्धिमत्ता भौतिक और यंत्रवत् है। 'आत्मा' शुद्ध चेतना है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संदर्भ में इसका अर्थ यह है कि मशीनें बुद्धि का अनुकरण कर सकती हैं लेकिन जब तक उनमें स्वतंत्र चेतना नहीं होगी, तब तक वे केवल जड़ बुद्धि ही रहेंगी। यह अंतर्दृष्टि कृत्रिम बुद्धिमत्ता वैज्ञानिकों को चेतना की सीमा रेखा समझने में मदद करती है। भारतीय ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की उपयोगिता भी महत्व पूर्ण है। जहाँ एक ओर भारतीय ज्ञान कृत्रिम बुद्धिमत्ता को नई दिशा देता है, वहीं कृत्रिम बुद्धिमत्ता भी भारतीय परंपरा के संरक्षण में क्रांतिकारी भूमिका निभा रहा है।

पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का योगदान महत्वपूर्ण है। भारत में लाखों दुर्लभ पांडुलिपियाँ ताड़पत्रों और कागजों पर बिखरी हुई हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित 'ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॉग्निशन' तकनीक से इन्हें डिजिटाइज और पुनर्निर्मित किया जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता अनुवाद मॉडल 'भाषिणी' के माध्यम से प्राचीन संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओं के ग्रंथों का आधुनिक भाषाओं में त्वरित अनुवाद संभव हो रहा है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती निष्पक्षता, उत्तरदायित्व और नैतिकता की है। भारतीय परंपरा में 'धर्म' का अर्थ केवल पंथ नहीं, बल्कि नैतिक कर्तव्य और सामाजिक कल्याण है। 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास में यदि भारतीय नैतिक मूल्यों को समाहित किया जाए, तो यह केवल व्यावसायिक लाभ तक सीमित न रहकर संपूर्ण मानवता के कल्याण पर केंद्रित होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता हथियारों और पक्षपातपूर्ण एल्गोरिदम के दुष्परिणामों से बचने के लिए भारतीय दर्शन का 'संतुलन और अहिंसा' का सिद्धांत वैश्विक मार्गदर्शन कर सकता है।

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में हम एक ऐसे मोड़ पर खडे हैं जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव जीवन, विचार प्रक्रिया और विशेषकर शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह से पुनर्गठित कर दिया है। ज्ञान के सृजन और प्रसार के तरीकों को बदल दिया है। भारत जैसे बहुभाषी देश में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न लंबे समय तक यह माना जाता रहा कि वैश्विक दौड़ में बने रहने के लिए अंग्रेजी एकमात्र माध्यम है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने इस धारणा की जड़ों को हिला दिया है। आज मशीनें केवल अंग्रेजी नहीं समझती, वे इंसानी भाषाओं के विशाल नेटवर्क को व्याख्या कर रही है। आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल 'भाषिनी' भारतीय भाषाओं के बीच के अंतर को समाप्त कर रहे हैं। अब ज्ञान किसी एक भाषा के बंधक के रूप में नहीं रह गया है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता टूल्स हिन्दी में शिक्षा प्रदान करने में सक्षम है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा और उसकी शिक्षा व्यवस्था से होती है। उच्च शिक्षा से किसी भी देश के बौद्धिक, आर्थिक और सामाजिक विकास होती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में बहुत सारे लोग हिन्दी बोलती या समझती है। उच्च शिक्षा में हिन्दी का स्थान हमेशा एक गंभीर और संवेदनशील बहस का विषय रहा है। औपनिवेशिक काल के दौरान लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति ने अंग्रेजी को ज्ञान, विज्ञान और प्रशासन की मुख्य भाषा बना दिया। स्वतंत्रता के बाद उम्मीद थी कि भारतीय भाषाओं विशेषकर हिन्दी को उच्च शिक्षा, शोध और तकनीकी क्षेत्र में उनका उचित स्थान मिलेगा। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी, बाल गंगाधर तिलक और मदन मोहन मालवीय जैसे विचारकों ने स्पष्ट किया था कि जा भाषा के बिना सच्ची स्वतंत्रता अधूरी है। गाँधी जी ने कहा था कि यदि विदेशी भाषा के माध्यम के कारण हमारे बचचों पर पड़ने वाले बोझ को दूर नहीं किया गया,तो हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ मानसिक रूप से पंगु हो जाएंगी। किन्तु आज भी उच्च शिक्षा में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है।

हिन्दी दुनिया में सबसे अधिक बोले जानेवाली भाषाओं में से एक है। वैश्विक स्तर पर व्यापार, पर्यटन और मनोरंजन के कारण हिन्दी की माँग बढ़ी है। भारत एक बड़ा वैश्विक बाजार है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अब भारत के स्थानीय बाजारों तक पहुँचने के लिए हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिकता दे रही है। इस प्रकार वैश्विक संचार के लिए हिन्दी का ज्ञान होना बहुत बड़ा लाभ बन गया है। आज हिन्दी शिक्षण केवल कक्षाओं तक सीमित नहीं है। इसका स्वरूप अत्यन्त आधुनिक, गतिशील और वैश्विक हो चुका है। डिजिटल युग ने हिन्दी को क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सीमाओं से निकालकर वैश्विक मंच पर नई पहचान दी है।

आज दुनिया के किसी भी कोने में बैठा व्यक्ति इंटरनेट, मोबाइल ऐप्स, पॉडकास्ट, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और ई–लर्निंग प्लाटफॉम्स के माध्यम से आसानी से हिन्दी सीख रहा है। गूगल अनुवाद, वॉयस टाइपिंग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे आधुनिक उपकरणों ने हिन्दी भाषा की सुगमता को और बढ़ा दिया है। अब हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य केवल व्याकरण और साहित्य सिखाना नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर व्यापार, कूटनीति, जनसंचार और डिजिटल मीडिया की जरूरतों के अनुसार व्यावहारिक भाषा कौशल का विकास करना हो गया है। डिजिटल तकनीक ने हिन्दी शिक्षण को अधिक सुलभ,संवादात्मक और प्रभावी बनाया है। इसके साथ ही साथ वैश्विक संचार के इस दौर में हिन्दी अध्यापकों और छात्रों के सामने अनेक चुनौतियाँ भी उभरकर आयी है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी माध्यम के अवसर बड़े हैं, लेकिन डेटा की कमी, कठिन मानक शब्दावली और डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ भी कम नहीं है। आज भारत के युवा बोलनेवाले हिन्दी और अंग्रेजी का मिश्रण 'हिंग्लिश' भाषा को कृत्रिम बुद्धिमत्ता समझता है। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.ई.पी. २०२० प्राथमिक और उच्च शिक्षा में मातृभाषा या स्थानीय भाषा के प्रयोग पर अत्यधिक बल देती है। इसमें तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा को भी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में शुरू करने का प्रावधान है। भारत सरकार का 'भाषिनी' प्रोजेक्ट इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। इसका उद्देश्य वॉयस–टू–वॉयस अनुवाद को संभव बनाना है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में शिक्षा में हिन्दी माध्यम की प्रासंगिकता का पुनर्जन्म हुआ है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने भाषा को एक बाधा से बदलकर एक कौशल और माध्यम में तबदील कर दिया है। हम औपनिवेशिक हीन भावना को छोडें, कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक मित्र के रूप में स्वीकार करें और अपनी हिन्दी भाषा में ज्ञान–विज्ञान के सृजन को बढ़ावा दे। डॉ. कृष्ण वीर सिंह के शब्दों में – "आधुनिक युग सूचना क्रांति का युग है। जो आदमी जितना अधिक सूचना के प्रति सजग है वह उतना अधिक सफल है।"[1] हिन्दी अब केवल साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कंधों पर सवार होकर विज्ञान और भविष्य की भाषा बनने की ओर अग्रसर हैं।

वर्तमान उच्च शिक्षा में हिन्दी की माध्यम की स्थिति को हम दो भागों में विभाजित करके देख सकते है : पहला– मानविकी, सामाजिक विज्ञान और कला– इस स्तर पर हिन्दी माध्यम का व्यापक प्रचलन है। इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाज शास्त्र और हिन्दी साहित्य जैसे विषयों में हिन्दी माध्यम के छात्रों की संख्या बहुत बड़ी है। दूसरा–तकनीकी, चिकित्सा और व्यवसायिक शिक्षा – इसी क्षेत्र में सच्ची चुनौती है। आई.आई.टी, आई.आई. एम, एम्स और देश के शीर्ष विधि विश्वविद्यालयों में शिक्षा, शोध, सेमिनार और परीक्षाओं का एकमात्र माध्यम अंग्रेजी है। हाल में मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में एम.बी.बी.एस और इंजिनियरिंग की पढाई हिन्दी में करने का साहसिक प्रयास किए हैं। ये अभी भी प्रयोगात्मक स्तर पर है।

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान और नई–नई खोजों का महत्व होता है। अपनी भाषा में ज्ञान–विज्ञान का आदान–प्रदान भी सहज और स्वाभाविक होता है। निज भाषा में ज्ञान–विज्ञान की अभिव्यक्ति सहज और सर्जनात्मक होती है। डॉ. मंजू गुप्ता के शब्दों में – "वर्तमान में शिक्षण व्यवसाय के समक्ष उपस्थित होने वाली विभिन्न समस्याओं का समावेश देखते हुए आज यह कहा जा सकता है कि इस व्यवसाय में बहुत से सुधार करने की आवश्यकता है।"[2] विदेशी भाषा में की गयी अभिव्यक्ति असहज और यांत्रिक रहता है। अपनी भाषा में प्रकट किए गये विचार अधिक ग्राह्य, अधिक रोचक और अधिक सरस होते हैं। ज्ञान–विज्ञान के अध्ययन और अध्यापन की प्रक्रिया यदि अपनी भाषा में होगी तो वह अधिक संप्रेष्य और रोचक होगी। ज्ञान–विज्ञान, टेक्नोलॉजी और प्रौद्योगिकी आदि सभी विषयों का अध्ययन, प्राशिक्षण, अध्यापन, प्राध्यापन हिन्दी और भारतीय भाषाओं में करना चाहिए। ऐसा न करना संविधान की मूल भावना की अवहेलना और जन–जन की लोकतांत्रिक आकाक्षाओं की उपेक्षा करना है।

उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम की प्रमुख चुनौतियाँ उच्चशिक्षा में हिन्दी माध्यम के पूर्ण विकास और स्वीकार्यता के मार्ग में कई गांभीर बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकों और अध्ययन सामग्री का अभाव सबसे बड़ी व्यावहारिक समस्या है। उच्चस्तरीय शोध, सन्दर्भ ग्रन्थ और मानक पत्रिकाएँ हिन्दी माध्यम में उपलब्ध नहीं है। अनुवाद की गुणवत्ता भी एक समस्या है। जो पुस्तकें अनूदित की जाती हैं उनकी भाषा इतनी कठिन है कि छात्रों के लिए उसे समझना अंग्रेजी से भी अधिक कठिन हो जाता है। अध्यतन ज्ञान की कमी भी एक समस्या है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हर दिन नए शोध होते हैं। जब यह ज्ञान अनूदित होकर आता है तब वह पुराना हो चुका है।

हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए जन–आन्दोलन एवं दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम को लेकर अभिजात एवं रूढ़ शिक्षक वर्ग कुछ विशेष चिंतित हैं। डॉ. पुष्पलता तनेजा द्वारा संपादित उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम ग्रन्थ में प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने कहा – "वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे बडी कमजोरी हिन्दी या हिन्दी में उच्च–शिक्षा प्राप्त युवकों की रोजगार की तलाश में भटकना पड़ता है।"[3] अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले छात्र प्रायः उच्च पदों पर आसीन हैं। वे ही विदेशों तक फैले हुए हैं। हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा अर्जित करने वाले छात्रों का अक्सर शर्म का सामना करना पड़ता है। स्वदेशी नेतृत्व को इस पर गंभीरता से चिन्तन करना चाहिए। यदि भारत सरकार को उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी लागू करना चाहिए तो हिन्दी के लिए उच्च पदों का सृजन करना चाहिए। उन पदों के लिए हिन्दी की अनिवार्य उच्च योग्यता निर्धारण करनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था केलिए स्पष्ट नीति बनाना आवश्यक है।

वैश्वीकरण के इस युग में कॉर्पोरेट जगत, बहु राष्ट्रीय कंपनियों और वैश्विक बाजार की भाषा अंग्रेजी है। कंपनियों में कैंपेस प्लेसमेंट के दौरान समूह चर्चा और साक्षात्कार अंग्रेजी में होते हैं। हिन्दी माध्यम के छात्र योग्यता होने के बवजूद भी पीछे छूट जाते हैं। समाज में यह धारणा गहरी हो चुकी है कि अंग्रेजी आर्थिक समृद्धि की भाषा है। हिन्दी भाषा को केवल भावनात्मक या साहित्य विमर्श की भाषा मानी जाती है।

हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, सदार पटेल आदि महापुरुष प्रयासरत रहे। उन्होंने हिन्दी की महता की वकालत की। शिक्षा आयोग के निर्देशों के अनुसार विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम वाली तकनीकी एवं गैर तकनीकी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध है। इससे हिन्दी माध्यम में उच्च शिक्षा ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं है। विश्व विद्यालयों में उच्च शिक्षा प्रशिक्षित प्राध्यापकों की कमी भी नहीं है। वे पूर्ण रूप से विभिन्न विद्याशाखाओं में उच्च शिक्षा के पाठन में सक्षम हैं।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की मुख्य भाषा अंग्रेजी है। केंद्रीय सेवाओं में हिन्दी में परीक्षा करने की अनुमति है। प्रारंभिक परीक्षा के प्रश्नों के गलत अनुवाद और मुख्य परीक्षा में अंग्रेजी माध्यम के छात्रों के उच्च सफलता अनुपात के कारण हिन्दी माध्यम के छात्र एक अदृश्य हीनता बोध और दबाव का सामना करते हैं। आशा अय्यर 'कनुप्रिया' के शब्दों में – "भारत बहुभाषी देश है एवं लग भग हर बच्चा दो या अधिक भाषाएँ अथवा एक ही भाषा की एकाधिक उपभाषाएँ सरलता से सीख जाता है।"[4] शिक्षा का माध्यम केवल अक्षरों का ज्ञान नहीं है। छात्रों के आत्मविश्वास का भी प्रतीक है। भारत में अंग्रेजी केवल एक भाषा नहीं है, एक सामाजिक स्तर का प्रतीक बन गई है।

हिन्दी समृद्ध, सरल और समर्थ भाषा है। इसमें मानविकी, वैज्ञानिक, इंजीनियरी और प्रौद्योगिकीग्य संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है। भारतीय संविधान में हिन्दी की भूमिका निश्चित की गयी है। संविधान के अनुच्छेद ३४३ खंड (१) में हिन्दी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया है। इसकी लिपि देवनागरी है। डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा ने कहा – "वर्तमान विचार धाराओं के अनुसार, किसी भी राष्ट्र की प्रगति की मापदण्ड उस देश की शिक्षा–व्यवस्था के स्वरूप एवं स्थिति को माना जाता है।"[5] भाषा के इस स्वरूप का संबन्ध शिक्षा–व्यवस्था से भी जुड़ा हुआ है।

इक्कीसवीं सदी का डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का युग हिन्दी भाषा और भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए कोई चुनौती नहीं, बल्कि एक अभूतपूर्व अवसर लेकर आया है। जहाँ एक ओर अष्टाध्यायी का पाणिनीय व्याकरण, वैदिक गणित, नव्य–न्याय का तर्कशास्त्र और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण को एक सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता 'भाषिणी' जैसे प्रोजेक्ट्स और डिजिटल उपकरण हिन्दी को औपनिवेशिक मानसिकता तथा भाषाई सीमाओं के बंधन से मुक्त कर रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के माध्यम से चिकित्सा, इंजीनियरिंग और उच्च शिक्षा में हिन्दी भाषा के प्रयोग का जो संकल्प लिया गया है, वह केवल भाषाई अस्मिता का विषय नहीं है, बल्कि यह छात्रों की मौलिक सोच, सृजनात्मकता और ज्ञान–विज्ञान के सहज संप्रेषण की अनिवार्य शर्त है। यद्यपि मानक शब्दावली, अद्यतन अध्ययन सामग्री की उपलब्धता और कॉर्पोरेट रोजगार से जुड़ी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, किंतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित त्वरित अनुवाद और ज्ञान–प्रसार के साधनों ने इन दूरियों को तेजी से जोड़ना शुरू कर दिया है। हिन्दी को केवल भावुकता या साहित्य की भाषा न मानकर, इसे आधुनिक विज्ञान, तकनीक, वैश्विक व्यापार और डिजिटल क्रांति की व्यावहारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया जाए। जब सरकार, शिक्षाविद् और समाज मिलकर हिन्दी को

उच्चस्तरीय रोजगार एवं आर्थिक अवसरों से जोड़ने पर भारत एक बौद्धिक, आत्मनिर्भर और सशक्त राष्ट्र के रूप में वैश्विक मंच पर पुनर्गठित होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. कृष्णबीर सिंह – हिन्दी शिक्षण – पृ. सं. २०५
2. मंजू गुप्ता – भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास – पृ. सं. १२५१
3. डॉ. पुष्पलता तनेजा (संपादक)– उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम – पृ. सं. २१५
4. आशा अय्यर 'कनुप्रिया' – हिन्दी शिक्षा : कैसे करें – पृ. सं. ११६
5. महेन्द्र कुमार मिश्रा – शिक्षा सिद्धान्त एवं आधुनिक भारत की शिक्षा, पृ. सं. १७०

सहायक ग्रन्थ सूची :

1. हिन्दी शिक्षण, डॉ. कृष्णबीर सिंह, प्रकाशक टी बुक हाउस, ७६, चौडा रास्ता, जयपुर, संस्करण २०११
2. भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, डॉ. मंजू गुप्ता, प्रकाशक : के.एस.के पाब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्य, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण २००८
3. शिक्षा में हिन्दी माध्यम, डॉ. युष्पलता तनेजा (संपादक), प्रकाशक : भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण २००५
4. हिन्दी शिक्षा : कैसे करें, आशा अय्यर 'कनुप्रिया', प्रकाशक : जाह्नवी प्रकाशन, विवेक विहार, दिल्ली, संस्करण २०११
5. शिक्षा सिद्धान्त एवं आधुनिक भारत की शिक्षा, महेन्द्र कुमार मिश्रा, प्रकाशक : यूनिवर्सि टी बुक हाउस, ७६, चौडा रास्ता, जयपुर, संस्करण २२००८

reejakripa@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

National Education Policy 2020 and Indian Knowledge Renaissance

Prof. Shakil Ahmad
J.L.N. (P.G.) Collage, Etah, U.P.

Education is fundamental for achieving full human potential, developing an equitable and just society, and promoting national development. Providing universal access to quality education is the key to India's continued ascent, and leadership on the global stage in terms of economic growth, social justice and equality, scientific advancement, national integration, and cultural preservation. Universal high-quality education is the best way forward for developing and maximizing our country's rich talents and resources for the good of the individual, the society, the country, and the world.

This National Education Policy 2020 is the first education policy of the 21st century and aims to address the many growing developmental imperatives of our country. This Policy proposes the revision and revamping of all aspects of the education structure, including its regulation and governance, to create a new system that is aligned with the aspirational goals of 21st century education, including SDG4, while building upon India's traditions and value systems.

The new education policy must provide to all students, irrespective of their place of residence, a quality education system, with particular focus on historically marginalized, disadvantaged, and underrepresented groups. Education is a great leveler and is the best tool for achieving economic and social mobility, inclusion, and equality. Initiatives must be in place to ensure that all students from such groups, despite inherent obstacles, are provided various targeted opportunities to enter and excel in the educational system.

NATIONAL EDUCATION POLICY :

The education policy was formed in 1968, later revised in 1986 with a small amendment in 1992. Since then, the same education pattern has been followed for the last 34 years. After 34 years, a new education policy was proposed by the Government of India in the year 2020. This National Education Policy 2020 is the first education policy of the 21st century and aims to address the many

growing developmental imperatives of our country.

On 29th July 2020, the Cabinet approved a new education policy with the aim of introducing several changes to the existing Indian education system. If we look at the previous policies, there are same gradual Policies there are some gradual changes as per time the focus is more on education to improve education from teachers from socially backward classes entrance exam for engineering colleges at national level to enhance exam for engineering college at national level to enhance the quality of Education. In the proposed NEP 2020, the old 10+2 system of education was removed and replaced by the 5+3+3+4 curricular structure. It is a radical change in the Indian education policy.

RELATED POLICIES :

There are several concurrent policies and documents which will help the implementation of NEP 2020. Table 1 attempts to specify these policies and documents.

Sr. No.	Policy	Description
1	Right to Education	To offer free and compulsory education to all children, irrespective of age group and economic class, as a fundamental right.
2	National Programme for the Education of Girls at Elementary Level (NPEGEL)	The objective was to reach girls in educationally backward areas where resources are hardest to reach.
3	Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (RMSA)	To develop secondary education at the grassroots level.
4	Saaksham Bharat / Adult Education	To create a literate society and provide education for non-literate and neo-literate persons aged 15 years and above.
5	Rashtriya Uchchatar Shiksha Abhiyan (RUSA)	To improve the quality of higher education through multi-faceted reforms in the higher education system and related procedures.
6	Samagra Shiksha Abhiyan	A flagship programme for school education to ensure equitable and inclusive learning for all students.
7	Inclusive Education for the Disabled at Secondary Stage (IEDSS)	To increase enrolment of disabled and differently-abled students in secondary and higher education.
8	District Primary Education Programme (DPEP)	The main initiative is to revitalize primary education and achieve universalization of

		education at the primary level.
9	Draft National Policy on Education, 2019 (New Education Policy)	To promote cognitive development and enable reflective, procedural, and holistic development of children.

REVIEW OF RELATED RESEARCH :

Teachers belonging to joint families reported better awareness as compared to nuclear families on account of greater interaction and sharing of views with each other [14]. Kalyani et al. [15] reported the effect of four challenges of NEP 2020, namely quality, equity, affordability, accountability, and access, on the associated stakeholders (students, teachers, and parents).

RESEARCH DESIGN :

The present study is qualitative and exploratory in nature.

DATA COLLECTION :

The present study is based on secondary data retrieved from various research articles, journals, and ongoing research papers.

- Life skills such as communication, cooperation, teamwork, and resilience.
- Focus on regular formative assessment for learning rather than summative assessment, which encourages today's coaching culture.
- A rooted pride in India and its rich, diverse, ancient, and modern culture and knowledge systems as part of its traditions.
- Education is a public service. Access to quality education must be considered a basic right of every child.
- Substantial investment in a strong and vibrant public education system, along with encouragement and facilitation of genuine philanthropic private and community participation.

NIOS has launched a certificate course in higher education under the National Education Policy (NEP) 2020. Now, higher education students can study while being connected to Indian culture, values, and traditions. This is a unique initiative towards bringing change in education under the framework of ABBS 2025.

The main objective of NEP 2020 is to make the Indian education system modern, flexible, and holistic. Its goal is to move students away from rote learning and instead develop thinking ability, problem-solving skills, and practical knowledge, transforming India into a world-class knowledge superpower.

Objectives of the New Education Policy :

- **Holistic Development :** Emphasis on the physical, mental, and emotional development of students.

- **Equality and Inclusivity :** Equal opportunities for girls, students from rural areas, and students from disadvantaged groups.
- **Indian Knowledge Tradition :** Integrating Indian knowledge, culture, and traditions into education and promoting them.
- **Quality Education and System :** Improving the quality of education and bringing it up to international standards.
- **Technical and Vocational Education :** Providing technical and vocational courses/skills to students.
- **Universalization of Education :** Achieving a 100% Gross Enrolment Ratio (GER) in school education by 2030.
- **Innovation in Education :** Introducing new methods and techniques in education.
- **Flexibility in Education :** Making the education system flexible and accessible to everyone.
- **Internationalization of Education :** Making the education system global and international.
- The National Education Policy 2020 has brought major changes. After 34 years, a new education policy has come. It is called the National Education Policy (NEP) 2020. It focuses on both school education and higher education (college and vocational education). For this, a single regulatory body has been proposed for all higher education in India.

HIGHER EDUCATION :

As India moves towards becoming a knowledge society and economy—and keeping in view the requirements of the Fourth Industrial Revolution, characterised by an increasing proportion of employment opportunities for a creative, multidisciplinary, and highly skilled workforce—the higher education system must, at the earliest, be re-adjusted, re-vamped, and re-energised to meet these requirements.

At the level of society, the aim of higher education must be to enable the development of an enlightened, socially-conscious, knowledgeable, and skilled nation that can uplift its people and construct and implement robust solutions to its own problems. Higher education must thus form the basis for knowledge creation and innovation in the nation and thereby contribute deeply to a growing national economy. The purpose of quality higher education is, therefore, more than simply the creation of greater opportunities for individual employment; it represents the key to more vibrant, socially-engaged, and cooperative communities and a happier, cohesive, cultured, productive, innovative, progressive, and prosperous nation.

Financial Support for Students :

Financial assistance to students who need such financial support shall be made available. No student will be deprived of higher education because of financial inability. The National Scholarship

Portal (NSP) will be expanded to ensure that all students who require financial support to attend a public HEI will receive it, covering stipends, boarding, and lodging, and not just waivers of tuition fees.

Private HEIs will offer scholarships ranging from 100% to 25% for at least half of their students.

SERVICE ENVIRONMENT AND CULTURE :

The primary goal of overhauling the service environments and cultures of schools will be to maximise the abilities of teachers to do their jobs effectively, and to ensure that they are part of vibrant, caring, and inclusive communities of teachers, students, parents, principals, and other supporting staff, all of whom share a common goal: to ensure that our children are learning.

A very first requirement in this direction will be to ensure decent and pleasant service conditions at schools. Adequate and safe infrastructure, including working toilets, clean drinking water, clean and attractive spaces conducive to learning, electricity, computing devices, and internet, library and sports and recreational resources will be important to provide to all schools in order to ensure that teachers and students, including children of all genders and children with disabilities, receive a safe, non-violent, inclusive, and effective learning environment and are comfortable and inspired to teach and learn in their schools.

Recommendations :

To ensure the effective implementation of many of the recommendations contained herein, the concomitant expansion of the administrative structures and the creation of professionally qualified and competent educational planners and administrators are needed. A permanent Indian Education Service (IES) cadre comprising a specialist cadre of the bureaucracy will be created.

The IES will institutionalise a core professional capacity within the State and Central Governments in curriculum planning and development, pedagogy, educational policy, planning, administration, and financing under the sub-sectors within the education sector, in order to ensure effective planning, delivery, governance and management, and monitoring and evaluation of educational programmes.

The positions of Registrars of all universities shall be reserved to be filled by the members of this service, thereby bringing in professionalism in managing the universities.

The RSA will have a Permanent Secretariat of the Rashtriya Shiksha Aayog (PSRSA) that will be headed by an Executive Director (ED) who shall be a person of eminence in education, with a deep understanding of India's education system, a record of stellar public contribution, and broad experience of administration and leadership.

The Executive Director will have a five-year term of appointment, which will be renewable

one time. The ED shall be empowered to engage adequate staff, including experts in education and related fields, either on loan from educational institutions or recruited on a tenure basis.

The PSRSA will be charged with translating the vision of the RSA into action, assessing progress through continually analysing data, and making recommendations for corrective actions as needed.

Conclusion :

The new National Education Policy (NEP) 2020 is a progressive policy that aims at making the education system holistic, flexible, multidisciplinary, and aligned with the needs of the 21st century and the 2030 Sustainable Development Goals (SDGs). The intent of the policy is ideal in many ways, but its success depends on effective implementation.

The New Education Policy 2020 represents India's aspiration to become a knowledge powerhouse of the world by incorporating the best global educational practices. The global education development agenda reflected in Goal 4 (SDG 4) of the 2030 Agenda for Sustainable Development, adopted by India, provides the foundation for this policy.

REFERENCES :

- Aholjainam, M. I. (2012). Thematic analysis: a critical review of its process and evaluation. West East Journal of Social Sciences,
- Health Research, 26(23), 1802-1811
- Bowen, G. A. (2009).
- National Education Policy, 2020. https://www.mygov.in/sites/uplod files/NEP Final Engli sh0. pdf Holloway, I., & Galvin, K.(2016).
- Factors affecting the acceptance of elearning by students: A study of e- learning programs in Gwalior, India. South Asian Journal of Management, 26(1),
- Nowell, L.S. Norris, J.M., White, D.E., & Moules,
- Journal of Information Science 34 (1), 15-29. Singh, H., & Dey, A. K.(2020).
- Theoretical versus pragmatic design challenges in qualitative research. Nurse Researcher, 18(2), 39-51.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान–विज्ञान : एक समग्र अध्ययन

शिवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
ज. रा. दि. राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ. प्र.

शोध सार –

भारतीय ज्ञान–विज्ञान विश्व की प्राचीन और समृद्ध ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसमें विज्ञान, गणित, आयुर्वेद, योग, दर्शन, खगोल विज्ञान, कला और साहित्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान समाहित है। इस शोध में भारतीय ज्ञान परंपरा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख स्रोतों और उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। वेद, उपनिषद, वेदांग, पुराण, रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में निहित ज्ञान के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान–विज्ञान अनुभव, तर्क, नैतिकता और प्रकृति के संतुलन पर आधारित है।

इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान–विज्ञान की उपयोगिता और वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता को समझना है। यह परंपरा केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, स्वस्थ और मूल्यपरक बनाने का मार्ग भी प्रदान करती है। वर्तमान समय में योग, आयुर्वेद और भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वैश्विक स्तर पर महत्व बढ़ रहा है। अतः भारतीय ज्ञान–विज्ञान का संरक्षण और अध्ययन हमारी सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विरासत को समझने के लिए आवश्यक है।

बीज शब्द – नैतिकता, संरक्षण, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सैद्धांतिक ज्ञान, समृद्ध परंपरा, चिकित्सा, ज्योतिष, हस्तान्तरित, अभियांत्रिकी, उत्कृष्टता।

प्रस्तावना –

भारतीय ज्ञान–विज्ञान विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध और व्यवस्थित ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसकी शुरुआत वैदिक काल से मानी जाती है, जहाँ ज्ञान को केवल जानकारी प्राप्त करने का साधन नहीं, बल्कि मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का आधार माना गया। भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद, योग, गणित, ज्योतिष, दर्शन, वास्तुशास्त्र, कृषि, धातु विज्ञान तथा पर्यावरण संबंधी ज्ञान का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह ज्ञान अनुभव, तर्क, अवलोकन और निरंतर शोध पर आधारित रहा है।

प्राचीन भारत के महान विद्वानों जैसे आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, चरक, सुश्रुत, पतंजलि और कणाद ने गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, योग और दर्शन के क्षेत्र में ऐसे महत्वपूर्ण योगदान दिए, जिनका प्रभाव विश्वभर में देखा गया। भारतीय ज्ञान–विज्ञान की विशेषता यह है कि इसमें विज्ञान और आध्यात्मिकता का

संतुलित समन्वय मिलता है। यह केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यावहारिक जीवन, नैतिक मूल्यों, सामाजिक कल्याण और प्रकृति के संरक्षण पर भी समान रूप से बल देता है।

वर्तमान समय में भारतीय ज्ञान–विज्ञान की उपयोगिता पुनः बढ़ रही है। नई शिक्षा नीति (2020) के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा व्यवस्था में विशेष स्थान दिया गया है, जिससे नई पीढ़ी अपने सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विरासत से परिचित हो सके। आज योग, आयुर्वेद, ध्यान और भारतीय गणित जैसी विधाएँ विश्वभर में लोकप्रिय हो रही हैं। इसलिए भारतीय ज्ञान–विज्ञान का अध्ययन न केवल हमारे गौरवशाली अतीत को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणादायक तथा उपयोगी है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान का स्वरूप :

भारतीय ज्ञान–विज्ञान भारत की प्राचीन और समृद्ध ज्ञान परंपरा है। इसमें गणित, आयुर्वेद, योग, खगोल विज्ञान, दर्शन और जीवन जीने की उपयोगी शिक्षाएँ शामिल हैं। यह केवल वैज्ञानिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि नैतिकता, प्रकृति के संरक्षण और मानव कल्याण पर भी बल देता है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को स्वस्थ, संतुलित और सुखी बनाना है। जिसके उदाहरण इस प्रकार से देखने को पाय गए हैं –

ज्ञान की परिभाषा :-

'ज्ञान वह सूचना, तथ्य, समझ और अनुभव है जिसे व्यक्ति द्वारा सीखा, अर्जित या समझा जाता है।'[1]

ज्ञान किसी विशेष विषय या वस्तु के बारे में गहन जानकारी और समझ का परिणाम होता है। ज्ञान केवल जानकारी तक सीमित नहीं होता, बल्कि व्यक्ति की अनुभवजनित समझ, तर्क और विश्लेषणात्मक क्षमता को भी शामिल करता है।

'भारतीय ज्ञान परम्परा का अर्थ है, भारत में कई सहस्राब्दियों से चली आ रही ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य और सांस्कृतिक विचारों की समृद्ध परंपरा से उपजी ग्रन्थ–राशि। यह परंपरा धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक ज्ञान का समुच्चय है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है। इस ज्ञान परंपरा में आधुनिक विज्ञान के प्रबंधन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अदभुत खजाना है।'[2]

भारतीय ज्ञान परम्परा भारत की प्राचीन और समृद्ध ज्ञान–संपदा है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही है। इसमें धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला और जीवन–प्रबंधन से संबंधित अमूल्य ज्ञान का विशाल भंडार निहित है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। वैदिक काल से ही भारत में शिक्षा, गणित, आयुर्वेद, खगोल विज्ञान और दर्शन का निरंतर विकास हुआ। यही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारतीय ज्ञान–विज्ञान को विश्व की प्राचीन और महत्वपूर्ण ज्ञान परंपराओं में स्थान दिलाती है। जिसके उदाहरण इस प्रकार से प्रस्तुत है –

- **वैदिक काल** – वैदिक काल भारतीय ज्ञान–विज्ञान का प्रारंभिक और सबसे महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस समय वेदों के माध्यम से शिक्षा, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष और दर्शन जैसे अनेक विषयों का विकास हुआ। इसी काल ने भारतीय ज्ञान परंपरा की सुदृढ़ नींव रखी। जिसका उदाहरण इस प्रकार से प्रस्तुत है –

आचार्य यास्क निरूक्त में कहते हैं– **'नहह्वेषु प्रत्यक्षमस्तिअनुषेरतपससो वा।'**[3]

अर्थात् जो ऋषि या तपस्वी नहीं हैं वह मंत्रों के यथसार्थ ज्ञान को नहीं जान सकता। अतः जिस प्रकार पूर्व को जानने के लिए पूर्व की ओर ही गमन करना होता है, उसी प्रकार आर्ष प्रणीत सिद्धान्तों व सुत्रों को

समझने के लिए उन्ही के अनुरूप चिंतन मनन के लिए अग्रसर होना होगा।

आचार्य यास्क के अनुसार वास्तविक ज्ञान केवल शब्दों के अध्ययन से प्राप्त नहीं होता, बल्कि तप, साधना, अनुभव और गहन चिंतन से प्राप्त होता है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा में ज्ञान का आधार प्रत्यक्ष अनुभव, तर्क और आत्मानुभूति है। इसलिए किसी भी शास्त्र का सही बोध उसके मूल सिद्धांतों को समझकर और उनका व्यवहार में अनुसरण करके ही संभव है। यही दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परंपरा को वैज्ञानिक, प्रमाणिक और जीवनोपयोगी बनाता है।

- **उत्तरवैदिक एवं शास्त्रीय काल** – उत्तरवैदिक एवं शास्त्रीय काल में भारतीय ज्ञान–विज्ञान का व्यापक विकास और विस्तार हुआ। इस काल में दर्शन, गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण तथा साहित्य जैसे अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इसी समय अनेक महान विद्वानों ने अपने ज्ञान और शोध से भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाया। जिसका उदाहरण इस प्रकार से देखने को पाया गया है –

'ईसा पूर्व तीसरी शती में आचार्य भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' शीर्षक ग्रंथ की रचना की। यद्यपि यह ग्रंथ नाट्य कला के संदर्भ में सैद्धान्तिक विवेचन का ग्रंथ है परन्तु, इसमें नाटक व साहित्य के साथ अन्य कलाओं को सैद्धान्तिक आधार प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में नाटक के प्रदर्शन के लिए बनाए जाने वाले रंगमंच के प्रकारों एवं उनके आकारगत विवेचन को पढ़कर वर्तमान नगरीय अभियांत्रिकीय सिविल इंजीनियरिंग की पुस्तकें और सूत्र फीके नजर आते हैं।'[4]

आचार्य भरतमुनि का नाट्यशास्त्र केवल नाट्यकला का ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान–विज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें रंगमंच की रचना, वास्तु, ध्वनि, मापन और संरचना संबंधी सिद्धांतों का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में कला और विज्ञान का समन्वित विकास हुआ था। यह ग्रंथ भारतीय ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिक दृष्टि, व्यावहारिकता और तकनीकी उत्कृष्टता का प्रमाण है।

- **मध्यकाल एवं आधुनिक काल** – मध्यकाल और आधुनिक काल में भारतीय ज्ञान–विज्ञान ने अनेक चुनौतियों के बावजूद अपना विकास जारी रखा। इस अवधि में पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण हुआ तथा आधुनिक विज्ञान और शिक्षा के साथ उसका समन्वय भी स्थापित हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान–विज्ञान ने राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर नई पहचान प्राप्त की। मध्यकाल में ज्ञान–विज्ञान का उदाहरण इस प्रकार से देखने को पाया गया है –

'भारत में मध्यकाल विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसमें पारंपरिक भारतीय ज्ञान और इस्लामी एवं यूरोपीय स्रोतों से आए नए विचारों का संगम देखने को मिला। इस युग में संस्थानों, तकनीकी कार्यशालाओं का उदय हुआ और गणित, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, खगोल विज्ञान, चिकित्सा एवं कृषि के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान प्राप्त हुए।'[5]

मध्यकाल में भारतीय ज्ञान–विज्ञान का निरंतर विकास होता रहा। इस समय भारतीय ज्ञान के साथ इस्लामी और यूरोपीय विचारों का भी प्रभाव पड़ा। गणित, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, कृषि और तकनीक जैसे क्षेत्रों में नई प्रगति हुई। इससे भारतीय ज्ञान परंपरा और अधिक समृद्ध तथा उपयोगी बनी।

भारतीय ज्ञान–विज्ञान के प्रमुख स्रोत :

भारतीय ज्ञान–विज्ञान के प्रमुख स्रोत हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं। इन स्रोतों में धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा, गणित और शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण ज्ञान सुरक्षित है। इन्हीं के आधार पर भारत में

ज्ञान–विज्ञान का विकास हुआ और यह परंपरा आगे बढ़ती रही। जिसके उदाहरण इस प्रकार से देखने को पाय गए हैं –

• **वेद एवं उपनिषद** – वेद और उपनिषद भारतीय ज्ञान–विज्ञान के सबसे प्राचीन और विश्वसनीय स्रोत हैं। इनमें प्रकृति, मानव जीवन, आत्मज्ञान, चिकित्सा, शिक्षा और दर्शन से संबंधित महत्वपूर्ण ज्ञान का वर्णन मिलता है। इन ग्रंथों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को मजबूत आधार प्रदान किया। शुक्ल यजुर्वेद का एक उदाहरण इस प्रकार से देखने को पाया गया है –

'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।'[6]

इस मंत्र में बताया गया है कि मनुष्य को विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अविद्या अर्थात् भौतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान से मनुष्य संसार की समस्याओं को समझता और उनका समाधान करता है, जबकि विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान से जीवन के उच्च उद्देश्य को प्राप्त करता है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान में सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान को समान महत्व दिया गया है। यही समन्वय भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता है।

मुण्डक उपनिषद् के प्रथम अध्याय में इस प्रकार से उदाहरण देखने को पाया गया है –

'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चौवापरा च।'[7]

अर्थात् ज्ञान दो प्रकार का है– अपरा (लौकिक/वैज्ञानिक) और परा (आध्यात्मिक)। यह भारतीय शिक्षा–दर्शन और ज्ञान–विज्ञान का मूल सिद्धांत है।

• **वेदांग** – वेदांग वेदों के अध्ययन और उनके सही ज्ञान को समझने के लिए विकसित सहायक शास्त्र हैं। इनमें शिक्षा, व्याकरण, छंद, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष जैसे विषय शामिल हैं। वेदांगों ने भारतीय ज्ञान–विज्ञान के विकास और संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वेदांग का उदाहरण इस प्रकार से प्रस्तुत है –

'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।'[8]

वेदों में वर्णित यज्ञों को निश्चित समय पर किए जाते हैं। इसलिए काल–निर्धारण का शास्त्र (ज्योतिष) अत्यंत आवश्यक है। जो ज्योतिष को जानता है, वही यज्ञों का यथार्थ ज्ञान रखता है।

• **पुराण** – पुराण भारतीय ज्ञान–विज्ञान और सांस्कृतिक परंपरा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें सृष्टि, भूगोल, खगोल, इतिहास, धर्म, समाज और नैतिक जीवन से संबंधित अनेक विषयों का वर्णन मिलता है। पुराणों ने भारतीय ज्ञान को सरल और जनसुलभ रूप में संरक्षित एवं प्रसारित किया। इस भावार्थ का उदाहरण प्रस्तुत है –

'यावान् वै सहस्रकिरण उदयास्तमयौ गिर्योः।
तावता पृथिवी मानं व्याख्यातं मुनिसत्तमैः।।'[9]

अर्थात् सूर्य के उदय और अस्त के आधार पर पृथ्वी के विस्तार और उसकी व्यवस्था का वर्णन ऋषियों ने किया है। यह प्राचीन भारतीय खगोल एवं भूगोल संबंधी ज्ञान का संकेत देता है।

• **रामायण एवं महाभारत** – रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति तथा ज्ञान–विज्ञान के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इनमें शिक्षा, राजनीति, युद्धकला, चिकित्सा, नैतिकता और सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक ज्ञान का वर्णन मिलता है। इन महाकाव्यों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध और प्रेरणादायक बनाया। रामायण का अनुवादित ग्रंथ रामचरितमानस का उदाहरण इस प्रकार से प्रस्तुत है –

'बंदउँ गुरू पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर।'[10]

इस श्लोक में गुरु को ज्ञान का स्रोत और अज्ञान को दूर करने वाला बताया गया है। गुरु के वचन सूर्य के समान हैं, जो मनुष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु को ज्ञान, संस्कार और जीवन मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण आधार माना गया है। यह शिक्षा, अनुभव और ज्ञान के महत्व को दर्शाता है।

इसी प्रकार से महाभारत का उदाहरण इस प्रकार से प्रस्तुत है –

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'[11]

इस श्लोक में ज्ञान को संसार की सबसे पवित्र और श्रेष्ठ शक्ति बताया गया है। ज्ञान के माध्यम से मनुष्य अज्ञान को दूर करके सत्य और विवेक को प्राप्त करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को केवल जानकारी नहीं, बल्कि जीवन को सही दिशा देने वाला साधन माना गया है। यह मानव के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होता है।

निष्कर्ष –

भारतीय ज्ञान–विज्ञान विश्व की प्राचीन और महत्वपूर्ण ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसमें विज्ञान, चिकित्सा, गणित, दर्शन, योग और जीवन से जुड़े अनेक विषयों का ज्ञान मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में केवल जानकारी को महत्व नहीं दिया गया, बल्कि अनुभव, नैतिकता, प्रकृति संरक्षण और मानव कल्याण पर भी जोर दिया गया है।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देकर विश्व को नई दिशा दी। आज भी योग, आयुर्वेद, भारतीय गणित और पर्यावरण संबंधी विचारों का महत्व बना हुआ है। इसलिए भारतीय ज्ञान–विज्ञान हमारी मूल्यवान धरोहर है, जिसका संरक्षण और अध्ययन वर्तमान तथा भविष्य के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. https://peoplesuniversity.edu.in/pu&uploads.
2. https://hi.wikiquote.org/wiki.
3. परिहार, सावित्रा एवं चौहान, प्रमा, प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और इतिहास, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एन्हांस्ड रिसर्च इन एजुकेशनल डेवलपमेंट, खंड–12, अंक–1, जनवरी–फरवरी, पृ.–124
4. ओझेता, विदुषी, एवं दयामित्र पाठक। 'भारतीय ज्ञान परम्परा और शोध।' द एशियन थिंकर, वर्ष 4, खंड 3, अंक 15, जुलाई–सितंबर 2022, पृ.–90
5. https://share.google/KvGdOpdIGENR3m49g

6. शुक्ल यजुर्वेद / 40 / 14
7. मुण्डक उपनिषद् 1 / 1 / 4
8. लगध, वेदाङ्ग ज्योतिषम्, (याजुष–ज्योतिष), श्लोक 3
9. वेदव्यास, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, गीता प्रेस, गोरखपुर, सन् – 2023
10. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 1. गीता प्रेस, गोरखपुर, सन् –2023
11. व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता, 6 / 4 / 38

ईमेल– jaishreekamtanath@gmail.com
Mob : 9919881145

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

समाज में किन्नरों की स्थिति : चुनौतियाँ और अवसर

नितु कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
रांची विश्वविद्यालय।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, लेकिन जब वही समाज विभिन्न भिन्नताओं से भरा हो तो साहित्य लेखन में भी विभिन्न विषय मिलते हैं, लेखनी को सिर्फ ६ हमारा समाज विविधता से भरा है। स्त्री और पुरुष के साथ किन्नर समुदाय भी समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उसके बावजूद, वो सभी समय तक किन्नरों को समाज में स्वीकारा नहीं बल्कि उनके साथ सामाजिक उपेक्षा, अवमान और (असमानता) का व्यवहार किया है। उनकी पहचान को, उनकी स्वीकार करने के बजाय उन्हें उपेक्षित और मध्यधारा से अलग समझा गया। साहित्य अपने मोर्चे समाजहित की बात को लेकर स्वतंत्र, गम्भीर और तरफ खड़ा है, इसका उद्देश्य है, समाज के उन वर्गों को दृष्टि से उठाकर मुख्य धारा से जोड़ना जो किसी वजह से समाज में उपेक्षा के शिकार हुए हैं। साहित्य का काम है, कि समय–समय पर साहित्य सच्चे विषयों को पन्नों को समाज से जोड़ता रहे।

वर्तमान समय में किन्नर सबसे अधिक पीड़ित प्रताड़ित समुदाय की श्रेणी में आता है, हमारा समाज चाहे कितना भी विकसित हो किंतु हम इस सत्य को स्वीकारना नहीं चाहते हैं कि किन्नर भी इसी समाज का हिस्सा हैं। मानसिक रूप से हम स्वीकार नहीं कर पाते हैं कि किन्नर भी इसी समाज का हिस्सा हैं, यही कारण है कि वे लोग भी कष्टित जीवन जीने को विवश हैं। उन्हें न ही मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है और न ही उनका विकास करने के लिए किसी तरह के काम उठाए जा रहे हैं, उन्हें आज भी समाज द्वारा ठुकराए जा रहे हैं गया है। किन्नर जीवन मुख्य रूप से देखा जाए तो देह का व्यापार है, जो देह की विकृति के कारण मानसिक तनाव को उत्पन्न करती है, देह व्यापार से पहले भी वह अपनी शारीरिक भिन्नता को लेकर समाज द्वारा प्रताड़ित किए जाते हैं। अतः उन प्रताड़नाओं का रूप विकराल हो जाता है, तब उसका अंतिम उपाया देह व्यापार के रूप में ग्रहण होता है। यहाँ वे या तो खुशी से या दुखी होकर देह का व्यापार करने को विवश हो जाते हैं, लेकिन अगर आज भी हमारा समाज इस शारीरिक विकृति को अपनाकर उसे समाज में मान प्रतिष्ठा अपनाने मिले तो किन्नर उस नर्क से बाहर निकल जाएंगे, निकास संभव है, वे भी गरिमा का जीवन जी सकेंगे। उनका संपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन यापन प्रणाली सुरक्षित है।

प्रो० सुरेश माहेश्वरी ने किन्नर की समस्या और स्थिति पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की है :

'परिवार, कुल, समाज, गाँव का नाम उन्हें नहीं मिलता है। फलतः वे अनाम, अपनानी व्यक्तित्वहीन, बिना पहचान का जीवन जीने को बाध्य हैं।'

- उनका अभिशप्त जीवन जीने को बाध्य है। उनसे कोई भी बात या संबंध स्थापित नहीं करना चाहता है।
- सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में उनकी उपस्थिति नकार दी गई है। फलतः उपेक्षा के शिकार हैं।
- स्वास्थ्य, शिक्षा के कोई अवसर उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन अब भारत में किन्नर समुदाय की वर्तमान स्थिति को पिछले कुछ वर्षों में सकारात्मक बदलाव आए हैं, लेकिन सामाजिक और आर्थिक स्तर पर चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं।

कानूनी और अधिकार स्तर पर किन्नरों की स्थिति में :

- वर्ष 2014 में सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले ने किन्नरों को 'तीसरे लिंग' (Third Gender) के रूप में कानूनी मान्यता दी गई।
- सरकार ने उनके अधिकारों की रक्षा के लिए 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 2019' लागू किया।
- अब उन्हें मतदान, पहचान पत्र और पासपोर्ट में अपनी अलग पहचान दर्ज करने का कानूनी अधिकार मिला है।

सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव :

- समाज में अब इस समुदाय के प्रति धीरे–धीरे जागरूकता बढ़ रही है।
- धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में उनकी स्वीकार्यता बढ़ी है, जैसे – किन्नर अखाड़ों का गठन जिससे उन्हें धार्मिक व सामाजिक सम्मान मिल रहा है।

वर्तमान चुनौतियाँ और अवसर :

किन्नर समुदाय की सबसे बड़ी चुनौतियों में आज भी शिक्षा और रोजगार की कमी है, आज भी कुछ बड़े वर्ग अच्छी शिक्षा और नियमित नौकरियों से वंचित हैं, अगर उन्हें शिक्षा और रोजगार मिले तो अस्तित्व की समस्या दूर हो सकती है। आर्थिक समस्या की वजह से किन्नर समुदाय कई देशों में नाचने गाने का काम करता है, या फिर भिक्षावृत्ति करके जीवन चलाने को विवश हो जाते हैं। आर्थिक उपार्जन की विवशता के कारण कई बार इनमें वेश्यावृत्ति का चलन भी प्रमुख हो जाता है, जबकि भारत में वेश्यावृत्ति को गैरकानूनी माना जाता है, लेकिन आर्थिक विवशता के कारण ये लोग वेश्यावृत्ति का भी काम करते हैं। दुबारा इनको शिक्षा और रोजगार से जोड़ पाएगा तभी इनको समाज में भी समानता मिल पाएगी। किन्नर समुदाय के प्रतिष्ठित के साथ हम खुद आगे आने वाले बिखराव करने जा रहे हैं। "शिक्षा से बड़ी कोई संपत्ति नहीं है जो शिक्षित नहीं वह पशु के समान माना जाता है।" हिजड़ों की समाज में कोई स्कूल नहीं है। उसमें हिजड़े की शिक्षा परिक्षित होते हैं। स्कूल हिजड़े बच्चों हक परिवार को कमी नहीं होनी चाहिए लेकिन हक की स्थिति उसे हक हीन के लिए मजबूर करती है। हक हीन का निर्णय तभी करता है, जब उसे अपने जैसे ही व्यक्ति का साथ मिले। अन्य हिजड़ों की संगति में स्कूल हिजड़े अपने आपको मानसिक रूप से, सामाजिक रूप से, योग रूप से ठीक स्थान पर महसूस करता है। लेकिन शिक्षा के अभाव में उसे रोजगार नहीं मिलता। जीवन जीने के लिए पेट पालने के लिए कोई चुनाव, कोर्ट, मेहनत मजदूरी सभी लोगों को करनी पड़ती है। अन्य को बाद कई लड़कों को परिवार और समाज द्वारा त्याग दिया जाता है, जिससे उन्हें गुलामी में धनिक, मुखिया की रातभर सेवा पड़ती है। आवास, स्वास्थ्य सेवाओं और नागरिक /सुविधाओं का प्राप्त करते समय उन्हें आज भी सामाजिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। अभी भी समाज

और सरकार को/नितियों को बदलने की आवश्यकता है, तभी किन्नर समुदाय भी इज्जत सम्मान और समानता से जीवन व्यतीत कर पाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :

- डॉ. विनय कुमार पाठक रू किन्नर विमर्श : दशा व दिशा।
- नीरजा माथुर, यथार्थ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- तृष्णा ताली, प्रदीप सौरभ वाणी प्रकाशन।
- डॉ. एम. फिरीज, खान गाईडलाइन्स : कथा हार्मोन अनुसंधान पब्लिशर्स हाउस।
- निर्मला मुराड़िया, उसामांडी, सामयिक प्रकाशन।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन शिक्षा प्रणाली और उसका वर्तमान स्वरूप

Dr. Rajdulari Makhecha
Assistant Professor, History.
Syon College, Abohar.

सारांश :

हमारे भारतीय उपमहाद्वीप में शिक्षा की परंपरा किसी एक संस्थागत ढाँचे तक सीमित नहीं रही। वैदिक अध्ययन–केंद्र, उपनिषदीय संवाद–परंपरा, बौद्ध और जैन विहार, नगरों के व्यावसायिक प्रशिक्षण–स्थल तथा क्षेत्रीय पाठशालाएँ कृ इन सबने मिलकर एक बहुस्तरीय शैक्षिक परिदृश्य बनाया। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य इसी बहुलता की जाँच करना है। अध्ययन गुणात्मक, ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक और समीक्षा–आधारित हैय इसमें प्रकाशित शोध–ग्रंथों, पुरातात्त्विक विवरणों, अंतरराष्ट्रीय संस्थागत प्रलेखों तथा नीति–दस्तावेजों का उपयोग किया गया है। इस व्यापकता को समझे बिना प्राचीन शिक्षा का मूल्यांकन कठिन है। यहाँ एक और बात ध्यान देने योग्य है। लोकप्रिय चर्चा में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रायः एक ही चित्र में सिमट जाती है – वन में स्थित आश्रम, गुरु के समीप बैठा शिष्य। यह चित्र गलत नहीं है, पर अधूरा है। शार्फे (2002) के विस्तृत सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि मौखिक परंपरा, छोटे निजी अध्यापन–केंद्र, मंदिर–विद्यालय और विशाल विहार – ये सब अलग–अलग समय और क्षेत्रों में साथ–साथ अस्तित्व में थे।

प्रमुख तर्क यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा को एकरूप 'गुरुकुल प्रणाली' कहना ऐतिहासिक रूप से भ्रामक है। इन परंपराओं ने समग्र शिक्षा, तर्क–वितर्क, आचरण–निर्माण, व्यावहारिक प्रशिक्षण और गुरु–शिष्य संबंध जैसे महत्त्वपूर्ण विचार दिए। साथ ही वे ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में कार्यरत थीं जिनमें जाति, लिंग, वर्ग और क्षेत्र के आधार पर शैक्षिक अवसर असमान रूप से वितरित थे। वर्तमान भारतीय शिक्षा में इस परंपरा के अनेक तत्त्व दिखाई देते हैं, परंतु वे मूल रूप में जीवित नहीं हैं। निष्कर्ष यह है कि इस परंपरा का उपयोग संवैधानिक समानता, वैज्ञानिक परीक्षण और समावेशी शिक्षा–व्यवस्था के ढाँचे में आलोचनात्मक पुर्नव्याख्या के रूप में ही सार्थक हो सकता है।

मुख्य शब्द :

भारतीय ज्ञान परंपरा, प्राचीन भारतीय शिक्षा, गुरुकुल, नालंदा, गुरु–शिष्य संबंध, बौद्ध शिक्षा, समकालीन शिक्षा।

1. प्रस्तावना :

हमारे भारतीय सभ्यता में शिक्षा को कभी केवल जीविका का साधन नहीं माना गया, यद्यपि जीविका उसका एक स्वाभाविक उद्देश्य अवश्य रही। संस्कृत में प्रयुक्त विद्या और ज्ञान शब्द जिस अर्थ–क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं, वह आधुनिक 'शिक्षा' शब्द से अधिक व्यापक है। विद्या में विषय–विशेष की दक्षता, तर्क करने की क्षमता, आचरण की समझ और व्यावहारिक कौशल – सब सम्मिलित थे। भारत मैं आज इस विषय की प्रासंगिकता बढ़ी है, क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बाद भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम में समाहित करने के प्रयास तेज हुए हैं। ऐसे समय में दो अतियों से बचना आवश्यक है। एक ओर वह दृष्टि है जो अतीत को दोषरहित स्वर्णयुग मानती है और प्रमाण की माँग को अनादर समझती है। दूसरी ओर वह दृष्टि है जो पूरी परंपरा को केवल धार्मिक अवशेष मानकर खारिज कर देती है। दोनों ही इतिहास–लेखन की दृष्टि से अपर्याप्त हैं।

इस शोध–पत्र का केंद्रीय तर्क यह है : प्राचीन भारतीय शिक्षा एक बहुल, क्षेत्रीय रूप से विविध और आंतरिक रूप से असमान व्यवस्था थी, जिसकी बौद्धिक उपलब्धियाँ वास्तविक हैं और जिसकी सामाजिक सीमाएँ भी उतनी ही वास्तविक हैं। अतः उसका समकालीन उपयोग पुनरुत्थान नहीं, बल्कि आलोचनात्मक पुनर्निर्माण होना चाहिए।

2. अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध-विधि :

इस अध्ययन के पाँच उद्देश्य हैं – प्राचीन भारतीय शिक्षा के दार्शनिक आधारों की जाँच करना, उसकी प्रमुख संस्थाओं, पाठ्यक्रम और शिक्षण–पद्धतियों का विवरण देनाय उसकी शक्तियों तथा सामाजिक सीमाओं का मूल्यांकन करना, प्राचीन काल से वर्तमान तक उसके रूपांतरण को रेखांकित करना और समकालीन भारतीय शिक्षा के लिए उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना। इनसे जुड़े शोध–प्रश्न हैं : प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं? वैदिक, बौद्ध, जैन तथा अन्य परंपराओं ने शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया? इस परंपरा के कौन–से तत्त्व आज भी दिखाई देते हैं? और आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में प्राचीन शैक्षिक विचारों को लागू करते समय कौन–सी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं?

विधि ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक है। इसमें शोध–ग्रंथों, समीक्षित लेखों, पुरातात्त्विक स्थल–विवरणों, यूनेस्को प्रलेखों तथा सरकारी नीति–दस्तावेजों का उपयोग हुआ है। कोई सर्वेक्षण, साक्षात्कार या क्षेत्र–कार्य नहीं किया गया।

स्रोतों के चयन में यह ध्यान रखा गया कि इस विषय का शोध–साहित्य स्वयं एक शताब्दी से अधिक पुराना है। केअ (1918) और आप्टे (1961) जैसे आरंभिक अध्ययन आज भी उपयोगी हैं, पर वे अपने काल की व्याख्यात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं। इसलिए उनके विवरणों को शार्फे (2002) जैसे परवर्ती और अधिक सतर्क सर्वेक्षणों के साथ मिलाकर पढ़ा गया है।

यहाँ एक पद्धतिगत चेतावनी आवश्यक है। प्राचीन भारतीय शिक्षा के विषय में उपलब्ध अधिकांश ग्रंथ आदर्श–निरूपक हैं – वे बताते हैं कि शिक्षा कैसी होनी चाहिए, न कि यह कि वह हर क्षेत्र और काल में वास्तव में कैसी थी। इस अंतर को भुला देना इस क्षेत्र की सबसे सामान्य भूल है।

3. भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ और आधार :

भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल आध्यात्मिक साहित्य तक सीमित करना उसका संकुचन है। इस परंपरा में दर्शन और आचारशास्त्र के साथ–साथ व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्विज्ञान, राजनीति, कृषि,

स्थापत्य तथा विविध शिल्प भी सम्मिलित रहे (शार्फे, 2002, घोष, 2001)। इस परंपरा की एक विशिष्टता ज्ञान–संचरण की पद्धति में थी। लेखन–सामग्री दुर्लभ और नाशवान थी, अतः मौखिक संचरण केवल विकल्प नहीं, आवश्यकता था। श्रवण, मनन और निदिध्यासन की क्रमिक प्रक्रिया इसी संदर्भ में विकसित हुई। मुखर्जी (1947) ने वैदिक अध्ययन–पद्धति के विश्लेषण में दिखाया कि पाठ–शुद्धि बनाए रखने के लिए अत्यंत सुनियोजित तकनीकें विकसित की गई थीं।

दूसरी तरफ विशिष्टता संवाद और वाद की केंद्रीयता थी। उपनिषदों की संरचना ही प्रश्नोत्तर पर आधारित है। बौद्ध और जैन परंपराओं में वाद–पद्धति और भी औपचारिक हुई, जहाँ तर्क के नियम, पक्ष–प्रतिपक्ष की मर्यादा और खंडन की विधियाँ विकसित हुईं।

तीसरी और विशिष्टता शिक्षक, शिष्य, समुदाय और परिवेश के बीच का संबंध था। शिक्षा प्रायः एक सामाजिक संबंध के भीतर घटित होती थी, न कि व्यक्ति और पाठ्यपुस्तक के बीच। इसका एक लाभ था 'व्यक्तिगत ध्यान। और एक सीमा भी' यह संबंध जिस समाज में बनता था, उसकी असमानताएँ भी उसमें प्रवेश कर जाती थीं।

4. प्राचीन भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास :

4.1 वैदिक एवं गुरूकुल परंपराएँ :

भारत मैं वैदिक शिक्षा में शिष्य प्रायः गुरु के घर रहकर अध्ययन करता था। अनुशासन, दिनचर्या और सेवा इस व्यवस्था के अंग थे। पाठ कंठस्थ किया जाता, फिर उसका अर्थ–विचार होता, और अंततः शिष्य से अपेक्षा की जाती कि वह उस पर स्वतंत्र रूप से मनन करे। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह व्यवस्था न तो सर्वत्र एक जैसी थी, न सभी कालों में। आल्तेकर (1944) और मुखर्जी (1947) दोनों ने भिन्न–भिन्न कालखंडों में अध्ययन–अवधि, प्रवेश–नियमों और पाठ्यक्रम में पर्याप्त अंतर दर्ज किए हैं। 'गुरुकुल' को एकवचन में एक स्थिर संस्था मान लेना इसी विविधता की उपेक्षा है।

4.2 बौद्ध एवं जैन शैक्षिक परंपराएँ :

बौद्ध विहार आरंभ में आवासीय धार्मिक समुदाय थे, पर समय के साथ वे अध्ययन और शास्त्रार्थ के केंद्र बन गए। यहाँ दर्शन, तर्कशास्त्र, व्याकरण, आयुर्विज्ञान और साहित्य का अध्ययन होता था, और पांडुलिपियों की प्रतिलिपि तथा संरक्षण एक संस्थागत कार्य बन गया (मुखर्जी, 1947, शार्फे, 2002)। जैन परंपरा में ग्रंथ–संरक्षण की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। जैन भंडारों में सुरक्षित पांडुलिपियाँ आज भी भारतीय पांडुलिपि–संपदा का महत्त्वपूर्ण भाग हैं।

4.3 उन्नत अध्ययन के प्रमुख केंद्र :

तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी और ओदंतपुरी को प्रायः 'विश्वविद्यालय' कहा जाता है। यह शब्द सावधानी से प्रयोग करने योग्य है, क्योंकि आधुनिक विश्वविद्यालय की विधिक संरचना 'चार्टर, संबद्धता, मानकीकृत उपाधि' इन केंद्रों में नहीं थी। इन्हें 'उन्नत अध्ययन के केंद्र' या 'मठीय–शास्त्रीय संस्थान' कहना ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक सटीक है। यूनेस्को के प्रलेखन में भी नालंदा को मठीय–सह–शास्त्रीय संस्थान के रूप में वर्णित किया गया है (यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र, अदिनांकित–क)। तक्षशिला का उदाहरण इस अंतर को स्पष्ट करता है। उपलब्ध विवरणों के अनुसार वहाँ कोई एक केंद्रीय संस्था नहीं थी, विद्यार्थी अलग–अलग प्रसिद्ध आचार्यों के पास जाकर अध्ययन करते थे, और नगर की ख्याति इन्हीं आचार्यों के समुच्चय से बनी थी (मुखर्जी,

1947)। नालंदा का स्वरूप इससे भिन्न था – वहाँ आवासीय व्यवस्था, संगठित पाठ्यक्रम और दीर्घकालिक संस्थागत निरंतरता के प्रमाण मिलते हैं (यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र, अदिनांकित–क)। दोनों को एक ही श्रेणी में रखना इसी संरचनात्मक भेद को मिटा देता है। इनके अतिरिक्त क्षेत्रीय मंदिर, मठ, पाठशालाएँ और शिल्प–प्रशिक्षण केंद्र भी थे, जिनकी संख्या इन बड़े केंद्रों से कहीं अधिक रही होगी, यद्यपि उनका अभिलेखीय साक्ष्य तुलनात्मक रूप से कम है। इतिहास–लेखन की एक स्थायी समस्या यही है कि साक्ष्य प्रायः बड़ी और संरक्षण–प्राप्त संस्थाओं का बचता है, जबकि साधारण पाठशालाओं का नहीं और इससे अतीत का चित्र अनजाने ही अभिजात्य की ओर झुक जाता है।



चित्र 1. नालंदा महाविहार, बिहार के पुरातात्त्विक अवशेष : एक आवासीय एवं शास्त्रीय अध्ययन–केंद्र।
छायाकार : Mrityunjay.nalanda, 10 जून 2012 (Wiki Loves Monuments 2012)।
स्रोत : Wikimedia Commons। लाइसेंस CC BY-SA 3.0।
Image source : Wikimedia Commons

5. पाठ्यक्रम, शिक्षण–पद्धति और संस्थागत संगठन :

पाठ्यक्रम की व्यापकता इस परंपरा की एक वास्तविक उपलब्धि थी। वेद और दर्शन के साथ व्याकरण, छंद और साहित्य पढ़ाए जाते थे, तर्कशास्त्र और वाद–विधि का स्वतंत्र स्थान था, गणित और ज्योतिष का अध्ययन होता था। आयुर्विज्ञान एक विकसित क्षेत्र था और राजनीति, प्रशासन तथा अर्थ–व्यवस्था से जुड़े विषय भी पढ़ाए जाते थे (शार्फे, 2002)। इनके समानांतर कृषि, धातुकर्म, वस्त्र–निर्माण और अन्य शिल्पों का प्रशिक्षण प्रायः पारिवारिक या श्रेणी–आधारित व्यवस्था में होता था (मुखर्जी, 1947)। शिक्षण–पद्धतियों में मौखिक उपदेश, आवृत्ति, प्रश्नोत्तर, संवाद, शास्त्रार्थ, निरीक्षण, व्यावहारिक अभ्यास तथा व्यक्तिगत निर्देशन सम्मिलित थे। यहाँ स्मरण–पद्धति के विषय में एक भ्रम दूर करना आवश्यक है। पांडुलिपि–दुर्लभ समाज में कंठस्थ करना ज्ञान को सुरक्षित रखने की तकनीक थी, स्वयं में लक्ष्य नहीं। आज की यांत्रिक रटंत से इसकी तुलना ऐतिहासिक रूप से भ्रामक है, क्योंकि आवृत्ति के बाद अर्थ–विचार और वाद अपेक्षित था। शिक्षण–प्रसंगों के दृश्य साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। कर्नाटक का पट्टदकल स्मारक–समूह, जो सातवीं–आठवीं शताब्दी के चालुक्य काल का है, अपने उत्कीर्णनों के लिए उल्लेखनीय है (मिचेल, 2014य भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, अदिनांकितय यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र,

अदिनांकित–ख)। ऐसे उत्कीर्णन ग्रंथ–साक्ष्य के पूरक हैं, यद्यपि उनकी व्याख्या में सतर्कता आवश्यक है – 'शिलाचित्र प्रायः आदर्श दृश्य प्रस्तुत करते हैं, दैनिक व्यवहार का अभिलेख नहीं। संस्थागत संगठन की दृष्टि से इन केंद्रों में शिक्षक और शिष्य दोनों के लिए स्पष्ट अपेक्षाएँ थीं। कुछ परंपराओं में शिक्षा आवासीय थी। संस्थाओं का संचालन राजकीय अनुदान, धार्मिक दान और सामुदायिक सहयोग पर निर्भर था' विशेषकर बड़े विहारों के लिए भूमि–अनुदान महत्त्वपूर्ण थे (घोष, 2001)। पुस्तकालय और पांडुलिपि–भंडार इन संस्थाओं की बौद्धिक पूँजी थे, और विद्वानों का अंतर–क्षेत्रीय आवागमन एक जीवंत नेटवर्क बनाता था।



चित्र 2. पट्टदकल स्मारक–समूह, कर्नाटक में आठवीं शताब्दी का एक उत्कीर्णन, जो गुरुकुल–प्रसंग से संबद्ध माना जाता है।

छायाकार : Ms Sarah Welch। स्रोत : Wikimedia Commons। लाइसेंस : CC BY-SA 4.0।

Image source : Wikimedia Commons

6. शक्तियाँ एवं सीमाएँ :

शक्तियों की सूची लंबी है और उसे कम करके आँकने का कोई कारण नहीं। गुरु–शिष्य का निकट संबंध व्यक्तिगत मार्गदर्शन को संभव बनाता था। ज्ञान, आचरण और व्यावहारिक जीवन को अलग–अलग खंडों में नहीं बाँटा गया था। वाद और संवाद की परंपरा ने तर्कशास्त्र को असाधारण ऊँचाई दी। आवासीय विद्वत्–समुदायों ने दीर्घकालिक अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण बनाया, और अंतर–क्षेत्रीय बौद्धिक आदान–प्रदान को संभव किया। सीमाएँ भी उतनी ही ठोस हैं। शैक्षिक अवसर सभी सामाजिक समूहों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं थे, और जाति, लिंग, वर्ग तथा स्थान इसमें निर्णायक भूमिका निभाते थे। यहाँ सावधानी आवश्यक है – न तो यह कहना उचित है कि शिक्षा सबके लिए सुलभ थी, न यह कि स्त्रियाँ पूर्णतः वंचित थीं। साक्ष्य क्षेत्र, काल और समुदाय के अनुसार भिन्न हैं, और आल्तेकर (1944) तथा घोष (2001) दोनों इस भिन्नता को दर्ज करते हैं। संरचनात्मक सीमाएँ भी थीं। संस्थाएँ संरक्षण पर निर्भर थीं, अतः राजनीतिक उथल–पुथल का

सीधा प्रभाव उन पर पड़ता था। कोई मानकीकृत पाठ्यक्रम या प्रमाणन–व्यवस्था नहीं थी। और पांडुलिपि पर आधारित ज्ञान भौतिक रूप से नाशवान था – यही कारण है कि विहार–पुस्तकालयों के विनाश से अपूरणीय क्षति हुई।

7. प्राचीन से आधुनिक शिक्षा तक का संक्रमण :

यह संक्रमण किसी एक घटना से नहीं, क्रमिक रूप से हुआ। मध्यकाल में पाठशालाएँ, टोल, मठ, मदरसे और शिल्प–प्रशिक्षण की व्यवस्थाएँ चलती रहीं। संरक्षण के स्रोत बदले – राजकीय अनुदान की जगह क्षेत्रीय शासकों, मंदिरों और समुदायों ने ली।

अठारहवीं शताब्दी की स्थिति पर धर्मपाल (1983) का अध्ययन विशेष रूप से चर्चित रहा है। मद्रास प्रेसीडेंसी के औपनिवेशिक सर्वेक्षणों के आधार पर उन्होंने तर्क दिया कि स्वदेशी विद्यालयों का जाल उस समय भी व्यापक था। इस निष्कर्ष की व्याख्या पर विद्वानों में मतभेद रहा है, और राधाकृष्णन (1990) जैसे समीक्षकों ने इन आँकड़ों की सीमाओं की ओर ध्यान दिलाया है। इस मतभेद को छिपाना नहीं चाहिए, यह इस क्षेत्र की एक जीवित बहस है। औपनिवेशिक नीतियों ने अंग्रेजी माध्यम, मानकीकृत पाठ्यक्रम, परीक्षा और प्रमाणपत्र की व्यवस्था स्थापित की। इससे कुछ स्वदेशी परंपराएँ हाशिए पर चली गईं, कुछ ने नए ढाँचे में स्वयं को पुनर्गठित किया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के सुधार–आंदोलनों ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ा। स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक ढाँचे में सार्वजनिक, धर्मनिरपेक्ष और सार्वभौमिक शिक्षा का विस्तार हुआ।

8. वर्तमान स्वरूप और प्रासंगिकता :

आज भारतीय ज्ञान परंपरा कई रूपों में उपस्थित है। शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा प्रभाग की स्थापना (2020) के बाद उच्च शिक्षा में इससे जुड़े पाठ्यक्रम बढ़े हैं। संस्कृत, पालि और प्राकृत का अध्ययन जारी है, योग और मूल्य–शिक्षा विद्यालयी पाठ्यक्रम का अंग हैं, आयुर्वेद एक मान्यता–प्राप्त चिकित्सा–प्रणाली है, पांडुलिपियों के संरक्षण, अनुवाद और अंकीकरण की परियोजनाएँ चल रही हैं और प्राचीन गणित, ज्योतिष, व्याकरण तथा तर्कशास्त्र पर शोध होता है। नालंदा के नाम पर राजगीर में स्थापित आधुनिक विश्वविद्यालय इस संबंध का प्रतीकात्मक उदाहरण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन प्रयासों का नीतिगत आधार है (शिक्षा मंत्रालय, 2020)। नीति बहुविषयक शिक्षा, अनुभवजन्य अधिगम और मार्गदर्शन–आधारित संबंधों पर बल देती है 'और इनमें प्राचीन परंपरा से एक वैचारिक निरंतरता देखी जा सकती है। परंतु यहीं आलोचनात्मक विवेक आवश्यक है। समकालीन शिक्षा उन आधारों पर टिकी है जो प्राचीन व्यवस्था में नहीं थे : सार्वभौमिक पहुँच, संवैधानिक समानता, लैंगिक न्याय, सामाजिक समावेशन, वैज्ञानिक सत्यापन, आधुनिक रोजगार की अपेक्षाएँ, अंकीय प्रौद्योगिकी और अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक विनिमय। इनमें से कोई भी प्राचीन ढाँचे से प्राप्त नहीं हुआ है।

अतः जो कुछ आज दिखाई देता है, वह परंपरा का अपरिवर्तित अस्तित्व नहीं, बल्कि उसका चयनात्मक पुनर्निर्माण है। कुछ तत्त्व चुने गए हैं, कुछ छोड़ दिए गए हैं, और चुने हुए तत्त्वों को भी नए संदर्भ में पुर्नव्याख्यायित किया गया है। इस प्रक्रिया को स्वीकार करना बौद्धिक ईमानदारी की माँग है।

9. चुनौतियाँ एवं सुझाव :

सबसे बड़ी चुनौती व्याख्या की है। अतीत का रोमानीकरण और उसका राजनीतिक रूप से चयनात्मक उपयोग – दोनों ही इतिहास–लेखन को कमजोर करते हैं। प्राथमिक साक्ष्य का अपर्याप्त प्रयोग, तथा पुराकथा, सांस्कृतिक स्मृति और सत्यापनीय इतिहास के बीच का धुँधलापन इस क्षेत्र की सामान्य समस्याएँ हैं। इसके

अतिरिक्त विश्वसनीय अनुवादों की कमी, शास्त्रीय स्रोतों में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, तथा क्षेत्रीय, जनजातीय और स्त्री–परंपराओं की उपेक्षा भी गंभीर बाधाएँ हैं। जब पारंपरिक वैज्ञानिक दावों को बिना परीक्षण के प्रस्तुत किया जाता है, तो इससे परंपरा की विश्वसनीयता को ही हानि पहुँचती है। भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े पाठ्यक्रमों पर कुछ शिक्षाविदों ने यही आपत्ति उठाई है कि सत्यापित इतिहास और सांस्कृतिक दावे कहीं–कहीं एक साथ मिला दिए जाते हैं। यह आपत्ति परंपरा के विरुद्ध नहीं, उसके अ–आलोचनात्मक प्रस्तुतीकरण के विरुद्ध है, और इसे गंभीरता से लेना ही इस क्षेत्र के शैक्षणिक भविष्य के लिए हितकर है।

सुझाव इन्हीं से निकलते हैं। पांडुलिपियों का संरक्षण, अनुवाद और मुक्त–पहुँच अंकीय अभिलेखागार प्राथमिकता होनी चाहिए। अंतर–विषयक ऐतिहासिक शोध को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिसमें पुरातत्त्व, भाषाविज्ञान और समाज–इतिहास साथ आएँ। बौद्ध, जैन, जनजातीय, क्षेत्रीय, स्त्री और व्यावसायिक परंपराओं को समान स्थान मिलना चाहिए। पारंपरिक दावों का मूल्यांकन पारदर्शी और साक्ष्य–आधारित हो। शिक्षक–प्रशिक्षण में शास्त्रीय स्रोतों की समझ और आधुनिक शिक्षाशास्त्र – दोनों सम्मिलित हों। और इन सबके ऊपर, शैक्षणिक स्वतंत्रता, समानता और समावेशिता की रक्षा आवश्यक है।

10. निष्कर्ष :

हमारे प्राचीन भारतीय शिक्षा एक परंपरा नहीं, अनेक परंपराओं का समुच्चय थी। वैदिक अध्ययन–केंद्र, बौद्ध और जैन विहार, मंदिर–विद्यालय, पाठशालाएँ और शिल्प–प्रशिक्षण की व्यवस्थाएँ – इन सबकी अपनी संरचना और अपनी सीमाएँ थीं। इनका बौद्धिक योगदान वास्तविक है : व्याकरण और तर्कशास्त्र में असाधारण गहराई, वाद की परिष्कृत पद्धति, ज्ञान और आचरण का एकीकृत दृष्टिकोण, तथा मौखिक संचरण की उल्लेखनीय तकनीकें। उनकी सामाजिक असमानताएँ भी उतनी ही वास्तविक हैं, और उन्हें स्वीकार किए बिना कोई ईमानदार मूल्यांकन संभव नहीं।

यही कारण है कि प्राचीन संस्थागत ढाँचों को यथावत लौटाना न संभव है, न वांछनीय। जो व्यवस्था सीमित समूहों के लिए बनी थी, वह करोड़ों विद्यार्थियों वाली संवैधानिक शिक्षा–व्यवस्था का प्रतिरूप नहीं बन सकती। आवश्यकता आलोचनात्मक निरंतरता की है, अनालोचित पुनरुत्थान की नहीं। भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्त्व इस बात में नहीं कि वह अतीत को दोहराने का आधार दे, बल्कि इसमें कि उसके बौद्धिक संसाधनों की सावधान व्याख्या से एक ऐसी शिक्षा–व्यवस्था गढ़ी जा सके जो समावेशी हो, साक्ष्य पर टिकी हो, और मनुष्य को केंद्र में रखे।

संदर्भ सूची :

1. आल्तेकर, ए. एस. (1944). प्राचीन भारत में शिक्षा (चतुर्थ संस्करण). नंद किशोर एंड ब्रदर्स. [Altekar] A. S. Education in Ancient India, Nand Kishore & Bros., Benares]
2. आप्टे, डी. जी. (1961). प्राचीन भारत में विश्वविद्यालय. महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा. [Apte, D. G. Universities in Ancient India]
3. केअ, एफ. ई. (1918). प्राचीन भारतीय शिक्षा : उसके उद्‌भव, विकास एवं आदर्शों की जाँच. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. [Keay, F. E. Ancient Indian Education : An Inquiry into Its Origin, Development, and Ideals]

4. घोष, एस. सी. (2001). प्राचीन भारत में शिक्षा का इतिहास, लगभग 3000 ई.पू. से 1192 ई. तक. मुंशीराम मनोहरलाल. [Ghosh, S. C. The History of Education in Ancient India, c. 3000 BC to AD 1192]
5. धरमपाल. (1983). द ब्यूटीफुल ट्री : अठारहवीं शताब्दी में स्वदेशी भारतीय शिक्षा. बिब्लिया इम्पेक्स, नई दिल्ली. [Dharampal. The Beautiful Tree: Indigenous Indian Education in the Eighteenth Century]
6. मिचेल, जी. (2014). आरंभिक चालुक्यों का मंदिर–स्थापत्य एवं कला : बादामी, महाकूट, ऐहोल, पट्टदकल. नियोगी बुक्स. [Michell, G. Temple Architecture and Art of the Early Chalukyas]
7. मुखर्जी, आर. के. (1947). प्राचीन भारतीय शिक्षा : ब्राह्मणीय एवं बौद्ध. मैकमिलन, लंदन. (पुनर्मुद्रण : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली). [Mookerji, R. K. Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist]
8. राधाकृष्णन, पी. (1990). ब्रिटिश भारत में स्वदेशी शिक्षा : एक रूपरेखा. कंट्रिब्यूशंस टु इंडियन सोशियोलॉजी, 24(1), 1–26. [Radhakrishnan, P. Indigenous Education in British India : A Profile, https://doi.org/10.1177/006996690024001001
9. शार्फे, एच. (2002). प्राचीन भारत में शिक्षा. ब्रिल, लाइडन. (हैंडबुक ऑफ ओरिएंटल स्टडीज, खंड 16). [Scharfe, H. Education in Ancient India]
10. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. https://www.education.gov.in/nep
11. भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण. (अदिनांकित). पट्टदकल स्मारक–समूह. https://asi.nic.in/pages/WorldHeritagePattadakal
12. यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र. (अदिनांकित–क). नालंदा महाविहार का पुरातात्त्विक स्थल, नालंदा, बिहार. https://whc.unesco.org/en/list/1502/
13. यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र. (अदिनांकित–ख). पट्टदकल स्मारक–समूह. https://whc.unesco.org/en/list/239/

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Translating Tradition : A Linguistic Analysis of Japanese Domain-Specific Vocabulary in Indian Heritage & Wellness Tourism

Dr. Ashok Singh Rathore
Assistant Professor,
SLAS, Mody University of Science and Technology,
Lakshmangarh, Sikar, Rajasthan.

Abstract :

When people from Japan come to India, they need to understand many things, so language becomes very important. In this paper, I examine how Japanese words are used in Indian heritage and wellness tourism. I am using ideas from translation studies, applied linguistics, and Japanese language teaching (日本語教育, Nihongo Kyōiku) to see how Indian things like Ayurveda (アーユルヴェーダ), Yoga, and hospitality are explained for Japanese people, especially with the idea of Japanese hospitality (おもてなし, Omotenashi). I checked tourism websites, online ads, and guides to see how Indian words are written and explained in Japanese. I found that using Katakana, Kanji, and polite language helps Japanese people understand and keeps the real meaning. So, translation is not just changing words, but it is also about making a good connection between Indian culture and what Japanese tourists want.

Keywords : Domain-Specific Vocabulary, Japanese Language Pedagogy (日本語教育), Wellness Tourism, Ayurveda (アーユルヴェーダ), Hospitality Ethics (おもてなし), Applied Linguistics, Translation Studies.

1. Introduction and Contextual Horizon :

When people travel to other countries, they need to understand each other, so language is very important. Japanese tourists are coming more to India now because both countries are getting closer in business, education, and culture. For these travelers, things like translated ads,

websites, and guides help them choose where to go and learn about Indian customs, especially in heritage and wellness tourism.

India has many old health systems like Ayurveda, Yoga, Unani, Siddha, and Homoeopathy, which are all under AYUSH. These, along with famous places and spiritual centers, bring many Japanese tourists who want real Indian culture and healthy living. Places like Rishikesh, which people call the Yoga Capital, and Kerala, known for Ayurveda, are very popular because of their retreats and wellness resorts.

When we try to translate Indian heritage and wellness ideas into Japanese, it is not easy. Words like Ayurveda, Panchakarma, Shirodhara, Asana, Prana, Sattvic, and Ashram come from Sanskrit, Hindi, and other Indian languages. These words have deep meanings about health, thinking, and spirit, and sometimes there is no same word in Japanese.

To fill this gap, we need to use translation studies, applied linguistics, and Japanese language teaching (日本語教育, Nihongo Kyōiku). Also, when we talk to Japanese tourists, we should remember Japanese hospitality (おもてなし, Omotenashi), which means being polite, caring, and making guests feel comfortable.

In this paper, I am looking at how special Japanese words are used in Indian heritage and wellness tourism. I am checking how Indian ideas are written, explained, and changed for Japanese tourists by using different ways of analysis.

2. Theoretical Framework and Interdisciplinary Foundations :

Framework Component	Core Theoretical Principles	Primary Function in Tourism Translation
Translation Studies	Procedural shifts, Equivalence dimensions, Postcolonial Third Space.	Classifies micro-level procedural choices (Katakana borrowing, literal translation) and conceptual hybridity.
Applied Linguistics	Language for Specific Purposes (LSP), Register analysis, Socio-pragmatics.	Evaluates domain-specific vocabulary, specialised medical/spiritual registers, and honorific politeness.
Japanese Language Pedagogy	Orthographic scaffolding, Parenthetical Kanji glossing, Controlled lexical load.	Structures complex foreign concepts for optimal reader comprehension and cognitive ease.

Hospitality Ethos (*Omotenashi*)	Anticipatory care, Empathy, Respectful authenticity, polite reassurance.	Guides translation style to provide psychological reassurance and guest-centered clarity.

To study specialized Japanese vocabulary in heritage and wellness tourism, this research uses three main frameworks: Translation Studies, Applied Linguistics, and Japanese Language Teaching (Nihongo Kyōiku), all connected by the idea of Omotenashi.

2.1 Theoretical Synergy :

2.2 Translation Studies : Micro-Procedures and Cultural Hybridity

Translation Studies provides procedural taxonomies for analysing shifts between source and target texts. Jean-Paul Vinay and Jean Darbelnet's model distinguishes between direct translation procedures (borrowing, calque, literal translation) and oblique procedures (transposition, modulation, equivalence, adaptation). In Japanese translation, direct borrowing is primarily realised through Katakana script, which transfers foreign phonetic sounds directly into the Japanese syllabary.

Werner Koller's equivalence framework evaluates translations across denotative, connotative, text-normative, pragmatic, and formal-aesthetic dimensions. For culture-loaded wellness expressions, achieving pragmatic equivalence ensuring the text is clear, informative, and accessible to target readers often requires supplementing phonetic borrowing with descriptive semantic glosses.

From a cultural perspective, postcolonial theorist Homi Bhabha conceptualises translation as an active negotiation within an interstitial "Third Space". In Japanese typography, Katakana script acts as a visual and orthographic Third Space. By rendering Sanskrit and Hindi terms in Katakana rather than replacing them with native Japanese or Sino-Japanese concepts, translators preserve the source text's foreign cultural identity while integrating the terms phonetically into Japanese sentences.

2.3 Applied Linguistics : Domain-Specific Vocabulary and Register Analysis :

Applied Linguistics examines language use within specific professional and functional contexts, often categorised as Language for Specific Purposes (LSP) Applied Linguistics looks at how language is used in specific jobs and situations, often called Language for Specific Purposes

(LSP). In heritage and wellness tourism, specialized vocabulary mixes medical, philosophical, geographical, and business terms.cation, maintaining an appropriate honorific register (敬語, Keigo, including polite Teineigo forms such as ～です/-desu and ～ます/-masu) is essential for establishing professional credibility and respect.

2.4 Japanese Language Pedagogy (日本語教育, Nihongo Kyōiku)

Japanese Language Pedagogy (Nihongo Kyōiku) provides established techniques for structuring specialised vocabulary to help general readers understand techJapanese Language Teaching (Nihongo Kyōiku) offers ways to organize specialized vocabulary so general readers can understand technical terms. Key teaching strategies include:pretation2.

• Furigana Annotations : Adding phonetic reading aids above complex Kanji compounds.

• Controlled Lexical Scaffolding : Structuring introductory sentences with familiar vocabulary before introducing specialised domain terms4.

Using Nihongo Kyōiku methods in tourism writing helps present complex cultural ideas, like Panchakarma or Tridosha, in a way that does not overwhelm or tire readers.

2.5 Japanese Hospitality Ethics (おもてなし, Omotenashi) as a Descriptive Lens :

Omotenashi (おもてなし) is the core of Japanese hospitality, focusing on selfless care, careful attention, thoroughness, and deep respect for guests' well-being. In translation, Omotenashi guides the style and ethics of communication.

1. **Anticipatory Clarity :** Foreseeing potential reader confusion regarding unfamiliar Indian customs and proactively embedding explanatory context within the text.

2. **Polite Reassurance :** Utilising soothing, highly respectful phrasing that creates a sense of comfort, safety, and physical well-being.

3. **Respectful Authenticity :** Honouring both the guest's desire for authentic cultural encounters and the source culture's intrinsic dignity, avoiding aggressive text changes that might distort the original tradition5.

3. Descriptive Linguistic Analysis of Indian Concepts in Japanese Discourse :

To understand how Indian Heritage & Wellness Tourism Expressions (IHWTEs) are contextualised in Japanese, this section presents a descriptive linguistic analysis across three primary sub-domains: AYUSH Medical Systems, Yoga & Spiritual Philosophy, and Heritage Hospitality1.

3.1 AYUSH Medical Systems and Ayurvedic Vocabulary (アーユルヴェーダ)

Ayurvedic terminology represents a specialised domain within wellness tourism1. Terms in this domain refer to diagnostic principles, therapeutic procedures, herbal formulations, and physiological concepts derived from classical Sanskrit texts.

Phonetic Transliteration and Katakana Standardisation :

The primary strategy for rendering Ayurvedic terminology into Japanese is phonetic borrowing via Katakana6. Sanskrit phonetic structures are mapped onto the Japanese syllabary, using prolonged vowel marks (ー) to approximate Sanskrit long vowels (dīrgha):

• Ayurveda (आयुर्वेद)アーユルヴェーダ (Āyurveda)3

• Panchakarma (पंचकर्म)パンチャカルマ (Panchakaruma)3

• Shirodhara (शिरोधारा)シローダーラー (Shirōdārā)3

• Abhyanga (अभ्यंग)アビヤンガ (Abiyanga)

• Dosha (दोष)ドーシャ (Dōsha)

When we use Katakana for these words, it keeps the special Indian feeling and also makes it easy for Japanese people to say them.

Semantic Glossing and Orthographic Scaffolding :

While Katakana borrowing preserves cultural authenticity, relying solely on Katakana can leave readers without functional understanding if they are unfamiliar with Sanskrit2. To resolve this, institutional texts apply pedagogical glossing (Nihongo Kyōiku), pairing the Katakana term with descriptive Kanji compounds in parentheses :

•アーユルヴェーダ（インド伝統医学）Āyurveda (Indo Dentō Igaku) — "Traditional Indian Medicine"

•パンチャカルマ（5つの浄化療法）Panchakaruma (Itsutsu no Jōka Ryōhō) — "Fivefold Detoxification Therapy"

•シローダーラー（脳マッサージ・オイル垂らし療法）Shirōdārā (Nō Massāji / Oiru Tarashi Ryōhō) — "Brain Massage / Oil-Dripping Therapy"

•サトヴィック食（純粋・調和食）Satovikku-shoku (Junsui / Chōwa-shoku) — "Pure / Harmonious Diet"

Using both Katakana and Kanji together is a good way to show Omotenashi in translation. Katakana keeps the Indian tradition, and Kanji helps Japanese people understand what it means.

3.2 Yoga, Mindful Practices, and Spiritual Philosophy :

Yoga and spiritual retreat terminology forms another major sub-domain within Indian wellness discourse3. This vocabulary includes physical postures (Asana), breath control (Pranayama), vital energy (Prana), and monastic retreat centres (Ashram).

Linguistic Rendering of Yoga Terminology :

Unlike commercial fitness ads, official wellness websites include both physical exercise terms and spiritual or philosophical context :

•Asanaアサナ（ヨガのポーズ/体位） (Asana [Yoga no Pōzu / Taii]) — "Yogic Posture / Body Position"

•Pranayamaプラナヤマ（調息・呼吸法） (Puranayama [Chōsoku / Kokyū-hō]) — "Breath Regulation / Breathing Method"

•Pranaプラーナ（生命エネルギー） (Purāna [Seimei Enerugī]) — "Vital Life Energy"

•Ashramアシュラム（ヨガ修行院・霊性道場） (Ashuramu [Yoga Shugyō-in / Reisei Dōjō]) — "Yoga Training Institute / Spiritual Training Hall"

Using Teaching Scaffolding (Nihongo Kyōiku)

In Japanese Language Pedagogy, introducing domain-specific terms requires clear contextual framing (scaffolding). When presenting Ashram experiences to Japanese travellers, tourism copy avoids generic descriptions like "budget hotel" or "spa hotel". Instead, the text structures the term through precise semantic layering:

「リシケシの聖なるガンジス川の河岸に位置するアシュラム（ヨガ修行院）では、日常生活の喧騒から離れ、伝統的な瞑想とプラナヤマ（呼吸法）を通じて、心身の調和を取り戻すことができます。」

(Rishikesh no seinaru Ganjisu-gawa no kagan ni ichi suru ashuramu [yoga shugyō-in] de wa, nichijō seikatsu no kensō kara hanare, dentō-teki na meisō to puranayama [kokyū-hō] wo tōshite, shinshin no chōwa wo torimodosu koto ga dekimasu.)

Translation : "At the ashrams (yoga training institutes) situated along the banks of the holy Ganges in Rishikesh, guests can step away from daily hustle and restore harmony of mind and body through traditional meditation and pranayama (breathing techniques)."

This way of writing uses teaching ideas by putting the Indian words (like Ashram, Pranayama) with easy Japanese explanations (like Shugyō-in, Kokyū-hō), and also uses polite words to make the reader feel welcome.

3.3 Heritage Hospitality Discourse and the Lens of Omotenashi (おもてなし)

The next part is about Indian hospitality and travel words. Here, translation is not only about the words, but also about how we use polite language and describe the services.

Translating Traditional Hospitality Concepts :

India's traditional ethos of guest reverence—expressed in the ancient motto Atithi Devo Bhava (अतिथिदेवोभव - "The guest is equivalent to God")—shares strong conceptual parallels with Japanese Omotenashi (おもてなし). However, a literal translation of Atithi Devo Bhava into Japanese as 「客は神様である」 (Kyaku wa Kami-sama de aru) would sound overly casual or unidiomatic in public service texts.

Instead, institutional translations employ socio-pragmatic modulation, rendering the concept through refined honorific expressions that convey deep, respectful service:

•**Atithi Devo Bhava**「お客様を神様のように心からおもてなしする伝統」 (Okyaku-sama wo Kami-sama no yō ni kokoro kara omotenashi suru dentō) — "The tradition of sincerely welcoming guests with the utmost reverence."

Re-Framing Wellness Destinations :

Promotional descriptions of major wellness destinations (such as Kerala and Uttarakhand) are adapted using soft, evocative vocabulary that aligns with Japanese aesthetic preferences for tranquil, nature-based healing (Iyashi):

•Kerala : Land of Ayurveda太古の知恵が息づくアーユルヴェーダの聖地・ケララ (Taiko no chie ga ikiduku Āyurveda no seichi: Kerara) — "Kerala: The Sacred Land of Ayurveda Where Ancient Wisdom Breathes"

•Spacation / Rejuvenation Journey心と体を満たす極上の癒し旅 (Kokoro to karada wo mitasu gokujō no iyashi-tabi) — "A Supreme Healing Journey to Nourish Mind and Body"

When we use words like Iyashi (healing), Seichi (sacred place), and Chōwa (harmony), it helps to join Indian traditions with Japanese ideas about health and relaxation.

4. Cross-Cultural Comparative Strategy Matrix :

The following matrix categorises representative Indian Heritage & Wellness Tourism Expressions, detailing their Japanese renderings, applied translation procedures, pedagogical strategies (*Nihongo Kyōiku*), and functional alignment with Japanese hospitality ethics (*Omotenashi*):

Source Concept (Sanskrit / Hindi / English)	**Japanese Rendering (Orthographic**	**Translation Procedure Applied**	**Applied Pedagogical Strategy (Nihongo**	**Omotenashi Functional Alignment**

	Realization)		Kyōiku)	
Ayurveda (आयुर्वेद)	アーユルヴェーダ（インド伝統医学）	Borrowing (Katakana) + Descriptive Gloss	Dual Orthographic Layering (Loanword + Kanji)	Establishes medical authority while ensuring clear understanding.
Panchakarma (पंचकर्म)	パンチャカルマ（5つの浄化療法）	Borrowing + Semantic Modulation	Functional Category Scaffolding	Clarifies therapeutic benefits for first-time visitors.
Shirodhara (शिरोधारा)	シローダーラー（オイル垂らし頭部療法）	Borrowing + Descriptive Translation	Visual-Procedural Glossing	Reduces anxiety by explaining the treatment process clearly.
Asana (आसन)	アサナ（ヨガの姿勢・ポーズ）	Borrowing + Category Word	Lexical Simplification	Connects specialized terms with accessible fitness concepts.
Ashram (आश्रम)	アシュラム（霊性修行院・リトリート）	Borrowing + Functional Modulation[6]	Contextual Scaffolding[2]	Differentiates spiritual retreat centers from commercial hotels[3].
Sattvic Ahara (सात्विकआहार)	サトヴィック食（純粋・調和のバランス食）	Hybrid Borrowing + Kanji Compound	Conceptual Parenthetical Annotation	Reassures travelers regarding dietary choices and health benefits.
Atithi Devo Bhava (अतिथिदेवोभव)	至高のおもてなし精神（お客様を神とする伝統）	Pragmatic Equivalence / Modulation	Register Elevation (*Keigo*)	Connects Indian hospitality directly with Japanese service values.

Rishikesh (ऋषिकेश)	ヨガの聖地リシケシ（ヒマラヤ山麓の門戸）	Transliteration + Epithet Calque	Geographic Scaffolding	Orients travelers by linking regional geography to heritage identity.

5. Applied Pedagogical and Practical Implications :

When we use Applied Linguistics, Japanese Language Teaching (Nihongo Kyōiku), and Omotenashi together in tourism translation, it gives useful ideas for people who make tourism websites and guides.

5.1 Standardised Terminology Management and Style Guides

National and state tourism authorities (such as the Ministry of Tourism and state-level wellness boards) should establish standardised Japanese Style Guides for AYUSH and heritage expressions1. These guides should define:

1. Consistent Katakana Spellings : Eliminating variant spellings across official portals (e.g., standardising Ayurveda as アーユルヴェーダ rather than アユルベダ).

2. Approved Parenthetical Glosses : Establishing clear, standardised Kanji explanations for specialised medical procedures (e.g., pairing Panchakarma consistently with 「5つの浄化療法).

3. Honorific Register Standards : Ensuring all public guidance, signage, and digital copy utilise appropriate polite language (丁寧語, Teineigo) to maintain a welcoming tone.

5.2 Dual-Layer Digital Content Design :

Digital travel portals targeting Japanese users should implement a Dual-Layer Information Architecture informed by Nihongo Kyōiku and Omotenashi:

• **Primary Layer (Main Interface & Headlines) :** Displays standard Katakana loanwords alongside brief Kanji descriptors to maintain clean, modern interface aesthetics.

• **Secondary Layer (Interactive Tooltips & Digital Guides) :** Offers expandable pop-up annotations, Furigana reading aids, detailed historical origins, and video demonstrations accessible via hover-over elements or QR codes.

6. Conclusion :

This study has presented a descriptive linguistic analysis of domain-specific Japanese vocabulary in Indian heritage and wellness tourism discourse. By examining the intersection of Translation Studies, Applied Linguistics, and Japanese Language Pedagogy (日本語教育, Nihongo Kyōiku) through the lens of Japanese hospitality ethics (おもてなし, Omotenashi), this paper demonstrates that translating traditional culture-loaded expressions requires more than simple word substitution4.

The results show that tourism texts use Katakana a lot for Indian words (like アーユルヴェーダ, パンチャカルマ, and アシュラム), which keeps the real Indian feeling. To help Japanese readers, they also add Kanji explanations, teaching steps, and polite language.

If we do not change Indian words into Japanese ones too much, and we use the Omotenashi way of being kind and thinking ahead, translation can make a good bridge between the two cultures. This way, we keep the real Indian traditions and also give Japanese tourists what they want, like clear, comfortable, and respectful information.

Future applied research should explore reader reception among Japanese tourists visiting Indian wellness destinations, evaluate the effectiveness of interactive digital tooltips, and analyse how artificial intelligence tools can be trained on standardised Nihongo Kyōiku glossaries to support multilingual tourism communication.

Reference :

1. Patel, V. (2026). *Tourism Translation and Global Communication*. Educohack Press.
2. Abdellatif, M. M. (2026). Foreign tour guides as mediators of Emirati heritage: interpretation, identity, and authenticity in cultural tourism. *Built Heritage*, *10*(1), 26.
3. Metwally, A. A. (2026). An Analysis of Translation Strategies in Tourism Discourse: A Case Study of Egyptian Governmental Tourism Websites. *Tourism Culture & Communication*.
4. Jiang, Y. (2026). Translation of World Heritage Names from the Perspective of Cultural Translation Theory: A Study on Macau. *Critical Humanistic Social Theory*, *3*(2).
5. Metwally, A. A. (2026). An Analysis of Translation Strategies in Tourism Discourse: A Case Study of Egyptian Governmental Tourism Websites. *Tourism Culture & Communication*.

6. Jiang, Y. (2026). Translation of World Heritage Names from the Perspective of Cultural Translation Theory: A Study on Macau. *Critical Humanistic Social Theory*, *3*(2).
7. Xin, H., & Xiping, L. (2026). A Review of Hunan Intangible Cultural Heritage (ICH) Translation and International Publicity: Perceptions from Cultural Translation Theory. *Asian Journal of Arts, Humanities and Social Studies*, *9*(1), 17-26.
8. Zhang, A. P. (2026). A Study on English Translation Strategies and Dissemination Effects of Short Videos on Hunan Textile Intangible Cultural Heritage Tourism under Multimodal Theory. *Advanced Electromagnetics*, *15*(3), 6675-6680.
9. Wu, Z. (2026, December). A Study on the Translation of Island Cultural and Tourism Resources from the Perspective of Eco-translatology: A Case Study of Zhoushan Archipelago. In *7th International Conference on Literature, Art and Human Development (ICLAHD 2025)* (pp. 677-687). Atlantis Press.
10. Esfehani, M., Ghaderi, Z., Bagheri, F., & Hatamifar, P. (2026). Integrating traditional knowledge into tourism climate policy: Exploring feasibility and benefits in Iran's world heritage sites. *Journal of Travel Research*, 00472875261447277.
11. Ma, C., Liu, G., & Wang, X. (2026). How Perceived Cultural Authenticity Shapes Sustainable Heritage Tourism Behavior: The Serial Mediating Roles of Visitor Experience Quality and Sense of Place. *Sustainability*, *18*(8), 3677.
12. Hossain, M. M., Mahin, H. M., Manik, M. M. H., Hoque, M. O., Uddin, M. M., Rahman, M. M., ... & Ananna, A. S. C. (2026). Sustainable tourism in cultural heritage destinations: a stimulus–organism–response approach to tourist behavior. *Asia-Pacific Journal of Business Administration*, 1-24.

Email: asrathore.slas@modyuniversity.ac.in

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

G-Protein-Coupled Receptors : Structure, Signaling Mechanisms, Physiological Functions, and Therapeutic Importance

Dr. Prem Singh
Associate Professor, College Education,
SPC Govt. College Bhim, Distt. Rajsamand, Raj. (India)

Abstract

G-protein-coupled receptors (GPCRs) are a large and biologically important family of cell-surface receptors that allow cells to detect and respond to signals originating outside the cell. They participate in processes including vision, smell, taste, neurotransmission, hormone regulation, immune responses, cardiovascular function, and metabolism. GPCRs are characterized by a seven-transmembrane-helix architecture and transmit extracellular signals through interactions with heterotrimeric G proteins and other intracellular signaling proteins. Following ligand binding, a GPCR undergoes conformational changes that promote activation of a G protein, resulting in regulation of intracellular effectors such as adenylyl cyclase, phospholipase C, and ion channels. Different G-protein families, particularly Gs, Gi/o, Gq/11, and G12/13, produce distinct cellular responses.

Research over recent decades has demonstrated that GPCR signaling is more complex than a simple receptor-on/receptor-off model. Receptors can interact with multiple signaling pathways, undergo desensitization and internalization, and

display ligand-dependent signaling preferences known as biased agonism. Structural biology has further transformed the field by revealing GPCRs in inactive, active, ligand-bound, and G-protein-associated states. These advances have contributed to the development of drugs that target GPCRs. A 2025 analysis reported 516 approved drugs targeting GPCRs, demonstrating the exceptional therapeutic importance of this receptor family. This review summarizes the structure, classification, activation mechanisms, regulation, physiological functions, disease relevance, and pharmaceutical applications of GPCRs and discusses emerging directions in GPCR research.

Keywords: G-protein-coupled receptor, GPCR, G protein, cell signaling, seven-transmembrane receptor, signal transduction, biased agonism, pharmacology

1. Introduction

Cells must continuously receive and interpret information from their surrounding environment. Hormones, neurotransmitters, odorants, photons, lipids, and many other signaling molecules can act as external signals. Because many of these signals cannot directly cross the plasma membrane, cells require specialized receptor proteins to detect them and convert the information into intracellular responses.

G-protein-coupled receptors (GPCRs) constitute one of the most important groups of such receptors. They are membrane proteins that connect extracellular stimuli with intracellular signaling pathways. GPCRs are involved in a remarkably broad range of biological functions, making them important not only for basic cell biology but also for medicine and pharmacology. Modern research has established GPCRs as one of the major classes of therapeutic targets. A recent review found that 516 approved drugs target GPCRs, corresponding to approximately 36% of all approved drugs considered in that analysis (Lorente et al., 2025).

The importance of GPCR research was recognized by the 2012 Nobel Prize in Chemistry, awarded to Robert J. Lefkowitz and Brian K. Kobilka for studies of GPCRs. Their work helped explain how these receptors detect external signals and transmit information into cells.

The objective of this paper is to review the molecular structure and function of GPCRs, explain their major signaling pathways, examine their physiological and pathological significance, and describe their importance in drug discovery.

---

2. General Structure of GPCRs

The defining structural characteristic of a GPCR is its **seven-transmembrane (7TM) architecture**. The receptor polypeptide crosses the plasma membrane seven times through seven α-helical transmembrane segments. These helices are connected by extracellular and intracellular loops.

The receptor has an extracellular region that interacts with many ligands and an intracellular region that interacts with signaling proteins. Although the seven-transmembrane arrangement is a common feature, GPCRs differ considerably in their extracellular domains, ligand-binding sites, intracellular loops, and regulatory regions.

Table 1. Major structural features of GPCRs

Structural feature	General function
Seven transmembrane helices	Form the central membrane-spanning receptor structure
Extracellular loops	Contribute to ligand recognition and receptor structure

Structural feature	General function
Intracellular loops	Participate in G-protein and signaling-protein interactions
N-terminal region	Important for ligand recognition, receptor folding, and regulation
C-terminal region	Important for receptor regulation, phosphorylation, and trafficking
Intracellular binding surface	Interacts with G proteins, arrestins, and other signaling proteins

Structural studies have provided increasingly detailed information about how GPCRs change shape during activation. GPCR databases now contain extensive collections of experimentally determined receptor structures and receptor-signaling complexes.

---

3. Classification of GPCRs

GPCRs can be classified according to sequence, structural characteristics, and ligand relationships. The major human GPCR groups include Classes A, B, C, and F, together with several additional receptor groups.

Table 2. Major GPCR classes

Class	Common description	Examples/functions
Class A	Rhodopsin-like	Adrenergic, dopamine, opioid, and many sensory receptors
Class B1	Secretin-like	Peptide hormone receptors
Class	Adhesion	Cell adhesion and developmental

Class	Common description	Examples/functions
B2		signaling
Class C	Glutamate	Metabotropic glutamate and GABA-B receptors
Class F	Frizzled/Smoothened	Developmental and Hedgehog-related signaling

Class A receptors represent the largest GPCR group. Class B receptors frequently recognize peptide hormones, while Class C receptors include receptors involved in neurotransmission and calcium sensing. Class F receptors include Frizzled and Smoothened proteins involved in developmental signaling.

GPCR classification continues to be refined as additional receptor sequences and structures become available.

---

4. Ligand Binding and Receptor Activation

GPCR activation generally begins when a signaling molecule, known as a **ligand**, interacts with the receptor. Ligands can include hormones, neurotransmitters, lipids, metabolites, sensory molecules, and synthetic drugs.

Ligand binding changes the receptor's conformational state. Rather than functioning as a rigid molecular switch, a GPCR can exist in multiple conformations. Some conformations favor interaction with G proteins, whereas others can favor interactions with arrestins or other signaling proteins.

A simplified sequence of GPCR activation is:

Extracellular ligand → GPCR conformational change → G-protein activation → effector regulation → second messenger production → cellular response

This process allows a relatively small extracellular signal to produce a significant intracellular response.

---

5. Heterotrimeric G Proteins

Many GPCRs transmit signals through heterotrimeric G proteins. These proteins consist of three subunits:

- **Gα**
- **Gβ**
- **Gγ**

The Gα subunit binds guanine nucleotides and possesses GTPase activity. In the inactive state, Gα is generally associated with GDP and with the Gβγ complex.

Following receptor activation, the GPCR promotes the exchange of GDP for GTP on Gα. The activated G protein can then regulate intracellular effector proteins.

Major G-protein families

The principal G-protein signaling families include **Gs, Gi/o, Gq/11, and G12/13**.

Table 3. Major G-protein families and signaling functions

G-protein family	Major signaling effect	Important pathway
Gs	Generally stimulates	Increased cAMP and protein

G-protein family	Major signaling effect	Important pathway
	adenylyl cyclase	kinase A signaling
Gi/o	Generally inhibits adenylyl cyclase	Reduced cAMP; regulation of ion channels and other effectors
Gq/11	Activates phospholipase C-β	IP3, DAG, Ca^{2+}, and protein kinase C signaling
G12/13	Regulates small GTPases	Cytoskeletal and cellular-movement pathways

The effects shown in this table are simplified because individual receptors can interact with multiple signaling partners, and the final cellular response depends on cell type and context.

---

6. The Gs–cAMP Pathway

The Gs pathway is one of the best-known GPCR signaling mechanisms.

When a receptor activates a Gs protein, the Gαs subunit can stimulate **adenylyl cyclase**. Adenylyl cyclase converts ATP into the second messenger **cyclic AMP (cAMP)**.

Increased cAMP can activate **protein kinase A (PKA)** and influence numerous cellular proteins. PKA can phosphorylate target proteins and alter their activity. It can also influence transcription factors, thereby changing gene expression.

A simplified pathway is:

Ligand → GPCR → Gs → adenylyl cyclase → cAMP → PKA → cellular response

This signaling mechanism is important in processes such as cardiac regulation, metabolism, and endocrine signaling.

---

7. The Gi/o Pathway

Gi/o proteins generally have effects opposite to those associated with Gs in relation to adenylyl cyclase. Activation of Gi/o can reduce adenylyl cyclase activity and consequently decrease cAMP production.

However, Gi/o signaling is more complex than simply reducing cAMP. Gβγ subunits released during G-protein activation can also regulate ion channels and other intracellular targets.

Consequently, Gi/o-coupled receptors can influence neuronal excitability, neurotransmitter release, and other cellular processes.

---

8. The Gq/11–Phospholipase C Pathway

Another major GPCR signaling mechanism involves Gq/11 proteins.

Activated Gαq/11 stimulates **phospholipase C-β (PLC-β)**. PLC-β hydrolyzes the membrane phospholipid PIP_2 to produce two important signaling molecules:

- **Inositol 1,4,5-trisphosphate (IP_3)**
- **Diacylglycerol (DAG)**

IP_3 promotes the release of calcium ions from intracellular stores, while DAG contributes to activation of protein kinase C (PKC).

The pathway can therefore be summarized as:

GPCR → Gq/11 → PLC-β → IP_3 + DAG → Ca^{2+}/PKC signaling → cellular response

Changes in intracellular calcium concentration can affect muscle contraction, secretion, enzyme activity, gene expression, and many other processes.

---

9. G12/13 Signaling

G12/13 proteins regulate signaling pathways involving small GTPases, including members of the Rho family. These pathways can affect the cytoskeleton, cell shape, adhesion, and movement.

Although G12/13 signaling is less commonly discussed in introductory descriptions of GPCR biology, it is important in cellular processes that require changes in cytoskeletal organization.

Research has also shown that GPCR signaling can extend beyond classical G-protein pathways. Receptors can interact with multiple intracellular proteins and signaling networks, producing responses that vary according to the receptor, ligand, and cellular environment.

---

10. Signal Termination and GPCR Desensitization

Cellular signaling must be tightly regulated. Continuous receptor activation could produce inappropriate or excessive cellular responses. GPCRs therefore possess several mechanisms for terminating or reducing signaling.

One important mechanism involves **G-protein-coupled receptor kinases (GRKs)**. Activated receptors can be phosphorylated by GRKs, which promotes the binding of **arrestin proteins**.

Arrestins can reduce further G-protein signaling and promote receptor internalization. The receptor may subsequently be recycled to the cell surface or directed toward degradation.

This process is commonly described as **desensitization**.

Simplified regulatory sequence

Ligand binding → receptor activation → GRK-mediated phosphorylation → arrestin binding → reduced G-protein signaling → receptor internalization

Desensitization allows cells to adapt to persistent stimulation and helps maintain appropriate signaling sensitivity.

---

11. β-Arrestin and Signaling Beyond G Proteins

Early models of GPCR biology emphasized G proteins as the principal intracellular signaling partners. Research has demonstrated that arrestins can also participate directly in signaling.

This discovery contributed to the concept of **biased signaling** or **biased agonism**. Different ligands acting on the same

receptor may stabilize different receptor conformations and consequently favor different signaling pathways.

For example, one ligand may preferentially promote G-protein signaling, whereas another may favor arrestin-associated signaling.

This concept has become important in pharmacology because selective activation of beneficial pathways could potentially produce desired therapeutic effects while reducing unwanted effects. GPCR signaling and biased agonism are now recognized as important areas of drug-development research.

---

12. Physiological Importance of GPCRs

GPCRs participate in an exceptionally wide range of physiological functions.

Table 4. Selected physiological functions of GPCRs

Biological system	Example GPCR functions
Nervous system	Neurotransmitter signaling and modulation of neuronal activity
Cardiovascular system	Regulation of heart rate and vascular tone
Endocrine system	Hormone and metabolic regulation
Sensory systems	Vision, smell, and taste
Immune system	Chemokine and inflammatory signaling
Digestive system	Hormonal and neurotransmitter regulation
Reproductive system	Hormonal signaling
Metabolism	Regulation of glucose and energy-related

Biological system Example GPCR functions
pathways

12.1 Vision

The visual receptor **rhodopsin** is a classic GPCR. Light causes a structural change in rhodopsin, initiating a signaling cascade that ultimately alters the electrical activity of retinal photoreceptor cells.

The study of rhodopsin was particularly important for understanding how GPCRs undergo activation.

12.2 Smell

Many odorant receptors belong to the GPCR family. These receptors recognize chemical molecules in the environment and initiate intracellular signaling that contributes to the perception of smell.

12.3 Taste

Several taste receptors are GPCRs. They participate in detecting specific taste categories and converting chemical information into cellular signals.

12.4 Neurotransmission

Numerous neurotransmitter receptors are GPCRs. Dopamine, serotonin, adrenergic, muscarinic acetylcholine, and opioid receptor systems contain important GPCR members.

Because these receptors influence neuronal communication, they have substantial importance in neuroscience and pharmacology.

13. GPCRs and Human Disease

Because GPCRs regulate numerous physiological processes, disturbances in GPCR signaling can contribute to disease.

GPCR-related disease mechanisms may result from:

1. Genetic mutations in receptors.
2. Abnormal receptor expression.
3. Altered ligand concentrations.
4. Abnormal receptor regulation.
5. Excessive or insufficient downstream signaling.
6. Changes in receptor interactions with signaling proteins.

GPCRs have been studied in disorders affecting the cardiovascular, endocrine, nervous, immune, and metabolic systems.

GPCR signaling is also relevant to cancer biology. Research has demonstrated connections between GPCR pathways and processes including tumor-cell proliferation, migration, angiogenesis, and interactions with other receptor systems.

Importantly, the relationship between a GPCR and disease can vary substantially between tissues. A receptor that produces a beneficial effect in one physiological context may have a different effect in another. This complexity is one reason selective drug design remains an important research objective.

---

14. GPCRs as Drug Targets

GPCRs are among the most successful targets in modern pharmacology. Their extracellular accessibility and ability to control important physiological pathways make them attractive targets for therapeutic drugs.

Drugs can influence GPCR activity in several ways.

Table 5. Common pharmacological approaches

Drug type	General effect
Agonist	Activates or stabilizes receptor signaling
Antagonist	Blocks activation by an agonist
Partial agonist	Produces a submaximal response
Inverse agonist	Reduces constitutive receptor activity
Allosteric modulator	Binds a site distinct from the primary ligand-binding site
Biased ligand	Preferentially promotes particular signaling pathways

Historically, many GPCR drugs were developed by targeting the orthosteric ligand-binding site. More recent approaches include allosteric modulation and biased signaling.

A 2025 analysis reported **516 approved drugs targeting GPCRs and 337 agents in clinical trials**, emphasizing the continued importance of this receptor family in drug development. The same analysis identified increasing interest in metabolic diseases, oncology, immunology, allosteric modulators, biologics, and pathway-biased signaling.

15. Structural Biology and the GPCR Research Revolution

The molecular understanding of GPCRs has advanced dramatically through structural biology.

Methods such as X-ray crystallography, cryo-electron microscopy, nuclear magnetic resonance, protein engineering, and computational modeling have helped researchers examine receptors in different functional states.

Structural information can reveal:

- Ligand-binding pockets
- Receptor activation mechanisms
- G-protein interaction surfaces
- Arrestin-binding regions
- Conformational changes
- Potential allosteric sites

GPCR structural databases now contain a large collection of receptor structures and complexes. GPCRdb, for example, provides information on experimentally determined structures and their activation states.

The structural revolution has also contributed to structure-based drug discovery. Researchers can use receptor structures to understand how molecules interact with binding sites and to guide the design or optimization of potential therapeutic compounds.

---

16. Nobel Prize and Historical Significance

The history of GPCR research illustrates how basic scientific research can eventually influence medicine.

Robert J. Lefkowitz and Brian K. Kobilka were awarded the **2012 Nobel Prize in Chemistry** for studies of GPCRs. Lefkowitz's research helped establish the molecular identity and regulation of adrenergic receptors, while Kobilka's structural studies provided important insight into receptor architecture and activation.

Their work helped transform the understanding of receptors from an abstract concept into a detailed molecular model.

The significance of this research extends beyond GPCRs because it demonstrated general principles of cell-surface signaling and receptor regulation.

---

17. Current Research Directions

GPCR research continues to develop rapidly. Several areas are particularly important.

17.1 Biascd signaling

Researchers are investigating whether it is possible to design ligands that selectively activate beneficial signaling pathways while minimizing unwanted responses. This approach could potentially improve drug efficacy and safety.

17.2 Allosteric modulation

Allosteric compounds bind to receptor regions distinct from the primary ligand-binding site. Such compounds may provide greater control over receptor activity and selectivity.

17.3 Structure-based drug discovery

The increasing number of experimentally determined GPCR structures provides opportunities to design compounds using detailed molecular information.

17.4 Orphan GPCRs

Some GPCRs have no clearly established endogenous ligand and are therefore called **orphan GPCRs**. Identifying their natural ligands and physiological functions could reveal new biological pathways and therapeutic targets.

17.5 Receptor complexes

Some GPCRs can form complexes with other receptors or signaling proteins. Understanding these interactions may provide new approaches to pharmacology.

17.6 Computational approaches

Computational modeling and machine-learning methods are increasingly being used to predict receptor structures, ligand interactions, conformational states, and signaling behavior.

---

18. Discussion

GPCRs represent a particularly successful example of biological signal transduction. Their seven-transmembrane architecture provides a flexible platform capable of detecting diverse extracellular signals and converting them into intracellular responses.

One of the most important insights from modern GPCR research is that signaling is not simply a linear process in which ligand binding produces one predetermined cellular

response. Instead, receptors exist in multiple conformational states and can communicate with several intracellular signaling partners.

This complexity has major implications for pharmacology. A drug that simply activates or blocks a receptor may influence several pathways simultaneously. Consequently, current research increasingly seeks to understand the structural and cellular factors that determine signaling specificity.

The therapeutic importance of GPCRs is already well cstablishcd. Thc largc numbcr of approvcd GPCR-targcting drugs demonstrates that these receptors are highly productive pharmacological targets. However, many GPCRs remain poorly understood or have not yet been successfully targeted therapeutically. This creates opportunities for future research.

An important challenge is translating molecular discoveries into safe and effective medicines. A receptor may perform different functions in different tissues, and signaling pathways may interact with one another. Therefore, successful drug development requires an understanding of receptor structure, ligand pharmacology, intracellular signaling, tissue distribution, and physiological context.

---

19. Conclusion

G-protein-coupled receptors are essential membrane proteins that enable cells to detect and respond to a wide variety of extracellular signals. Their characteristic seven-transmembrane structure allows them to interact with heterotrimeric G proteins and other signaling proteins.

The major G-protein families—Gs, Gi/o, Gq/11, and G12/13—connect GPCR activation to intracellular pathways involving second messengers such as cAMP, calcium, IP_3, and DAG. GPCR signaling is further regulated by receptor phosphorylation, arrestin recruitment, internalization, and recycling.

The physiological importance of GPCRs is evident in sensory perception, neurotransmission, cardiovascular regulation, endocrine signaling, immunity, and metabolism. Abnormal GPCR activity can contribute to a range of diseases, making these receptors important targets for pharmacological intervention.

Modern structural biology has greatly expanded knowledge of GPCR activation and signaling. At the same time, concepts such as biased agonism, allosteric modulation, receptor complexes, and computational drug discovery are creating new possibilities for therapeutic development.

Overall, GPCRs remain one of the most important receptor families in biology and medicine. Continued research into their structure, signaling pathways, regulation, and pharmacology is likely to produce further advances in both fundamental cell biology and drug discovery.

References

Campbell, A. P., & Smrcka, A. V. (2018). Targeting G protein-coupled receptor signalling by blocking G proteins. *Nature Reviews Drug Discovery, 17*, 789–803. https://doi.org/10.1038/nrd.2018.135

Hauser, A. S., Attwood, M. M., Rask-Andersen, M., Schiöth, H. B., & Gloriam, D. E. (2017). Trends in GPCR drug discovery: New agents, targets and indications. *Nature Reviews Drug Discovery, 16*, 829–842.

Lappano, R., & Maggiolini, M. (2011). G protein-coupled receptors: Novel targets for drug discovery in cancer. *Nature Reviews Drug Discovery, 10*, 47–60. https://doi.org/10.1038/nrd3320

Lorente, J. S., Sokolov, A. V., Ferguson, G., et al. (2025). GPCR drug discovery: New agents, targets and indications. *Nature Reviews Drug Discovery, 24*, 458–479. https://doi.org/10.1038/s41573-025-01139-y

Nobel Prize Outreach. (2012). *The Nobel Prize in Chemistry 2012: Press release*. NobelPrize.org.

Wootten, D., Christopoulos, A., Marti-Solano, M., Babu, M. M., & Sexton, P. M. (2018). Mechanisms of signalling and biased agonism in G protein-coupled receptors. *Nature Reviews Molecular Cell Biology, 19*, 638–653.

GPCRdb. (2026). *GPCR structure and classification resources*. GPCRdb.

Suggested Figure for a Project

A useful figure would show:

Ligand → GPCR (7 transmembrane helices) → G protein → Gαβγ activation → second messenger pathway → cellular response

You could place the figure after the section titled **"Ligand Binding and Receptor Activation."**

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था एवं ज्ञान–विज्ञान के विकास का अध्ययन

डॉ. आदित्य प्रकाश सिंह
डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश।

सारांश

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का वह महत्वपूर्ण चरण था जिसमें शिक्षा, साहित्य, दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा तथा अन्य ज्ञान–विधाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ। सामान्यतः चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य का यह काल राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक गतिविधियों के विस्तार के लिए जाना जाता है। गुप्त शासकों के संरक्षण में संस्कृत भाषा और साहित्य को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा विद्वानों, कवियों और वैज्ञानिकों को अध्ययन एवं रचनात्मक कार्य के लिए अनुकूल वातावरण मिला। इस समय शिक्षा का उद्देश्य केवल धार्मिक ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक विकास को भी महत्व दिया जाता था। गुरुकुल, आश्रम, मठ, विहार तथा अन्य विद्या–केंद्र शिक्षा के प्रमुख माध्यम थे। गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट की उपलब्धियाँ तथा प्राकृतिक ज्ञान के क्षेत्र में वराहमिहिर की परंपरा इस युग की बौद्धिक उन्नति को प्रदर्शित करती है। प्रस्तुत अध्ययन में गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था की प्रकृति, पाठ्यक्रम, शिक्षण–पद्धति तथा ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हुए विकास का ऐतिहासिक और आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द– गुप्तकाल, शिक्षा व्यवस्था, ज्ञान–विज्ञान, आर्यभट, वराहमिहिर, गणित, खगोलशास्त्र, संस्कृत साहित्य, आयुर्वेद, नालंदा।

1. प्रस्तावना

भारतीय राभ्यता के विकारा गें शिक्षा और ज्ञान की परंपरा की भूगिका अत्यंत

महत्वपूर्ण रही है। प्राचीन भारत में शिक्षा को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का साधन माना जाता था। ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं बल्कि चरित्र निर्माण, सामाजिक उत्तरदायित्व, आत्मानुशासन और नैतिक चेतना का विकास भी था। गुप्तकाल में इस परंपरा को एक व्यापक सांस्कृतिक वातावरण प्राप्त हुआ। राजनीतिक स्थिरता और शासकीय संरक्षण के कारण विभिन्न विद्या–विधाओं के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित हुईं। इस काल में संस्कृत भाषा का व्यापक प्रयोग हुआ और साहित्य, दर्शन, व्याकरण तथा विज्ञान से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ सामने आईं। आर. एस. शर्मा के अनुसार गुप्तकालीन समाज में ब्राह्मणपबंस शिक्षा संस्थाओं के साथ–साथ बौद्ध और अन्य धार्मिक परंपराओं से जुड़े अध्ययन केंद्र भी सक्रिय थे।[1]

गुप्तकालीन शिक्षा को केवल धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से देखना उचित नहीं होगा। यद्यपि वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र और दर्शन शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग थे, लेकिन व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र और चिकित्सा जैसे विषय भी ज्ञान की व्यापक परंपरा में सम्मिलित थे। इस समय विद्वानों का अध्ययन केवल ग्रंथों के स्मरण तक सीमित नहीं था, बल्कि तर्क, व्याख्या, गणना और निरीक्षण जैसी बौद्धिक प्रक्रियाओं का भी महत्व था। उपिंदर सिंह ने प्राचीन भारतीय शिक्षा और बौद्धिक परंपरा के संदर्भ में इस बात पर बल दिया है कि विभिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक परंपराओं के मध्य निरंतर बौद्धिक संवाद चलता रहा।[2]

2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था की प्रकृति और उसकी प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि उस समय शिक्षा के प्रमुख केंद्र कौन–से थे, शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया कैसी थी तथा विद्यार्थियों को किन विषयों का ज्ञान दिया जाता था। इसके साथ ही इस अध्ययन का उद्देश्य गुप्तकालीन गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, धातु विज्ञान और साहित्य के विकास का विश्लेषण करना तथा यह समझना भी है कि इस काल की ज्ञान परंपरा ने भारतीय बौद्धिक इतिहास को किस प्रकार प्रभावित किया। आर्यभट और वराहमिहिर जैसे विद्वानों के योगदान का अध्ययन भी इसी संदर्भ में किया गया है।

3. शोध पद्धति

इस शोध में मुख्यतः ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए अभिलेखीय स्रोतों, साहित्यिक ग्रंथों, वैज्ञानिक रचनाओं तथा प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित आधुनिक शोध–ग्रंथों का

उपयोग किया गया है। गुप्तकालीन इतिहास के अध्ययन में अभिलेखों का विशेष महत्व है क्योंकि उनसे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ ही आर्यभट की आर्यभटीय, वराहमिहिर की बृहत्संहिता और पंचसिद्धांतिका जैसी रचनाएँ उस समय के वैज्ञानिक चिंतन को समझने में उपयोगी हैं। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर उपलब्ध प्रमाणों का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है।

4. गुप्तकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गुप्त वंश का राजनीतिक उत्थान चौथी शताब्दी ईस्वी में हुआ। चंद्रगुप्त प्रथम ने गुप्त शक्ति को संगठित स्वरूप प्रदान किया और समुद्रगुप्त के समय साम्राज्य का पर्याप्त विस्तार हुआ। समुद्रगुप्त की उपलब्धियों की जानकारी प्रयाग प्रशस्ति से प्राप्त होती है। इस अभिलेख से उसके राजनीतिक अभियानों के साथ–साथ उसकी सांस्कृतिक अभिरुचि और विद्वत्ता का भी संकेत मिलता है।[3] चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य ने राजनीतिक प्रतिष्ठा के साथ सांस्कृतिक विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण प्रगति की। इस काल में साहित्य, कला और विद्या को प्राप्त संरक्षण ने बौद्धिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया।

गुप्ताकाल की राजनीतिक स्थिरता ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल वातावरण तैयार किया। नगरों, व्यापारिक केंद्रों तथा धार्मिक संस्थाओं के विकास के साथ विद्वानों और विद्यार्थियों के लिए अध्ययन की परिस्थितियाँ भी बेहतर हुईं। यद्यपि इस काल को पूर्णतः शांतिपूर्ण और समृद्ध मानना उचित नहीं है, फिर भी व्यापक सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण इसे भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण चरणों में रखा जाता है।

5. गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था

गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था बहुस्तरीय थी। शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी गुरु, आश्रम, गुरुकुल, मठ, विहार अथवा अन्य विद्या–केंद्रों से जुड़े रहते थे। गुरु का स्थान शिक्षा व्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण था। विद्यार्थी गुरु के निकट रहकर अध्ययन करते और विषय संबंधी ज्ञान के साथ अनुशासन तथा नैतिक व्यवहार सीखते थे। शिक्षा में मौखिक परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका थी। शिक्षक पाठ का उच्चारण करते, विद्यार्थी उसका अनुकरण करते और फिर प्रश्नोत्तर एवं चर्चा के माध्यम से विषय को समझने का प्रयास करते थे।[4]

गुप्तकाल में शिक्षा का स्वरूप केवल एक धार्मिक परंपरा तक सीमित नहीं था।

गुरु, आश्रम, गुरुकुल, मठ, विहार अथवा अन्य विद्या–केंद्रों से जुड़े रहते थे। गुरु का स्थान शिक्षा व्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण था। विद्यार्थी गुरु के निकट रहकर अध्ययन करते और विषय संबंधी ज्ञान के साथ अनुशासन तथा नैतिक व्यवहार सीखते थे। शिक्षा में मौखिक परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका थी। शिक्षक पाठ का उच्चारण करते, विद्यार्थी उसका अनुकरण करते और फिर प्रश्नोत्तर एवं चर्चा के माध्यम से विषय को समझने का प्रयास करते थे।[4]

गुप्तकाल में शिक्षा का स्वरूप केवल एक धार्मिक परंपरा तक सीमित नहीं था। ब्राह्मणपबंस संस्थाओं में वेद, वेदांग, व्याकरण, दर्शन और धर्मशास्त्र का अध्ययन होता था, जबकि बौद्ध विहारों में बौद्ध दर्शन के साथ तर्क, व्याकरण और अन्य विषयों पर भी विचार किया जाता था। इस प्रकार विभिन्न धार्मिक संस्थाओं ने ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

6. शिक्षा के प्रमुख केंद्र

गुप्तकाल में पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, वाराणसी, मथुरा और अन्य प्रमुख नगर विद्या एवं संस्कृति के केंद्र थे। इनमें नालंदा का विशेष महत्व था। नालंदा के विकास का प्रारंभिक संबंध गुप्तकाल से जोड़ा जाता है, यद्यपि इसका पूर्ण विकसित विश्वविद्यालयीय स्वरूप बाद की शताब्दियों में सामने आया। नालंदा में बौद्ध अध्ययन के साथ दर्शन, तर्क, व्याकरण और अन्य विषयों के अध्ययन की परंपरा विकसित हुई।[5] विभिन्न क्षेत्रों से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन के लिए आते थे, जिसके कारण यह धीरे–धीरे अंतरराष्ट्रीय ख्याति का केंद्र बना।

शिक्षा केंद्रों को आर्थिक आधार प्रदान करने में भूमि–अनुदान और धार्मिक संस्थाओं को दिए जाने वाले दान की महत्वपूर्ण भूमिका थी। शासकों और समाज के संपन्न वर्ग द्वारा विद्वानों तथा धार्मिक संस्थाओं को प्रदान किए गए संसाधनों से अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था चलती थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत प्रयास का विषय नहीं थी, बल्कि सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं से भी जुड़ी हुई थी।

7. गुप्तकालीन पाठ्यक्रम

गुप्तकालीन पाठ्यक्रम व्यापक था। धार्मिक विषयों के साथ भाषा और तर्क संबंधी विषयों का अध्ययन किया जाता था। वेद, वेदांग, व्याकरण, छंद, निरुक्त, दर्शन, धर्मशास्त्र और न्याय जैसे विषयों के अतिरिक्त गणित और खगोलशास्त्र का भी अध्ययन होता था। चिकित्सा संबंधी ज्ञान की परंपरा भी प्रचलित थी। इस प्रकार शिक्षा का स्वरूप बहुआयामी था।[6]

व्याकरण का अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण था क्योंकि संस्कृत उस समय विद्वत् और साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रमुख भाषा बन चुकी थी। भाषा की शुद्धता, शब्दों की संरचना और वाक्य–विन्यास को समझने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक माना जाता था। इसी बौद्धिक वातावरण में संस्कृत साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ।

8. संस्कृत भाषा एवं साहित्य का विकास

गुप्तकाल को संस्कृत साहित्य के उत्कर्ष का महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। संस्कृत भाषा को राजकीय संरक्षण और उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। साहित्य के क्षेत्र में कालिदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक जीवन, प्रकृति, प्रेम, राजसत्ता और मानवीय भावनाओं का कलात्मक चित्रण मिलता है। रघुवंश, कुमारसंभव और अभिज्ञानशाकुंतलम् जैसी रचनाएँ संस्कृत साहित्य की उच्च विकसित अवस्था को प्रदर्शित करती हैं।[7]

कालिदास के अतिरिक्त अमरसिंह की अमरकोश जैसी रचना भाषा और शब्दज्ञान के विकास का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन बौद्धिक गतिविधियाँ केवल धार्मिक ग्रंथों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि भाषा–विज्ञान और साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

9. गणित के क्षेत्र में विकास

गुप्तकालीन ज्ञान–विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में गणित का विकास शामिल है। इस काल में गणना, संख्याओं, ज्यामिति और खगोलीय गणनाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। आर्यभट इस परंपरा के प्रमुख प्रतिनिधि थे। उनकी रचना आर्यभटीय गणित और खगोलशास्त्र के इतिहास में विशेष महत्व रखती है।[8]

आर्यभट ने गणितीय समस्याओं के समाधान के लिए व्यवस्थित प्रक्रियाओं का प्रयोग किया। उन्होंने ज्यामिति और त्रिकोणमितीय गणनाओं से संबंधित विषयों पर विचार किया। उनकी गणितीय पद्धति ने आगे आने वाले भारतीय विद्वानों के लिए आधार तैयार किया। भारतीय गणित की विकासशील परंपरा में स्थान–मूल्य प्रणाली और शून्य की अवधारणा का क्रमिक विकास भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा, यद्यपि इसे किसी एक व्यक्ति या एक ही समय की उपलब्धि मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं है।

10. आर्यभट और खगोलशास्त्र

आर्यभट का योगदान केवल गणित तक रीगित नहीं था। उन्होंने खगोलशारत्र

के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने पृथ्वी के घूर्णन से संबंधित विचार व्यक्त किए और ग्रहण की व्याख्या को गणितीय एवं खगोलीय आधार पर समझाने का प्रयास किया।[9] उनके द्वारा ग्रहों और समय की गणना से संबंधित प्रस्तुतियाँ प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र के विकास का प्रमाण हैं।

आर्यभट की विशेषता यह थी कि उन्होंने खगोलीय घटनाओं को समझने के लिए गणना को महत्वपूर्ण साधन बनाया। इससे भारतीय खगोलशास्त्र में गणितीय दृष्टिकोण अधिक मजबूत हुआ। उनकी रचना आर्यभटीय ने आगे आने वाली भारतीय खगोलीय परंपरा को प्रभावित किया।

11. वराहमिहिर का योगदान

वराहमिहिर का सक्रिय काल गुप्तकाल के बाद की अवधि से संबंधित माना जाता है, लेकिन उनका बौद्धिक विकास उस व्यापक परंपरा से जुड़ा था जिसका निर्माण गुप्तकाल के आसपास हुआ था। उनकी पंचसिद्धांतिका में भारतीय और अन्य खगोलीय परंपराओं से संबंधित सामग्री मिलती है। उनकी बृहत्संहिता में खगोल, मौसम, वास्तु, कृषि, प्राकृतिक घटनाओं और विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान का विस्तृत उल्लेख मिलता है।[10]

वराहमिहिर की रचनाएँ इस बात का संकेत देती हैं कि प्राचीन भारतीय विद्वानों के लिए खगोलशास्त्र केवल ग्रहों की गणना तक सीमित विषय नहीं था। प्राकृतिक पर्यावरण, मौसम, कृषि और सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक प्रश्नों को भी खगोलीय एवं प्राकृतिक ज्ञान के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाता था।

12. चिकित्सा एवं आयुर्वेद

गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान की पूर्ववर्ती भारतीय परंपराएँ निरंतर विकसित होती रहीं। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता जैसी आयुर्वेदिक परंपराओं का अध्ययन और प्रयोग इस समय भी जारी था। आयुर्वेद में शरीर, रोग, औषधि, आहार और जीवनशैली के बीच संबंध को महत्व दिया जाता था।[11]

चिकित्सा संबंधी ज्ञान में औषधीय वनस्पतियों का प्रयोग, रोगों के लक्षणों की पहचान तथा आहार–विहार संबंधी नियमों का महत्वपूर्ण स्थान था। इससे यह पता चलता है कि गुप्तकालीन ज्ञान परंपरा में स्वास्थ्य को केवल रोग के उपचार के रूप में नहीं बल्कि स्वस्थ जीवन पद्धति के रूप में भी देखा जाता था।

13. धातु विज्ञान और तकनीकी ज्ञान

गुप्तकालीन तकनीकी ज्ञान का एक महत्वपूर्ण प्रमाण दिल्ली का लौह स्तंभ है। इसकी निर्माण तकनीक तथा लंबे समय तक जंग से अपेक्षाकृत सुरक्षित रहने की क्षमता भारतीय धातु विज्ञान की उन्नत अवस्था को दर्शाती है।[12] यद्यपि किसी एक स्मारक के आधार पर पूरे समाज की तकनीकी क्षमता का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा, फिर भी लौह स्तंभ से यह स्पष्ट होता है कि उस समय धातु के परिष्करण और निर्माण की तकनीकों का पर्याप्त ज्ञान था।

धातु विज्ञान के साथ स्थापत्य और मूर्तिकला में भी तकनीकी कौशल दिखाई देता है। गुप्तकालीन मंदिरों और मूर्तियों में पत्थर के चयन, आकार निर्धारण और कलात्मक संयोजन की उच्च क्षमता दिखाई देती है। देवगढ़ का दशावतार मंदिर इस दृष्टि से महत्वपूर्ण उदाहरण है।

14. शिक्षक–शिष्य संबंध

गुप्तकालीन शिक्षा में गुरु और शिष्य का संबंध केवल अध्यापक और विद्यार्थी तक सीमित नहीं था। गुरु को ज्ञान और नैतिक मार्गदर्शन का प्रमुख स्रोत माना जाता था। विद्यार्थी गुरु के साथ रहकर अध्ययन करता था और दैनिक जीवन में अनुशासन, संयम तथा सेवा की भावना विकसित करता था। मौखिक शिक्षण, प्रश्नोत्तर, व्याख्या और स्मरण शिक्षा की प्रमुख विधियाँ थीं।[13]

इस व्यवस्था में विद्यार्थी से नियमित अध्ययन और अनुशासन की अपेक्षा की जाती थी। ज्ञान को केवल परीक्षा या रोजगार के उद्देश्य से प्राप्त करने के बजाय जीवन को व्यवस्थित बनाने का साधन माना जाता था। हालांकि यह व्यवस्था सभी सामाजिक वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध थी, ऐसा प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

15. महिलाओं की शिक्षा

गुप्तकालीन समाज में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति को लेकर उपलब्ध प्रमाण सीमित हैं। उच्च सामाजिक एवं राजकीय परिवारों की कुछ महिलाओं को साहित्य, धर्म और प्रशासन से संबंधित ज्ञान प्राप्त होने के संकेत मिलते हैं। प्रभावती गुप्ता का उदाहरण इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनके अभिलेखों से उनकी राजनीतिक और सांस्कृतिक सक्रियता का परिचय मिलता है।[14]

फिर भी यह मानना उचित नहीं होगा कि गुप्तकालीन समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा के अवसर प्राप्त थे। शिक्षा की उपलब्धता सामाजिक वर्ग, परिवार और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होती थी। इसलिए महिला शिक्षा का मूल्यांकन करते समय अभिजात वर्ग और सामान्य समाज के बीच अंतर करना आवश्यक है।

16. शिक्षा का आर्थिक आधार

गुप्तकाल में शिक्षा और विद्या संस्थाओं को आर्थिक सहायता विभिन्न माध्यमों से प्राप्त होती थी। शाराकों द्वारा ब्राह्मणों, गठों और धार्गिक रांस्थाओं को भूगि–अनुदान दिए जाने की परंपरा थी। इन संसाधनों का उपयोग धार्मिक गतिविधियों के साथ शिक्षा और विद्वानों के संरक्षण में भी किया जाता था।[15]

विद्वानों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी और राजकीय संरक्षण से उन्हें अध्ययन तथा रचनात्मक कार्य करने का अवसर मिलता था। इस व्यवस्था ने संस्कृत साहित्य और दर्शन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

17. धार्मिक एवं बौद्धिक विविधता

गुप्तकाल में धार्मिक विविधता विद्यमान थी। वैष्णव, शैव, बौद्ध और जैन परंपराओं के अनुयायी विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय थे। इन धार्मिक परंपराओं के अध्ययन केंद्रों ने ज्ञान के संरक्षण और विकास में योगदान दिया। बौद्ध विहारों में दर्शन और तर्क का अध्ययन होता था, जबकि ब्राह्मणपबंस संस्थाओं में वेद, व्याकरण और दर्शन का अध्ययन प्रमुख था। इस विविधता ने भारतीय बौद्धिक जीवन को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।[16]

धार्मिक मतभेदों के बावजूद विभिन्न परंपराओं के बीच वैचारिक संवाद और प्रतिस्पर्धा ने तर्कशास्त्र, दर्शन और भाषा के विकास को प्रभावित किया। इस प्रकार गुप्तकालीन ज्ञान परंपरा को किसी एक धार्मिक धारा तक सीमित नहीं किया जा सकता।

18. गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था की सीमाएँ

गुप्तकाल की शिक्षा व्यवस्था में अनेक उपलब्धियाँ थीं, लेकिन इसकी सामाजिक सीगाएँ भी थीं। शिक्षा तक पहुँच सागाज के साभी वर्गों के लिए सागान नहीं थी। उच्च

शिक्षा मुख्यतः विशेष सामाजिक समूहों, धार्मिक संस्थाओं और संपन्न परिवारों तक अधिक केंद्रित थी। महिलाओं तथा निम्न सामाजिक समूहों की शिक्षा के संबंध में उपलब्ध प्रमाण सीमित हैं।[17]

इस कारण गुप्तकाल को शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण समानता का युग कहना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार उस समय धार्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के बीच आधुनिक अर्थों में स्पष्ट विभाजन नहीं था। ज्योतिष, खगोल और धार्मिक धारणाएँ कई स्थानों पर एक–दूसरे से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं।

19. ज्ञान–विज्ञान की विशेषताएँ

गुप्तकालीन ज्ञान–विज्ञान की प्रमुख विशेषता उसका बहुविषयक स्वरूप था। साहित्य और दर्शन के साथ गणित तथा खगोलशास्त्र का विकास हुआ और चिकित्सा एवं तकनीकी ज्ञान की पूर्ववर्ती परंपराएँ आगे बढ़ीं। इस काल में ज्ञान को संरक्षित करने के साथ–साथ उसकी व्याख्या और पुनर्व्यवस्था का कार्य भी हुआ।[18]

आर्यभट की गणितीय एवं खगोलीय उपलब्धियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतीय विद्वान प्राकृतिक घटनाओं को गणना और निरीक्षण के माध्यम से समझने का प्रयास करते थे। इसी प्रकार वराहमिहिर की रचनाओं में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक और व्यावहारिक ज्ञान का समन्वय दिखाई देता है।

20. आलोचनात्मक मूल्यांकन

गुप्तकाल को इतिहासलेखन में लंबे समय तक "स्वर्ण युग" कहा जाता रहा है। इसका आधार मुख्यतः साहित्य, कला, स्थापत्य और विज्ञान के क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धियाँ हैं। किंतु आधुनिक इतिहासकारों ने इस धारणा को अधिक आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। किसी भी ऐतिहासिक काल की उपलब्धियों का मूल्यांकन उसके सामाजिक ढाँचे और सीमाओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।[19]

गुप्तकाल में ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुईं, लेकिन इन उपलब्धियों का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक समान रूप से पहुँचा, ऐसा कहना कठिन है। इसलिए गुप्तकाल को भारतीय ज्ञान परंपरा के विकास का महत्वपूर्ण चरण मानना अधिक उपयुक्त है, न कि प्रत्येक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त कर लेने वाला काल।

21. निष्कर्ष

गुप्तकाल भारतीय शिक्षा और ज्ञान–विज्ञान के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस काल में शिक्षा का स्वरूप बहुआयामी था और धार्मिक अध्ययन के साथ भाषा, व्याकरण, दर्शन, तर्क, गणित, खगोलशास्त्र तथा चिकित्सा जैसे विषयों का अध्ययन भी किया जाता था। गुरुकुल, आश्रम, मठ और विहार शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र थे। राजकीय संरक्षण, धार्मिक संस्थाओं को प्राप्त दान और सामाजिक सहयोग ने शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक आधार उपलब्ध कराया।

साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत का उत्कर्ष और कालिदास जैसे साहित्यकारों की उपलब्धियाँ गुप्तकाल की सांस्कृतिक समृद्धि को प्रदर्शित करती हैं। विज्ञान के क्षेत्र में आर्यभट का योगदान विशेष महत्व रखता है। गणित और खगोलशास्त्र में उनके विचारों ने भारतीय वैज्ञानिक परंपरा को नई दिशा प्रदान की। वराहमिहिर की रचनाओं में प्राकृतिक एवं खगोलीय ज्ञान का व्यापक स्वरूप दिखाई देता है। धातु विज्ञान, स्थापत्य और चिकित्सा की परंपराएँ भी इस काल की तकनीकी और व्यावहारिक ज्ञान क्षगता को दर्शाती हैं।

अतः कहा जा सकता है कि गुप्तकाल भारतीय ज्ञान परंपरा में संरक्षण, विकास, पुनर्व्याख्या और वैज्ञानिक चिंतन के विस्तार का महत्वपूर्ण चरण था। यद्यपि इस काल की शिक्षा व्यवस्था सामाजिक रूप से पूरी तरह समावेशी नहीं थी, फिर भी इसके बौद्धिक योगदान ने आने वाली शताब्दियों में भारतीय शिक्षा, साहित्य और विज्ञान के विकास को गहराई से प्रभावित किया।

सन्दर्भ सूची

1. आर. एस. शर्मा, भारत का प्राचीन अतीत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 238–242।
2. उपिंदर सिंह, प्राचीन एवं आरंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, पीयरसन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 459–465।
3. डी. सी. सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, खंड–1, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 281–290।
4. ए. एल. बाशम, द वंडर दैट वाज इंडिया, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, 2001, पृ. 163–170।

5. उपिंदर सिंह, प्राचीन एवं आरंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, पीयरसन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 469–474।
6. आर. एस. शर्मा, भारत का प्राचीन अतीत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 243–247।
7. ए. एल. बाशम, द वंडर दैट वाज इंडिया, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, 2001, पृ. 392–398।
8. आर्यभट, आर्यभटीय, संपादित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 1–12।
9. वही, पृ. 13–20।
10. वराहमिहिर, पंचसिद्धांतिका तथा बृहत्संहिता, पृ. 1–18।
11. आर. एस. शर्मा, भारत का प्राचीन अतीत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 248–251।
12. आर. बालासुब्रमण्यम, द दिल्ली आयरन पिलररू न्यू इंसाइट्स, नई दिल्ली, पृ. 1–15।
13. उपिंदर सिंह, प्राचीन एवं आरंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, पीयरसन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 460–468।
14. डी. डी. कोसांबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 226–232।
15. आर. एस. शर्मा, भारत का प्राचीन अतीत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 252–256।
16. ए. एल. बाशम, द वंडर दैट वाज इंडिया, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, 2001, पृ. 160–166।
17. उपिंदर सिंह, प्राचीन एवं आरंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, पीयरसन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 472–478।
18. डी. डी. कोसांबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 232–240।
19. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ. 95–103।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय संघीय व्यवस्था की बदलती प्रकृति
(The Changing Nature of Indian Federal System)

अविनाश कुमार
शोधार्थी – सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), राजकीय महाविद्यालय, खींवसर (नागौर)
डॉ. कमल कुमार भड़िया
शोध निर्देशक – सह आचार्य (राजनीति विज्ञान),
एस. के.राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर।

सारांश (Abstract)

संविधान के द्वारा भारत के लिए एक संघात्मक व्यवस्था के स्थापना की गई हैं, लेकिन संविधान में कहीं भी 'संघ राज्य' (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया हैं, बल्कि उसके स्थान पर 'राज्यों का संघ' (Union of States) शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि भारत राज्यों का एक संघ होगा। भारतीय संघीय व्यवस्था का स्वरूप प्रारम्भ से ही एक विशिष्ट संवैधानिक मिश्रण रहा है, जिसमें संघात्मक और एकात्मक तत्वों का सह–अस्तित्व दिखाई देता है। भारतीय व्यवस्था के संघात्मक पक्ष में शक्तियों के विभाजन, संविधान की सर्वोच्चता, लिखित एवं अपेक्षाकृत कठोर संविधान तथा स्वतंत्र न्यायपालिका को महत्वपूर्ण मानता है। वहीं एकल नागरिकता, केंद्र के पक्ष में शक्तियों का झुकाव, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन की संसदीय शक्ति, एकीकृत न्यायपालिका, आपातकालीन प्रावधान और राज्यों की वित्तीय निर्भरता को एकात्मक या केंद्रीकृत विशेषताओं के रूप में रेखांकित करता है। संघीय व्यवस्था की प्रकृति स्थिर नहीं है, बल्कि गतिशील है। इसे केवल "संघात्मक बनाम एकात्मक" की पारंपरिक द्विआधारी श्रेणी में समझना पर्याप्त नहीं है बल्कि संघवाद, प्रतिस्पर्धी संघवाद, राजकोषीय संघवाद और अंतर–सरकारी संबंधों के इर्द–गिर्द विकसित हुई इस व्यवस्था का अध्ययन करना आवश्यक है।

यह शोध–पत्र भारतीय संघवाद के बदलते स्वरूप का संवैधानिक, सैद्धांतिक, राजनीतिक और राजकोषीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय संघवाद को एक स्थिर संवैधानिक संरचना के बजाय गतिशील, बहुस्तरीय और निरंतर पुनर्संतुलित होने वाली शासन–व्यवस्था के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। GST Council जैसी संस्थाएँ सहयोगात्मक संघवाद की संस्थागत संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं, जबकि हालिया राजकोषीय अनुसंधान केंद्रीय प्रायोजित योजनाओं और बंधित हस्तांतरणों के माध्यम से राज्यों की वास्तविक वित्तीय स्वायत्तता पर प्रश्न उठाता है।

प्रमुख शब्द :

भारतीय संघवाद, सहकारी संघवाद, प्रतिस्पर्धी संघवाद, राजकोषीय संघवाद, GST परिषद, नीति आयोग।

प्रस्तावना :

भारत विश्व के सबसे बड़े और सर्वाधिक विविधता युक्त लोकतांत्रिक राजनीतिक समुदायों में से एक है। इसकी भौगोलिक विशालता, भाषाई–सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक बहुलता और क्षेत्रीय असमानताओं ने ऐसी शासन–व्यवस्था की आवश्यकता उत्पन्न की जिसमें राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय स्वायत्तता के मध्य संतुलन स्थापित किया जा सके। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप भारतीय संविधान ने संघ और राज्यों के मध्य शक्तियों का संवैधानिक विभाजन स्थापित किया। संघवाद ऐसी शासन–व्यवस्था है जिसमें राज्य की समस्त शक्तियों का विभाजन दो प्रकार सरकारों–केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों के बीच किया जाता है। इस व्यवस्था में संविधान द्वारा दोनों सरकारों को पृथक–पृथक शक्तियाँ प्रदान की जाती है। संघीय व्यवस्था के प्रमुख लक्षण हैं : लिखित और कठोर संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, संविधान द्वारा दोनों सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन, स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय और उच्च सदन का राज्य सदन होगा। भारतीय संघवाद पारंपरिक संघीय प्रतिमानों की सरल प्रतिकृति नहीं है। भारतीय संविधान में संघात्मक विशेषताओं के साथ अनेक एकात्मक तत्व मौजूद हैं। एकल नागरिकता, केंद्र के पक्ष में शक्तियों का विभाजन, राज्यों के लिए पृथक संविधान का अभाव, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन की शक्ति और आपातकालीन परिस्थितियों में केंद्र की विस्तृत शक्तियाँ आदि भारतीय संघीय व्यवस्था को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। अपनी अनोखी विशेषताओ के कारण विभिन्न विद्वानों द्वारा इसे अलग–अलग नामों से संबोधित किया है। जैसे– "अर्द्ध–संघीय"[2], "सौदेबाजी का संघ"[3], "सहकारी संघवाद"[4], "परमोच्च संघवाद"[5] आदि। संविधान लागू होने से लेकर समकालीन समय तक भारतीय संघवाद के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन हो रहा हैं। यह परिवर्तन केंद्र में पूर्ण बहुमत की सरकार एवं गठबंधन की सरकार के राज्यों की सरकारों के साथ बदलते संबंधों के कारण होता हैं। भारतीय संघवाद में पिछले लगभग सात दशकों में सिद्धांत और व्यवहार दोनों स्तरों पर पर्याप्त रूप से हुआ है। केंद्र–राज्य संबंध, चुनाव, नीति आयोग, अनुच्छेद 370, सहकारी संघवाद और GST से भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति में परिवर्तन हुआ है।

भारतीय संविधान के संघात्मक लक्षण :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को "राज्यों का संघ" कहा गया है। "Federation" के स्थान पर "Union of States" शब्दावली का प्रयोग इस तथ्य को व्यक्त करता है कि भारतीय संघ राज्यों के पारस्परिक समझौते का परिणाम नहीं है तथा राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के निम्नलिखित लक्षण विद्यमान हैं, जो इस प्रकार हैं :–

- **शक्तियों का विभाजन** – विश्व के अन्य संघात्मक संविधानों के समान भारतीय संविधान द्वारा भी संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया हैं। संविधान की अनुसूची 7 में तीन प्रकार की सूचियों (अनुच्छेद – 246) का वर्णन किया गया हैं :

1. **संघ सूची** – इसमे राष्ट्रीय महत्व के कुल 97 विषय शामिल हैं। जैसे – रक्षा, विदेश मामले, मुद्रा, परमाणु ऊर्जा, आदि। संसद को इस सूची के विषयों पर कानून बनाने का अनन्य अधिकार हैं।
2. **राज्य सूची** – इसमे स्थानीय महत्व के कुल 66 विषय शामिल है। जैसे– सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, स्थानीय सरकार आदि। राज्य विधानसभाओं को इन पर कानून बनाने का

अधिकार हैं।

3. **समवर्ती सूची :** इसमें कुल 47 विषय शामिल हैं। जैसे– शिक्षा, विवाह, तलाक, वन आदि। संघ एवं राज्य दोनों प्रकार की सरकार इन विषयों पर कानून बना सकती हैं, परंतु केन्द्रीय कानून और राज्य के कानून में विधायी टकराव होने पर संघ का कानून मान्य होता हैं। (अनुच्छेद 254)

संविधान की सर्वोच्चता : यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के समान भारतीय संविधान में यह घोषणा नहीं की गई हैं कि संविधान सर्वोच्च होगा, लेकिन फिर भी संविधान देश का सर्वोच्च कानून हैं। देश की सभी प्रकार की सरकारों को इसके अनुसार कार्य करना पड़ता हैं। संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध किसी प्रकार के कानून का निर्माण संभव नहीं हैं।

स्वतंत्र न्यायपालिका – भारतीय संविधान में संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। इसके अंतर्गत एक सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों का प्रावधान किया गया है, जिन्हें संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध संसद या राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पारित कानूनों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार हैं। न्यायालय की यह शक्ति संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषता हैं। डॉ. के.वी. राव के शब्दों में, "इस दृष्टि से हमारा संविधान पूर्व सोवियत संघ या स्विट्जरलैंड के संविधान से अधिक संघात्मक हैं।"[6]

लिखित और कठोर संविधान : भारतीय संविधान एक लिखित और संविधान में संशोधन की दृष्टि से यह कठोर संविधानों की श्रेणी में आता हैं। संविधान के अनुच्छेद 368 में संविधान में संशोधन की कुल दो प्रक्रियाओं का उल्लेख किया गया हैं, जिसमें संविधान के संघात्मक ढांचे से संबंधित प्रावधानों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन राज्यों के सहमति के बिना नहीं हो सकता हैं।

उच्च सदन, 'राज्यों का सदन' होना : भारतीय संसद का उच्च सदन 'राज्यसभा' राज्यों का प्रतिनिधित्व करता हैं। विधायी मामलों में धन विधेयक को छोड़कर अन्य सभी मामलों में इसे लोकसभा के समान शक्ति प्राप्त है। जबकि राज्यों के हितों से संबंधित मामलों जैसे– नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना, राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाना आदि में राज्यसभा को विशेष शक्ति प्राप्त हैं।

भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण :

यद्यपि भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था अपनाई गई है, परंतु संविधान निर्माता भारतीय इतिहास के इस तथ्य से अवगत थे कि भारत में जब–जब केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई हैं, तब–तब भारत की एकता भंग हो गई और उसे पराधीन होना पड़ा। संविधान निर्माता भारत में इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने केन्द्रीय सत्ता को अधिक शक्तिशाली बनाने का किया। पी. एस. देशमुख का मत था कि जो संविधान बना है वह संघात्मक की अपेक्षा एकात्मक अधिक हैं।[7] भारतीय संविधान में निम्नलिखित एकात्मक तत्व मौजूद हैं–

- **इकहरी नागरिकता :** प्रायः संघीय संविधानों में दोहरी नागरिकता पाई जाती है। जैसे– अमेरिका में, परंतु भारत में राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए इकहरी नागरिकता को अपनाया गया हैं।
- **शक्तियों का बंटवारा केन्द्र के पक्ष में** – हमारे संविधान में शक्तियों का बंटवारा इस प्रकार किया गया है कि केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। संविधान द्वारा महत्वपूर्ण 97 विषय संघ–सूची में रखे गए हैं। इन पर केवल संसद ही कानून बना सकती है। समवर्ती–सूची में 47 विषय हैं। इन पर केन्द्रीय संसद तथा राज्यों के विधानमण्डल दोनों ही कानून बना सकते हैं। परन्तु इन दोनों के बनाए हुए कानूनों में कोई

विरोध उत्पन्न हो जाए, तो केन्द्रीय कानून मान्य होता है और राज्यों द्वारा निर्मित कानून निरस्त माना जाता है। जहाँ तक राज्य सूची का सम्बन्ध है सामान्यतया राज्य विधानमण्डल इन विषयों पर कानून बनाएगा, परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद इन विषयों पर भी कानून बना सकती है। अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्र को प्राप्त हैं, न कि राज्यों को। संविधान सभा में अनेक सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया था कि डॉ. अम्बेडकर ने सब कुछ केन्द्र को प्रदान कर दिया है। संविधान–निर्माताओं ने देश में उस समय विद्यमान आर्थिक–राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की अनिवार्यता अनुभव की।

के.एम. मुन्शी ने स्पष्ट कहा था कि 'तथ्य यह है कि भारत के महान् दिन वे थे जबकि देश में शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति थी और सबसे बुरे दिन वे थे, जबकि केन्द्र को प्रांतों की शक्ति द्वारा कमजोर किया जा रहा था और उसकी अवज्ञा हो रही थी।'[8]

संघ और राज्यों के लिए एक ही संविधान – प्रायः संघीय व्यवस्था में राज्यों के संविधान संघ से पृथक होते हैं, लेकिन भारत में भारत के संविधान के अन्तर्गत संघ के संविधान के साथ–साथ राज्यों के संविधान भी सम्मिलित हैं। भारतीय संघ की इकाइयों को अमरीका के राज्यों तथा स्विस कैंटनों की भाँति पृथक संविधान के निर्माण का अधिकार नहीं है।

केन्द्रीय सरकार राज्यों की सीमाओं के परिवर्तन में समर्थ – अमरीका या ऑस्ट्रेलिया के संघ में इकाई राज्यों की सीमाओं में उनकी सहमति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किन्तु हमारे संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार है कि वह (क) किसी राज्य से उसका कोई प्रदेश पृथक करके या दो या अधिक राज्यों को मिलाकर कोई नया राज्य बना दे, (ख) किसी राज्य के क्षेत्रफल में कमी या वृद्धि कर दे, (ग) राज्य की सीमाओं तथा उनके नाम बदल दे। इनके लिए यद्यपि राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य के विधानमण्डल के विचार मालूम करते हैं, लेकिन इन विचारों को स्वीकार करना या न करना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर हैं।

एकीकृत न्याय व्यवस्था : संघ–प्रणाली में संघ और राज्यों के कानूनों को लागू करने के लिए दोहरी न्याय–व्यवस्था आवश्यक समझी जाती है। भारतीय संघ में अमेरिका की तरह दोहरी न्याय–व्यवस्था का प्रबंध करने के स्थान पर न्याय व्यवस्था को एकीकृत कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के बाद न्यायालयों का गठन एक पिरामिड के रूप में होता है। राज्यों के उच्च न्यायालयों का निर्माण और गठन संघीय सत्ता के द्वारा ही किया जाता है।

संकटकाल में एकात्मक शासन : हमारे संविधान में राष्ट्रपति को अनुच्छेद 352, 356 एवं 360 द्वारा संकटकाल की घोषणाएं करने का अधिकार है। अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय संकट काल के समय संसद को राज्य–सूची में वर्णित सभी विषयों पर कानून बनाने और राज्य पर सभी प्रकार के प्रशासनिक नियंत्रण प्राप्त हो जाते हैं। अनुच्छेद 360 के अनुसार राष्ट्रपति वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है और वित्तीय संकट की स्थिति में सभी राज्यों की वित्तीय व्यवस्था पर केंद्र का नियंत्रण स्थापित हो जाता है। वित्तीय संकट के समय राष्ट्रपति राज्यों के वित्त विधेयकों को भी अपनी मंजूरी के लिए मंगवा सकता है। राज्य में संवैधानिक संकट के समय राज्यपाल केंद्रीय सरकार के एजेंट के रूप में राज्य का शासन चलाता है और उस समय संसद उस राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार रखती हैं। इस प्रकार संकटकाल में राज्य की अधीनस्थ इकाई मात्र रह जाती हैं।

एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था : अधिकांश संघ राज्यों में दोहरा कानून, दोहरी न्याय–व्यवस्था, दोहरी उच्च

नागरिक सेवाएं, दोहरा लेखा–परीक्षण, इत्यादि व्यवस्थाएं होती हैं। किन्तु भारतीय संविधान द्वारा उन समस्त महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में, जो राष्ट्र की एकता बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। अखिल भारतीय प्रशासन तथा पुलिस सेवाओं की व्यवस्था की गई हैं और इन सेवाओं के सदस्य राज्यों में मुख्य प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। राज्यसभा के दो तिहाई बहुमत से पारित संकल्प के द्वारा अन्य अखिल भारतीय सेवाएं भी स्थापित की जा सकती हैं, भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के अधीन भारत की लेखा–परीक्षा तथा लेखा–सेवा का आयोजन है, जो एक केंद्रीय सेवा है, किन्तु यह संघ के साथ–साथ राज्यों के व्यय तथा लेखा–परीक्षा कार्य को भी सम्पन्न करती है। निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और आयोग संसद के साथ–साथ राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचनों को भी सम्पन्न करता है। दीवानी तथा दण्ड सम्बन्धी कानून संहिताबद्ध हैं और पूरे देश पर लागू होते हैं। उसकी एकरूपता कायम रखने के लिए उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया है।

राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा : भारतीय संघ के इकाई राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं। राज्यपाल केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। राज्यपाल द्वारा इस तरह से केन्द्रीय सरकार का राज्यों पर प्रत्येक स्थिति में पूर्ण नियन्त्रण रहता है। राज्यपाल की नियुक्ति किए जाने की यह विधि संघात्मक सिद्धांतों के प्रतिकूल है। वह केन्द्र और राज्य के प्रति भक्ति में पारस्परिक विरोध की स्थिति में केन्द्र को ही प्रसन्न रखना चाहेगा, चाहे इससे राज्य के हितों का बलिदान ही क्यों न करना पड़े।

राज्यों को राज्यसभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं : विश्व के अन्य संघों में प्रायः उच्च सदन में छोटे–बड़े सभी राज्यों को बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया है। वहां पर उनके आकार तथा आबादी का ध्यान नहीं रखा जाता है, परन्तु भारत में राज्यों को राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।

राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए : यद्यपि सामान्यतः राज्य विधानसभा द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति से कानून बन जाता है, किन्तु कुछ विधेयक ऐसे भी होते हैं जिन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखना पड़ता हैं, और उनकी स्वीकृति प्राप्त होने पर ही कानून बनाता है।

संविधान के इन प्रावधानों ने केंद्र सरकार को राज्यों के मुकाबले शक्तिशाली बना दिया है, परंतु फिर भी भारतीय संघवाद का ऐतिहासिक आधार "एकता के भीतर विविधता" तथा "स्वायत्तता के साथ समन्वय" के बीच संतुलन की संवैधानिक परियोजना रहा है। किंतु यह संतुलन स्थिर नहीं रहा। राजनीतिक दल–व्यवस्था, राज्यों की बढ़ती राजनीतिक शक्ति, आर्थिक परिवर्तन, राजकोषीय संबंधों और नई अंतर–सरकारी संस्थाओं ने इसके व्यावहारिक स्वरूप को निरंतर प्रभावित किया है।

भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति में आया बदलाव :

भारतीय संविधान में संघात्मक एवं एकात्मक के अद्वितीय मिश्रण के युक्त शासन व्यवस्था को अपनाया गया हैं। संविधान लागू होने के पश्चात संघवाद पिछले लगभग सात दशकों में सिद्धांत और व्यवहार दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण रूप से बदला है। संविधान निर्माताओं द्वारा स्थापित "एकात्मक झुकाव वाले संघ" से लेकर आज तक भारतीय संघवाद के स्वरूप में आए प्रमुख बदलावों को निम्नलिखित चरणों में समझ सकते हैं–

1. **एकदलीय और सहकारी संघवाद (1952 –1967) :** केंद्र एवं राज्यों में एक ही दल कॉंग्रेस की सरकार

होने के कारण इसे एकदलीय संघवाद या काँग्रेस प्रणाली[9] भी कहा जाता हैं। राज्यों में क्षेत्रीय नेताओं का दबदबा, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956, भाषाई विविधता की सफलता आदि सहकारी संघवाद के लक्षण थे। यद्यपि योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद के केन्द्रीकृत आर्थिक योजनाएं लागू की जाती थी।

2. टकरावपूर्ण और केन्द्रीकृत संघवाद (1967–1989) – 1967 के चुनावों में कई राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारें बनीं, जिससे केंद्र–राज्य संबंधों में तनाव बढ़ा। अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) और राज्यपाल के पद का राजनीतिक उपयोग बढ़ा, जिससे राज्य सरकारों को बर्खास्त किया जाने लगा। इसके साथ ही आपातकाल (1975–77) के दौरान सत्ता अत्यधिक केंद्रीकृत हुई। इस तनावपूर्ण स्थिति में राज्यों की वित्तीय और राजनीतिक स्वायत्तता की मांग को देखते हुए केंद्र सरकार ने 1983 में सरकारिया आयोग का गठन किया। पॉल ब्रास ने भारतीय संघीय व्यवस्था के बारे में कहा कि "भारत में सत्ता को मजबूत करने की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से कमजोर हैं और अधिकतम स्तर पर एकाग्रता से सत्ता तुरंत बिखरने लगती हैं।" यद्यपि राजीव गांधी सरकार ने राज्यों की स्वायत्तता एवं विकेन्द्रीकरण की क्षेत्रीय मांगों के साथ समायोजन करने का प्रयास किया।

3. गठबंधन राजनीति और बहु–दलीय संघवाद (1989–2014) – 1989 के बाद केंद्र में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ, जिसमें क्षेत्रीय दलों (Regional Parties) की भूमिका निर्णायक हो गई। 1994 के एस. आर. बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में संविधान के संघात्मक स्वरूप की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया तथा अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर प्रभावी अंकुश लगाया। 73वें और 74वें संविधान संशोधन (1992) द्वारा त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू कर सत्ता का विकेंद्रीकरण किया गया। अंतर–राज्य परिषद (Inter-State Council) से संघवाद का स्वरूप 'सौदाकारी' (Bargaining Federalism) हुआ। इस प्रकार इस काल में तीन प्रमुख नीतिगत बदलाव हुए –

1. वित्तीय स्वायतता – कुख्यात लाइसेन्स, परमिट एवं कोटा राज की समाप्ति।
2. न्यायिक सुरक्षा – एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ ने संघीय ढांचे को मजबूत किया।
3. संस्थागत स्थानीय स्वशासन – नगरीय निकाय एवं पंचायती राज शासन।
4. मजबूत केंद्र और प्रतिस्पर्धी–सहकारी संघवाद (2014–2024) – 2014 के बाद केंद्र में एक दल को पूर्ण बहुमत मिलने से राष्ट्रीय नेतृत्व पुनः मजबूत हुआ।

संस्थागत बदलाव :

योजना आयोग को समाप्त कर नीति आयोग बनाया गया, जिसका उद्देश्य 'सहकारी संघवाद' (Cooperative Federalism) और 'प्रतिस्पर्धी संघवाद' (Competitive Federalism) को बढ़ावा देना था।

वित्तीय एकीकरण : GST परिषद का गठन वित्तीय संघवाद में साझा निर्णय लेने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बना।

नवीन चुनौतियाँ : राज्यपालों की भूमिका, केंद्रीय जांच एजेंसियों के उपयोग, वित्तीय आवंटन और समवर्ती सूची के विषयों पर केंद्र–राज्य के बीच नए नीतिगत मतभेद उभरे।

नीति आयोग :

नीति आयोग भारत सरकार का नीति से संबंधित प्रमुख 'थिंक टैंक' है, जो निर्देशित और नीतिगत संयंत्र प्रदान करता है। केंद्रीय संकल्प के माध्यम से 01 जनवरी, 2015 को नीति आयोग का गठन किया गया। राष्ट्रीय हित में संयुक्त कार्य करने के लिए राज्य को एक मंच पर लाने के लिए नीति आयोग भारत सरकार के सर्वोत्कृष्ट

मंच के रूप में कार्य करता है और इस प्रकार से सहयुक्त संघवाद को बढ़ावा देता है।

सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism)

सहकारी संघवाद एक ऐसी शासन प्रणाली है जहाँ केंद्र सरकार और राज्य सरकारें किसी विवाद के बजाय आपसी सहयोग, समन्वय और साझी जिम्मेदारी के साथ देश के विकास के लिए काम करती हैं। प्रसिद्ध विशेषज्ञ ग्रैनविल ऑस्टिन ने भारतीय संविधान की संरचना को 'सहकारी संघवाद' कहा है। भारत में सहकारी संघवाद के महत्वपूर्ण लक्ष्य को साकार करने और सुशासन को बढ़ावा देने के लिए नीति आयोग का गठन किया गया है। इस मान्यता के साथ कि सशक्त राज्य एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण करते हैं, नीति आयोग भारत सरकार के लिए एक आदर्श मंच के रूप में कार्य करता है, जो राज्यों को 'टीम इंडिया' के रूप में एकजुट करके राष्ट्रीय विकास एजेंडा की दिशा में काम करता है।

इस संदर्भ में, नीति आयोग ने सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने के लिए संरचित सहायता पहलों और राज्योंध्केंद्र शासित प्रदेशों के साथ निरंतर जुड़ाव के माध्यम से कई कदम उठाए हैं। इनमें प्रधानमंत्री/मंत्रिमंडल मंत्रियों और सभी मुख्यमंत्रियों के बीच बैठकें, राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर मुख्यमंत्रियों के उपसमूहों का गठन, सर्वोत्तम प्रथाओं का आदान–प्रदान, राज्य/केंद्र शासित प्रदेशों के पदाधिकारियों को नीतिगत सहायता और क्षमता विकास प्रदान करना, पिछड़े जिलों के विकास के लिए आकांक्षी जिला कार्यक्रम का शुभारंभ, विभिन्न क्षेत्रों में विषय–आधारित व्यापक जुड़ाव, भूमि पट्टे और कृषि विपणन सुधारों के लिए आदर्श कानूनों का निर्माण और पूर्वोत्तर और हिमालयी राज्यों तथा द्वीप विकास के लिए क्षेत्र–विशिष्ट हस्तक्षेप शामिल हैं।

प्रतिस्पर्धी संघवाद (Competitive Federalism)

प्रतिस्पर्धी संघवाद एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें विभिन्न राज्य निवेश आकर्षित करने, आर्थिक विकास को गति देने और जनहित सेवाओं तथा प्रशासन में सुधार के लिए एक–दूसरे के साथ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसमें केंद्र और राज्य या केवल राज्य आपस में श्रेष्ठ प्रदर्शन करने की होड़ में रहते हैं नीति आयोग राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के बेहतर प्रदर्शन को बढ़ावा देकर प्रतिस्पर्धी संघवाद को प्रोत्साहित करने का प्रयास करता है। यह विभिन्न क्षेत्रों में पारदर्शी रैंकिंग और सहयोगात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से राज्यों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है। नीति आयोग द्वारा शुरू किए गए कुछ सूचकांकों में स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक, राज्य स्वास्थ्य सूचकांक, समग्र जल प्रबंधन सूचकांक, सतत विकास लक्ष्य सूचकांक, भारत नवाचार सूचकांक और निर्यात प्रतिस्पर्धा सूचकांक शामिल हैं। नीति आयोग आकांक्षी जिलों के प्रदर्शन के लिए प्रति माह डेल्टा रैंकिंग भी जारी करता है।

विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में राज्यों की रैंकिंग, मात्रात्मक वस्तुनिष्ठ मानदंडों के आधार पर, उन्हें और यहां तक कि जिलों को भी अपने प्रदर्शन में सुधार करने के लिए प्रोत्साहित करती है। नीति आयोग, राज्यध्केंद्र शासित प्रदेश सरकारों, संबंधित मंत्रालयों/विभागों सहित सभी हितधारकों के साथ मिलकर संकेतक ढांचे, समीक्षा तंत्र और क्षमता निर्माण के लिए काम करता है।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) और संस्थागत संघवाद :

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) 101वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 के रूप में अधिनियमित किया गया, जो संसद और राज्य विधानमंडलों को वस्तु एवं सेवा कर से संबंधित कानून बनाने की समवर्ती शक्ति प्रदान करता है और वस्तु एवं सेवा कर परिषद के गठन का प्रावधान करता है। जीएसटी व्यवस्था ने एक निर्बाध राष्ट्रीय

बाजार की नींव रखी है, जिससे भारत की कर प्रणाली में बदलाव आया है और आर्थिक विकास को गति मिली है। इससे एक महत्वपूर्ण विरोधाभास सामने आता है, एक ओर राष्ट्रीय कर व्यवस्था में अधिक एकरूपता है, दूसरी ओर निर्णय–निर्माण के लिए राज्यों की संस्थागत भागीदारी भी है। अतः GST भारतीय संघवाद में एकीकरण और सहभागिता के सह–अस्तित्व का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है।

जीएसटी परिषद :

संविधान के अनुच्छेद 279a(1) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा जीएसटी परिषद का गठन किया गया। इसका मुख्य कार्य वस्तु और सेवा कर (GST) से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों पर केंद्र और राज्य सरकारों को नीतिगत सिफारिशें देना है। प्राकृतिक आपदाओं/विपदाओं के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए विशेष दरें, कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान आदि पर केंद्र और राज्यों को सिफारिशें करेगी। सामान्यतः, जीएसटी परिषद अपनी बैठकों में सर्वसम्मति के आधार पर निर्णय लेती है। हालांकि, यदि किसी प्रस्ताव पर मतदान होता है, तो केंद्र सरकार के मत का भार उस बैठक में डाले गए कुल मतों का एक तिहाई होगा, सभी राज्य सरकारों के मतों का संयुक्त भार उस बैठक में डाले गए कुल मतों का दो तिहाई होगा, और प्रस्ताव तभी पारित होगा जब उपस्थित और इस प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करने वाले सदस्यों का कुल भारित मत सभी मतों के तीन चौथाई के बराबर या उससे अधिक हों।

संविधान के अनुच्छेद 279a(2) के अनुसार, जीएसटी परिषद में निम्नलिखित सदस्य होंगे :–

क) केंद्रीय वित्त मंत्री

ख) राजस्व या वित्त प्रभारी केंद्रीय राज्य मंत्री

ग) प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा नामित वित्त या कराधान के प्रभारी मंत्री कोई अन्य मंत्री

घ) भारत के संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत आपातकाल की घोषणा वाले राज्य के राज्यपाल द्वारा मनोनीत कोई भी व्यक्ति।

इस प्रक्रिया में जीएसटी परिषद ने नीतियों की नियमित समीक्षा और संशोधन करके चुनौतियों का सामना करने में लचीलापन दिखाया है। इस गतिशील दृष्टिकोण ने आवश्यक सुधारों को संभव बनाया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि कर प्रणाली व्यवसायों और अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित हुई है और इसने भारत में सहकारी संघवाद के विचार को मजबूत किया है।

निष्कर्ष :

भारतीय संघीय व्यवस्था की बदलती प्रकृति यह दर्शाती है कि संघवाद एक स्थिर संवैधानिक श्रेणी नहीं है, बल्कि यह एक गतिशील अवधारणा है, जो समय एवं केंद्र सरकार की स्थिति के अनुसार निरंतर विकसित हो रहा हैं। भारत की संवैधानिक संरचना में शक्तियों का विभाजन, संविधान की सर्वोच्चता और स्वतंत्र न्यायपालिका जैसे संघात्मक तत्व हैं, जबकि एकल नागरिकता, मजबूत केंद्रीय शक्तियाँ, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन तथा आपातकालीन प्रावधान केंद्रीकरण की दिशा को प्रदर्शित करते हैं। समकालीन शोध से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद की प्रकृति को समझने के लिए सहकारी संघवाद, राजकोषीय संघवाद और बदलते केंद्र–राज्य संबंधों को केंद्रीय स्थान देना आवश्यक है।

अतः इस शोध का निष्कर्ष है कि भारतीय संघवाद का सबसे उपयुक्त वर्णन "गतिशील, बहुस्तरीय और निरंतर पुनर्संतुलित होने वाली संघीय व्यवस्था" के रूप में किया जा सकता है। इसमें केंद्रीकरण और

विकेंद्रीकरण, सहयोग और प्रतिस्पर्धा, संवैधानिक नियंत्रण और राजनीतिक स्वायत्तता– सभी एक साथ, किंतु अलग–अलग क्षेत्रों और परिस्थितियों में कार्य करते हैं।

संदर्भ सूची :

[1] "India, that is Bharat, shall be a Union of States." Article 1 of the Constitution.

[2] Wheare, K. C. (1963). Federal Government (4th ed.). Oxford: University Press.

[3] Morris-Jones W. H., . (1964). The government and politics of India. London: Hutchinson & Co. Ltd. Chicago.

[4] Austin, G. (1966). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford: Clarendon Press

[5] Santhanam, K. (1960). Union-State Relations in India. Lakdawala, D T Published

[6] Rao, K. V. (1961). Parliamentary democracy of India: A critical commentary. World Press.

[7] संविधान सभा वाद–विवाद, खण्ड XI-, पृ. 745।

[8] संविधान सभा वाद–विवाद, खण्ड–3, 23, पृ. 927।

[9] कोठारी, रजनी (1964), 'द कांग्रेस शसिस्टम' इन इंडिया।
Goods and Services Tax Council. (n.d.). The GST Council. Government of India. GST Council की आधिकारिक जानकारी।

[10] Goods and Services Tax Council. (n.d.). Vision & mission. Government of India. GST Council Vision & Mission

[11] Devi, R. (2021). Nature of the federal system. International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology, 6(2). https://doi.org/10.48175/IJARSCT-6582

[12] Dalal, R. S., & Monika. (2024). Cooperative federalism in India: Expectations and challenges. Dynamics of Public Administration, 41(1), 10–19. https://doi.org/10.5958/0976-0733.2024.00002.1

[13] Oxford University Press. (2024). The changing nature of federalism in India. In The Oxford handbook of Indian politics. https://doi.org/10.1093/oxfordhb/9780198894261.013.7

[14] Sumalatha, B. S., Kumary, A. L., & Roy, V. P. N. (2026). Issues and challenges of fiscal federalism in India: An analysis of the centrally sponsored schemes. Journal of Public Affairs. Advance online publication. https://doi.org/10.1177/09763996261462311

[15] Government of India. (1950). The Constitution of India.

[16] नीति आयोग –https://www.niti.gov.in/cooperative-federalism
https://www.niti.gov.in/competitive-federalism

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

जल संसाधन में प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण : एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय अध्ययन

Dr. Arvind Kumar Jakhar
(NET-JRF and Ph.D. in Geography)
Assistant Professor, Government PG College, Tijara, District : Khairthal -Tijara.

सारांश :

जल मानव सभ्यता के अस्तित्व और विकास का मूल आधार है। कृषि, पशुपालन, उद्योग, नगरीकरण, स्वास्थ्य, जैव–विविधता तथा सामाजिक–आर्थिक जीवन की निरंतरता जल की उपलब्धता और उसके विवेकपूर्ण प्रबंधन पर निर्भर करती है। भारत में जल संसाधनों के प्रति दृष्टिकोण केवल भौतिक उपयोग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय आयामों का समन्वय दिखाई देता है। प्राचीन भारतीय समाज ने जल को जीवनदायी, पवित्र और सामुदायिक संपदा के रूप में देखा तथा वर्षा, नदियों, कुआँ, तालाबों, जलाशयों और अन्य जलस्रोतों के संरक्षण के लिए अनेक स्थानीय प्रणालियाँ विकसित कीं।

वैदिक साहित्य में जल को आप के रूप में संबोधित करते हुए उसकी जीवनदायिनी और शुद्धिकारी शक्ति की स्तुति की गई है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता के नगरों में विकसित कुआँ, स्नानागारों, नालियों और जल–निकासी प्रणालियों से पता चलता है कि जल आपूर्ति तथा स्वच्छता का व्यवस्थित ज्ञान विद्यमान था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सिंचाई, जलाशयों, कृषि और राज्य की भूमिका के संबंध में महत्वपूर्ण प्रशासनिक विचार मिलते हैं। बाद की भारतीय परंपराओं में तालाब, बावड़ी, कुण्ड, टांका, जोहड़, नाड़ी, एरी, केरे, आहर–पाइन आदि स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुए।

विशेष रूप से राजस्थान जैसे शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में वर्षाजल संचयन की ऐसी प्रणालियाँ विकसित हुई जो अनिश्चित, अनियमित व कम वर्षा में भी समुदाय को पेयजल उपलब्ध कराने तथा भूजल पुनर्भरण में सहायक थीं। जिसमें तालाब, नाड़ी, जोहड़, टांका, कुंड, कुई, बेरी, बावड़ी, झालरा, टोबा, खड़ीन, आगर–नाली व्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार के बाँध और जलाशय प्रमुख हैं। इन पारम्परिक प्रणालियों का उद्देश्य केवल वर्षाजल का संग्रह करना नहीं था, बल्कि वर्षा की प्रत्येक बूंद को स्थानीय स्तर पर रोकना, उसका संरक्षण करना, भूजल का पुनर्भरण करना, मिट्टी की नमी बनाए रखना, कृषि एवं पशुपालन को सहारा देना तथा समुदाय की पेयजल आवश्यकताओं को पूरा करना भी था। विशेष रूप से खड़ीन प्रणाली पश्चिमी राजस्थान की पर्यावरणीय

परिस्थितियों के अनुरूप विकसित ऐसी कृषि–जल प्रबंधन प्रणाली है, जिसमें वर्षाजल और बहाव को रोककर मिट्टी में नमी संरक्षित की जाती है और बाद में बिना अतिरिक्त सिंचाई के रबी फसलों का उत्पादन किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययनों में इसे जल एवं मृदा संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत प्रभावी प्रणाली माना गया है। (Science Direct)

राजस्थान की पारम्परिक जल प्रणालियों का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उनका सामाजिक एवं सांस्कृतिक चरित्र था। जल–संरचनाओं का निर्माण केवल शासकों द्वारा नहीं, बल्कि व्यापारी वर्ग, धार्मिक संस्थाओं, ग्राम समुदायों और स्थानीय दानदाताओं द्वारा भी कराया जाता था। हाल के ऐतिहासिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन राजस्थान में बावड़ियों, तालाब और कुंड पेयजल स्रोत होने के साथ–साथ सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। (Taylor & Francis Online)

पारंपरिक भारतीय जल प्रबंधन का मूल दर्शन था जहाँ वर्षा हो, वहीं जल को रोकनाय स्थानीय जलस्रोतों का संरक्षण करना, जल का सामुदायिक उपयोग करना, और जल के साथ प्रकृति तथा समाज के बीच संतुलन स्थापित करना।

आधुनिक भारत में भूजल के अत्यधिक दोहन, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा और तीव्र शहरीकरण के कारण जल संकट गंभीर होता जा रहा है। इस परिस्थिति में प्राचीन भारतीय जल ज्ञान का पुनर्मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। हालांकि अतीत की व्यवस्थाओं को ज्यों का त्यों अपनाना संभव नहीं है, लेकिन उनके मूल सिद्धांतों को आधुनिक विज्ञान, जल–विज्ञान, भूजल अध्ययन और तकनीकी प्रबंधन के साथ जोड़कर अधिक टिकाऊ जल नीति विकसित की जा सकती है। इसलिए पारम्परिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान, GIS, भूजल पुनर्भरण, जल गुणवत्ता प्रबंधन तथा सहभागी जल शासन के साथ जोड़ना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द : जल संसाधन, प्राचीन भारत, पारम्परिक जल प्रबंधन, जल संरक्षण, वर्षाजल संचयन, सिंचाई, खड़ीन, बावडी, कुण्ड, टांका, जोहड, तालाब, नाड़ी, सामुदायिक जल प्रबंधन, सामुदायिक सहभागिता।

प्रस्तावना :

जल पृथ्वी पर जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। मानव शरीर से लेकर कृषि और संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र तक प्रत्येक जैविक प्रक्रिया किसी न किसी रूप में जल पर निर्भर करती है। जल संसाधन किसी भी समाज की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

मानव सभ्यता के इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदियों और जलस्रोतों के आसपास हुआ। भारत में सिंधु, सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और अन्य नदियों ने मानव बस्तियों, कृषि और व्यापार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक एवं जलवायवीय विविधता अत्यंत व्यापक है। हिमालयी क्षेत्रों में हिम और हिमनदों से जल प्राप्त होता है, जबकि राजस्थान में वर्षा अल्प और अनियमित है। राजस्थान के कालीबंगा क्षेत्र सहित उत्तर–पश्चिमी भारत में प्राचीन जल एवं नदी प्रणालियों से संबंधित पुरातात्त्विक तथा भू–आकृतिक साक्ष्य भी प्राप्त हुए हैं। (Central Water Commission)

दक्षिण भारत में मानसूनी वर्षा पर आधारित टैंक सिंचाई की परंपरा विकसित हुई, जबकि पूर्वी भारत में बाढ़ और नदी आधारित जल प्रणालियों के अनुरूप तकनीकें विकसित हुईं। इस प्रकार भारत की पारंपरिक जल प्रणालियाँ एक समान नहीं थी, वे स्थानीय पर्यावरण के अनुरूप विकसित हुई थीं।

पारम्परिक जल प्रबंधन को केवल पुरानी तकनीक समझना उचित नहीं है। यह वास्तव में स्थानीय पारिस्थितिकी, सामाजिक संस्थाओं, आर्थिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच विकसित ज्ञान–व्यवस्था थी। राजस्थान में टांका, नाड़ी, जोहड़, खड़ीन, कुंड, कुई, बेरी, बावड़ी और झालरा जैसी संरचनाएँ विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुईं। राजस्थान की पारम्परिक वर्षाजल प्रणालियों पर उपलब्ध साहित्य भी इन्हें कई पीढ़ियों के अनुभव और स्थानीय सामग्री पर आधारित ज्ञान के रूप में प्रस्तुत करता है। (Chilean Academic Journals Portal)

इसी कारण प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन को केवल कुछ पुरानी तकनीकों का संग्रह मानना उचित नहीं होगा। यह वास्तव में स्थानीय पर्यावरण, सामाजिक संगठन, आर्थिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच विकसित एक समग्र व्यवस्था थी।

शोध समस्या :

आधुनिक भारत में जल संसाधनों पर दबाव निरंतर बढ़ रहा है। बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण, औद्योगीकरण, कृषि में भूजल का अत्यधिक उपयोग, जल प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन ने जल सुरक्षा को चुनौती दी है। इसके विपरीत भारत के अनेक ग्रामीण और शुष्क क्षेत्रों में ऐसी पारंपरिक जल प्रणालियाँ रही हैं जिनमें कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी वर्षाजल को लंबे समय तक सुरक्षित रखने की क्षमता थी।

इस शोध की मूल समस्या यह है कि –

क्या प्राचीन भारतीय जल–दृष्टिकोण में ऐसे सिद्धांत और व्यवस्थाएँ मौजूद थीं, जिनसे आधुनिक भारत अपने जल संकट के समाधान के लिए उपयोगी शिक्षा प्राप्त कर सकता है? तथा नवाचार एवं विज्ञान–तकनीकी प्रबंधन से वर्तमान में जल–प्रबंधन की चुनौतियों में पारम्परिक ज्ञान की संभावित भूमिका का मूल्यांकन कर उचित समाधान खोजने में मदद मिल सकती है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि प्राचीन एवं पारम्परिक जल प्रबंधन प्रणालियों ने भारत में जल सुरक्षा को किस प्रकार बनाए रखा तथा वर्तमान जल संकट के समाधान में इन प्रणालियों से क्या सीख प्राप्त की जा सकती है।

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. प्राचीन भारतीय चिंतन में जल के स्थान का अध्ययन करना।
2. वैदिक साहित्य में जल संबंधी अवधारणाओं का विश्लेषण करना।
3. सिंधु घाटी सभ्यता की जल व्यवस्था का अध्ययन करना।
4. अर्थशास्त्र में जल एवं सिंचाई संबंधी प्रशासनिक विचारों को समझना।
5. भारत की पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियों का क्षेत्रीय अध्ययन करना।
6. राजस्थान की जल–संरक्षण परंपरा का विशेष विश्लेषण करना।
7. जल प्रबंधन में समुदाय की भूमिका को स्पष्ट करना।
8. जल और पर्यावरण के बीच संबंध का अध्ययन करना।
9. प्राचीन एवं आधुनिक जल प्रबंधन के बीच तुलनात्मक विश्लेषण करना।
10. वर्तमान जल संकट के समाधान में पारंपरिक ज्ञान की संभावित भूमिका का मूल्यांकन करना।

शोध-पत्र के लिए संभावित शोध-परिकल्पना :

प्राचीन भारतीय जल संसाधन प्रबंधन स्थानीय पारिस्थितिकी, सामुदायिक सहभागिता, वर्षाजल संचयन, जल पुनर्भरण तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित था। अतः इसके मूल सिद्धांतों को आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ समन्वित करके वर्तमान जल संकट के समाधान में प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सकता है।

संभावित शोध-प्रश्न :

1. प्राचीन भारतीय चिंतन में जल को किस प्रकार समझा गया?
2. क्या वैदिक साहित्य में जल संरक्षण की अवधारणा दिखाई देती है?
3. सिंधु सभ्यता की जल व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ क्या थी?
4. अर्थशास्त्र में राज्य और जल प्रबंधन का क्या संबंध था?
5. राजस्थान की पारंपरिक जल प्रणालियों शुष्क पर्यावरण के अनुकूल कैसे थी?
6. पारंपरिक जल प्रबंधन में समुदाय की क्या भूमिका थी?
7. प्राचीन जल ज्ञान आधुनिक सतत विकास के लिए कितना उपयोगी है?
8. परंपरागत और आधुनिक जल प्रबंधन के बीच किस प्रकार समन्वय स्थापित किया जा सकता है?
9. पारंपरिक जल संरचनाओं के पतन के प्रमुख कारण क्या हैं?
10. वर्तमान जल संकट के समाधान में स्थानीय जल ज्ञान की क्या भूमिका हो सकती है?

केंद्रीय शोध-तर्क :

इस शोध पत्र का केंद्रीय तर्क यह है कि प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन की वास्तविक शक्ति उसकी किसी एक तकनीक में नहीं बल्कि स्थानीयता, संचयन, पुनर्भरण, सामुदायिक सहभागिता और प्रकृति के साथ संतुलन पर आधारित समय दृष्टि में निहित थी। इसलिए आधुनिक जल नीति को केवल बड़े बाँधों, नहरों और पाइपलाइन तक सीमित रखने के बजाय विकेंद्रीकृत वर्षाजल संचयन, स्थानीय जल निकायों के पुनर्जीवन और सामुदायिक जल शासन को भी समान महत्व देना चाहिए।

शोध की सीमाएँ :

इस शोध की कुछ सीमाएँ भी हैं।

1. भारत की सभी पारंपरिक जल प्रणालियों का विस्तृत अध्ययन एक ही शोधपत्र में संभव नहीं है।
2. उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों में क्षेत्रीय असमानता है।
3. धार्मिक ग्रंथों से प्राप्त जानकारी को प्रत्यक्ष ऐतिहासिक तथ्य मानने के बजाय आलोचनात्मक संदर्भ में पढ़ना आवश्यक है।
4. सभी पारंपरिक प्रणालियों आधुनिक परिस्थितियों में समान रूप से उपयोगी नहीं हैं।
5. प्राचीन जल व्यवस्थाओं के सामाजिक पक्षों पर अधिक क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

शोध-पद्धति :

इस अध्ययन में मुख्यतः ऐतिहासिक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसमें द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक अध्ययनों, शोध–पत्रों, सरकारी दस्तावेजों तथा पारम्परिक जल प्रबंधन पर उपलब्ध अकादमिक साहित्य का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के लिए निम्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है –

- वैदिक साहित्य।
- कौटिल्य का अर्थशास्त्र।
- पुरातात्त्विक साक्ष्य।
- प्राचीन भारतीय नगरों की जल संरचनाएँ।
- पारंपरिक जल प्रणालियों पर प्रकाशित अध्ययन।
- पर्यावरण एवं जल प्रबंधन संबंधी शोध।

भारत में पारंपरिक जल संचयन पर प्रकाशित संस्थागत रिपोर्ट :

Centre for Science and Environment के अनुसार भारत में जल संचयन की अनेक प्रणालियाँ स्थानीय पारिस्थितिकी और संस्कृति के अनुरूप विकसित हुई थीं और इनका उपयोग प्राचीन काल से होता आया है।

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में जल की अवधारणा :

प्राचीन भारत में जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति, धर्म और पर्यावरण का आधार माना गया। भारतीय सभ्यता का विकास नदियों, तालाबों, कुओं और अन्य जल स्रोतों के आसपास हुआ। जल के संरक्षण और संतुलित उपयोग के लिए प्राचीन काल में अनेक परंपराएँ एवं व्यवस्थाएँ विकसित की गई थीं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण :

सिंधु घाटी सभ्यता में विकसित जल निकासी व्यवस्था, कुएँ और स्नानागार जल प्रबंधन की उन्नत तकनीक को दर्शाते हैं।

वैदिक साहित्य में जल को आप कहा गया है। जल के प्रति आदर का भाव अनेक वैदिक मंत्रों में दिखाई देता है।

ऋग्वेद में जल को जीवन, स्वास्थ्य और शुद्धि से जोड़ा गया है। आप सूक्त जल की महता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

यहाँ जल को केवल प्यास बुझाने वाला पदार्थ नहीं बल्कि जीवन और स्वास्थ्य से संबंधित शक्ति माना गया है। वैदिक दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि मनुष्य स्वयं को प्रकृति से अलग करके नहीं देखता। वर्षा, नदियों, वनस्पति, कृषि और मानव जीवन परस्पर संबंधित दिखाई देते हैं।

वैदिक साहित्य में नदियों, वर्षा और जल को जीवनदायी शक्ति के रूप में महत्व दिया गया।

मौर्य एवं गुप्त काल में तालाब, बांध, कुएँ और सिंचाई व्यवस्था के निर्माण पर ध्यान दिया गया।

राजस्थान की बावड़ियाँ और जोहड़, दक्षिण भारत के तालाब एवं टैंक, तथा विभिन्न क्षेत्रों की पारंपरिक जल–संरचनाएँ स्थानीय जल प्रबंधन का उदाहरण हैं।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण :

भारतीय संस्कृति में जल को पवित्र माना गया। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा आदि नदियों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व रहा है। कुएँ, तालाब और घाट सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण केंद्र थे। जल स्रोतों की स्वच्छता और संरक्षण को धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक परंपराओं से जोड़ा गया।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण :

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन पर जोर था। जल का अत्यधिक दोहन करने के बजाय वर्षा जल के संचयन, भूजल के संरक्षण और स्थानीय जल स्रोतों के उपयोग की परंपरा थी। वन, नदी, भूमि और जल को एक–दूसरे से जुड़ी प्राकृतिक व्यवस्था के रूप में देखा गया।

प्रमुख पारंपरिक जल-संरक्षण प्रणालियाँ :

- **बावड़ी/वाव** – भूमिगत जल तक पहुँच और जल संग्रहण।
- **जोहड़** – वर्षा जल को रोकने एवं भूजल पुनर्भरण की व्यवस्था।
- **तालाब एवं कुंड** – सामुदायिक जल संग्रहण।
- **नहर एवं सिंचाई प्रणाली** – कृषि के लिए जल की व्यवस्था।
- **वर्षा जल संचयन** – वर्षा के पानी को भविष्य के उपयोग के लिए सुरक्षित करना।

जल केवल संसाधन नहीं :

आधुनिक आर्थिक भाषा में जल को सामान्यतः प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। किंतु प्राचीन भारतीय चिंतन में जल का अर्थ इससे कहीं व्यापक था।

जल –

- जीवन का आधार था,
- कृषि का आधार था,
- स्वास्थ्य का आधार था,
- धार्मिक अनुष्ठानों का आधार था,
- सामाजिक जीवन का केंद्र था,
- पर्यावरणीय संतुलन का महत्वपूर्ण तत्व था।

इसलिए जल के प्रति दृष्टिकोण में उपयोगिता के साथ श्रद्धा और नैतिकता भी जुड़ी हुई थी।

वर्षा और कृषि :

प्राचीन भारतीय समाज मुख्यतः कृषि प्रधान था। इसलिए वर्षा का सामाजिक और आर्थिक महत्व अत्यधिक था।

वर्षा –

वर्षा, जल, कृषि, अन्न मानव जीवन की श्रृंखला का आधार थी।

मानसून आधारित कृषि व्यवस्था में वर्षा का सही समय और पर्याप्त मात्रा में होना अत्यंत आवश्यक था। इसलिए वर्षा जल को संग्रहित करने की स्थानीय तकनीकों का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ।

नदियों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण :

भारतीय संस्कृति में नदियों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी नदियाँ केवल जलस्रोत नहीं थीं।

नदियों से जुड़े थे –

- कृषि,
- व्यापार,

- परिवहन,
- धार्मिक जीवन,
- नगरों का विकास,
- सांस्कृतिक परंपराएँ।

नदियों को मातृरूप में देखने की परंपरा ने जल के प्रति सम्मान की सांस्कृतिक भावना को मजबूत किया।

हालाँकि यहाँ एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रश्न भी उठता है–केवल धार्मिक श्रद्धा अपने आप में नदी संरक्षण सुनिश्चित नहीं करती। इसलिए सांस्कृतिक सम्मान के साथ वैज्ञानिक प्रदूषण नियंत्रण और संस्थागत प्रबंधन भी आवश्यक है।

सिंधु घाटी सभ्यता और जल प्रबंधन :

भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीनतम नगरीय सभ्यताओं में सिंधु घाटी सभ्यता का विशेष स्थान है।

इसके प्रमुख नगरों में –

- मोहनजोदड़ो,
- हड़प्पा,
- धोलावीरा,
- लोथल आदि शामिल हैं। इन नगरों में जल प्रबंधन के विभिन्न प्रमाण मिले हैं।

मोहनजोदड़ो :

मोहनजोदड़ो में कुओं, स्नानागारों तथा जल निकासी की व्यवस्थित व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं।

महान स्नानागार विशेष रूप से प्रसिद्ध है। मोहनजोदड़ो हमें प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण विशेषता से परिचित कराता है–जल प्रबंधन केवल जल प्राप्त करने की तकनीक नहीं, बल्कि जल, स्वच्छता, नगर नियोजन और सामुदायिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने वाली व्यवस्था थी। यही कारण है कि मोहनजोदड़ो की जल व्यवस्था जल संसाधन में प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण के अध्ययन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह दर्शाता है कि जल का सामुदायिक और संभवतः धार्मिक–सामाजिक उपयोग भी महत्वपूर्ण था।

जल निकासी व्यवस्था :

सिंधु सभ्यता के नगरों में घरों से निकलने वाले पानी को नालियों के माध्यम से बाहर ले जाने की व्यवस्था थी।

यह व्यवस्था हमें तीन महत्वपूर्ण बातें बताती है –

1. जल आपूर्ति का जान था।
2. अपशिष्ट जल प्रबंधन का ज्ञान था।
3. शहरी स्वच्छता को महत्व दिया जाता था।

इस दृष्टि से सिंधु सभ्यता का जल प्रबंधन केवल जल संचयन तक सीमित नहीं था, इसमें जल आपूर्ति उपयोग निकासी स्वच्छता का समन्वय था।

धोलावीरा और जल संचयन :

धोलावीरा जल प्रबंधन का अत्यंत महत्वपूर्ण उदाहरण है। शुष्क क्षेत्र में स्थित होने के कारण यहाँ वर्षाजल

और आसपास के जल प्रवाह को नियंत्रित करके जलाशयों में संग्रह करने की व्यवस्था विकसित की गई थी।

धोलावीरा से यह महत्वपूर्ण सिद्धांत सामने आता है कि –

जल संकट वाले क्षेत्र में जल प्रबंधन का आधार जल की उपलब्धता बढ़ाना ही नहीं, बल्कि उपलब्ध जल की प्रत्येक बूंद को संरक्षित करना है।

यह सिद्धांत आधुनिक जल–संकट वाले क्षेत्रों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और जल प्रबंधन :

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक चिंतन में कौटिल्य का अर्थशास्त्र अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

इसमें राज्य, कृषि, कर व्यवस्था, सिंचाई, भूमि और आर्थिक प्रशासन पर चर्चा की गई है।

कृषि की सफलता के लिए सिंचाई की व्यवस्था महत्वपूर्ण मानी गई। इससे पता चलता है कि जल प्रबंधन को राज्य की आर्थिक शक्ति से जोड़ा गया था।

राज्य की भूमिका :

कौटिल्यीय दृष्टिकोण में राज्य की भूमिका केवल कानून–व्यवस्था तक सीमित नहीं थी। कृषि उत्पादन और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक संरचनाओं की व्यवस्था भी राज्य के दायित्व का हिस्सा थी।

जलाशय, सिंचाई और कृषि उत्पादन का संबंध राज्य की राजस्व व्यवस्था से था।

इस प्रकार जल –

प्राकृतिक संसाधन कृषि संसाधन आर्थिक संसाधन राजकीय आय की श्रृंखला में महत्वपूर्ण था।

जल प्रबंधन और दंड व्यवस्था :

प्राचीन भारतीय प्रशासन में जल संरचनाओं को नुकसान पहुँचाने अथवा सिंचाई व्यवस्था को बाधित करने से संबंधित नियमों की चर्चा मिलती है।

इससे एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है –

जल संरक्षण केवल नैतिक अपील नहीं था इसके लिए संस्थागत नियम भी बनाए गए थे।

यह आधुनिक जल कानून की अवधारणा से एक महत्वपूर्ण तुलनात्मक बिंदु प्रस्तुत करता है।

जल का सामुदायिक स्वरूप :

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक जलस्रोत सामुदायिक उपयोग के लिए होते थे।

गाँव का तालाब – पशुओं के लिए, घरेलू उपयोग के लिए, सिंचाई के लिए और भूजल पुनर्भरण के लिए महत्वपूर्ण था। इस व्यवस्था में जलस्रोत की सुरक्षा सामुदायिक जिम्मेदारी बनती थी।

प्राचीन भारत और राजस्थान में जल प्रबंधन की अवधारणा :

भारतीय परम्परा में जल को जीवन का मूल तत्व माना गया। प्राचीन भारतीय समाज में जल स्रोतों का निर्माण केवल तकनीकी कार्य नहीं था, बल्कि सामाजिक एवं धार्मिक दायित्व भी माना जाता था। कुएँ, सरोवर, तालाब, बावड़ियाँ और जलाशय बनवाना पुण्य तथा लोककल्याण से जुड़ा कार्य माना गया।

राजस्थान में इस परम्परा का विकास विशेष रूप से दिखाई देता है। प्राकृतिक जल स्रोतों की सीमित उपलब्धता ने स्थानीय समुदायों को जल संरक्षण की तकनीकों के विकास के लिए प्रेरित किया। राजस्थान की ऐतिहासिक जल संरचनाएँ इस बात की गवाही देती हैं कि यहाँ जल को एकत्रित करने, सुरक्षित रखने और आवश्यकता के अनुसार उपयोग करने की विस्तृत समझ विकसित हो चुकी थी।

मध्यकालीन राजस्थान में तालाब, कुएँ और बावड़ियाँ केवल पेयजल के स्रोत नहीं थे। वे कृषि, पशुपालन, व्यापारिक यात्राओं और सामाजिक जीवन से जुड़े हुए थे। ऐतिहासिक अध्ययन बताते हैं कि लगभग 7 वीं से 13वीं शताब्दी के बीच राजस्थान में तालाबों, कुओं और बावड़ियों का निर्माण सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ था। विशेष रूप से 9वीं–10वीं शताब्दी के बाद बावड़ियों का महत्व बढ़ा और वे पेयजल, स्नान, सामाजिक मेल–जोल तथा धार्मिक अनुष्ठानों के केंद्र बने। (Taylor & Francis Online)

भारत की पारंपरिक जल प्रणालियों की विविधता :

भारत में जलवायु और भौगोलिक विविधता के कारण जल–संरक्षण की अनेक स्थानीय प्रणालियों विकसित हुई।

CSE द्वारा संकलित पारंपरिक प्रणालियों में राजस्थान के जोहड़, नाड़ी, तालाब, टांका, कुण्ड और बावड़ी के साथ–साथ बिहार की आहर–पाइन, कर्नाटक की केरे, तमिलनाडु की एरी, हिमालयी क्षेत्रों की कुलध्नौला तथा उत्तर–पूर्व की जाबो जैसी प्रणालियों शामिल हैं।

यह विविधता इस सिद्धांत को पुष्ट करती है कि भारतीय जल प्रबंधन स्थानीय पारिस्थितिकी पर आधारित था।

राजस्थान में प्राचीन जल दृष्टिकोण :

राजस्थान इस विषय का विशेष रूप से महत्वपूर्ण उदाहरण है।

यहाँ –

- वर्षा कम है,
- वर्षा अनियमित है,
- वाष्पीकरण अधिक है,
- कई क्षेत्रों में भूजल गहरा है।

ऐसी परिस्थितियों में जल संरक्षण जीवन की अनिवार्य आवश्यकता रहा। परम्परा ने जल प्रबंधन राजस्थान में विकसित प्रमुख पारम्परिक जल प्रबंधन प्रणालियों में–

1.	बावड़ी	2.	कुण्ड
3.	टांका	4.	जोहड़
5.	नाडी	6.	तालाब
7.	खड़ीन	8.	कुई / बेरी
9.	पाड़ / पार	10.	साजा कुआँ
11.	झालरा आदि का उल्लेख किया जा सकता है।		

बावड़ी : वास्तुकला और जल प्रबंधन का संगम :

बावड़ी या बावली केवल जल प्राप्त करने की संरचना नहीं थी।

इसमें –

- जल संचयन,
- जल तक पहुँच,
- तापमान नियंत्रण,

- सामाजिक संपर्क,
- वास्तुशिल्प का समन्वय दिखाई देता है।

सीढ़ियों द्वारा नीचे जाकर जल तक पहुँचा जाता था। जैसे–जैसे जलस्तर बदलता था, लोग अलग–अलग स्तरों से पानी प्राप्त कर सकते थे। बावड़ियों ने राजस्थान और गुजरात जैसे क्षेत्रों में जल–संरक्षण के साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कुण्ड और कुंडी :

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों में कुण्ड और कुंडी वर्षाजल संग्रह की महत्वपूर्ण प्रणालियाँ थीं।

इनमें वर्षा जल को एक विशेष कैचमेंट क्षेत्र से भूमिगत या अर्ध–भूमिगत संरचना में पहुँचाया जाता था।

इन संरचनाओं का प्रमुख उद्देश्य था –

वर्षा के समय जल को संग्रहित करना और शुष्क मौसम में उसका उपयोग करना। कुंड का प्रमुख उद्देश्य पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना था। शुष्क क्षेत्रों में जहाँ भूजल गहरा या लवणीय हो सकता था, वहाँ वर्षाजल आधारित कुंड ग्रामीण आबादी के लिए महत्वपूर्ण पेयजल स्रोत बनते थे।

आधुनिक शोध में कुंडों को राजस्थान की स्थानीय जलवायु के अनुकूल विकसित वर्षाजल संचयन संरचनाओं के रूप में पहचाना गया है। (Springer Link) CSE के अनुसार राजस्थान की पारंपरिक कुंडियों में भूमिगत भंडारण संरचना, जल प्रवेश मार्ग तथा जल को प्रदूषण से बचाने वाली व्यवस्थाएँ विकसित थीं। (CSE India)

नाड़ी :

नाड़ी राजस्थान के ग्रामीण एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों में वर्षाजल संग्रह की एक महत्वपूर्ण पारम्परिक प्रणाली है। सामान्यतः गाँव के निकट प्राकृतिक रूप से नीची भूमि का चयन करके वहाँ वर्षाजल को एकत्रित किया जाता है।

वर्षा होने पर आसपास की भूमि से बहकर आने वाला पानी नाड़ी में जमा होता है। यह जल मनुष्य और पशुओं की आवश्यकताओं के लिए उपयोग किया जाता था। नाड़ी का निर्माण स्थानीय मिट्टी एवं पत्थर से किया जा सकता था और इसका रखरखाव भी समुदाय द्वारा किया जाता था। नाड़ी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सरलता है। इसमें जटिल तकनीक या महंगी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए कम आर्थिक संसाधनों वाले ग्रामीण समुदाय भी इसका निर्माण एवं रखरखाव कर सकते थे।

टांका :

टांका राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों की अत्यंत महत्वपूर्ण पारंपरिक जल प्रणाली है।

यह सामान्यतः भूमिगत जल भंडारण संरचना अथवा ढकी हुई जल–संग्रह संरचना होती थी जिसमें –

- छत,
- आँगन,
- कृत्रिम कैचमेंट से वर्षा जल पहुँचाया जाता था। टांका विशेष रूप से पश्चिमी राजस्थान में अत्यंत उपयोगी रहा है। भूमिगत होने के कारण इसमें वाष्पीकरण अपेक्षाकृत कम होता है। और जल को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

जिससे टांके में संग्रहित जल को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता था। ऐतिहासिक स्रोतों के

अनुसार मारवाड़ क्षेत्र में टांका निर्माण की परम्परा कई शताब्दियों पुरानी है। एक अध्ययन में 1607 ई. में वाड़ी का मेलण गाँव में टांके के निर्माण तथा बाद में मेहरानगढ़ में भी टांका निर्माण का उल्लेख मिलता है। 1895–96 के अकाल के दौरान टांकों का बड़े पैमाने पर निर्माण किया गया। (ircwash.org)

टांका प्रणाली विशेष रूप से यह सिद्ध करती है कि राजस्थान के लोगों ने वर्षा की अल्प मात्रा को भी अधिकतम उपयोगी बनाने की तकनीक विकसित कर ली थी।

कई क्षेत्रों में मानसून से पहले टांके के कैचमेंट क्षेत्र की सफाई की जाती थी और जल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए विशेष सावधानियों बरती जाती थीं। सरकारी Manual for Drought Management में भी राजस्थान के टांकों और कुण्डों को शुष्क क्षेत्रों में पेयजल संचयन की पारंपरिक प्रणालियों के रूप में दर्ज किया गया है। (CSE India) ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार मारवाड़ क्षेत्र में टांका निर्माण की परम्परा कई शताब्दियों पुरानी है। एक अध्ययन में 1607 ई. में वाड़ी का मेलण गाँव में टांके के निर्माण तथा बाद में मेहरानगढ़ में भी टांका निर्माण का उल्लेख मिलता है। 1895–96 के अकाल के दौरान टांकों का बड़े पैमाने पर निर्माण किया गया। (ircwash.org)

टांका प्रणाली विशेष रूप से यह सिद्ध करती है कि राजस्थान के लोगों ने वर्षा की अल्प मात्रा को भी अधिकतम उपयोगी बनाने की तकनीक विकसित कर ली थी।

जोहड़ :

जोहड़ छोटे मिट्टी के बाँध या जल–संचयन संरचना के रूप में कार्य करते हैं। सामान्यतः किसी प्राकृतिक ढाल अथवा छोटे जलग्रहण क्षेत्र में मिट्टी या पत्थर का बाँध बनाकर पानी रोका जाता है। जोहड़ वर्षाजल संचयन के साथ–साथ भूजल पुनर्भरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इनका उद्देश्य –

- वर्षाजल को रोकना,
- सतही बहाव को कम करना,
- मिट्टी में नमी बनाए रखना,
- भूजल पुनर्भरण बढ़ाना होता है।

जोहड़ का महत्व केवल संग्रहित पानी की मात्रा में नहीं बल्कि उसके भूजल पुनर्भरण प्रभाव में भी है।

CSE के अनुसार राजस्थान के अलवर क्षेत्र में जोहड़ों के पुनर्जीवन से अनेक गाँवों में भूजल स्तर और वन क्षेत्र में सुधार दर्ज किया गया। (cseindia.org)

झालरा :

झालरा ऐसी जल संरचना है जो सामान्यतः सीढ़ीनुमा रूप में जल तक पहुँच प्रदान करती है। राजस्थान के विभिन्न ऐतिहासिक नगरों में झालरों का निर्माण हुआ। झालरों का उपयोग पेयजल, धार्मिक गतिविधियों और सामाजिक आवश्यकताओं के लिए किया जाता था। कई झालरों का संबंध प्राकृतिक जल प्रवाह अथवा भूजल स्रोतों से था। इनका निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि जल स्तर में परिवर्तन होने पर भी लोग सीढ़ियों द्वारा पानी तक पहुँच सकें।

पार या Paar प्रणाली :

पश्चिमी राजस्थान में पार एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें वर्षाजल रेतयुक्त क्षेत्र में फैलकर धीरे–धीरे नीचे

रिसता है।

इसके बाद कुई या बेरी जैसी संरचनाओं के माध्यम से उस रिसे हुए जल तक पहुँचा जाता है।

यह प्रणाली विशेष रूप से मरुस्थलीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई थी। CSE के विवरण के अनुसार पश्चिमी राजस्थान में पार क्षेत्र से रिसे हुए जल को कुई/बेरी के माध्यम से प्राप्त किया जाता रहा है। (cseindia.org)

यह उदाहरण बताता है कि प्राचीन जल–बुद्धिमत्ता का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत था–

सतही जल को रोकने के साथ–साथ उसे भूमिगत जल में परिवर्तित करना।

साजा कुआँ :

मेवाड़ और अरावली क्षेत्र में साजा कुआँ सामुदायिक या साझेदारी आधारित कुएँ की अवधारणा से जुड़ा है।

एक से अधिक किसान मिलकर कुएँ का निर्माण और उपयोग करते थे।

इससे –

- लागत साझा होती थी,
- जल संसाधन का उपयोग सामूहिक होता था,
- सिंचाई का लाभ कई परिवारों को मिलता था।

यह प्रणाली जल प्रबंधन में साझेदारी और सामुदायिक स्वामित्व का महत्वपूर्ण उदाहरण है। (cseindia.org)

खड़ीन : पश्चिमी राजस्थान की विशिष्ट जल–कृषि प्रणाली :

पश्चिमी राजस्थान में खड़ीन वर्षाजल और सतही बहाव को कृषि भूमि में रोककर मिट्टी की नमी बढ़ाने की पारंपरिक प्रणाली है। खडीन राजस्थान की पारम्परिक जल प्रबंधन प्रणालियों में सबसे वैज्ञानिक और विशिष्ट प्रणालियों में से एक है। इसका विकास विशेष रूप से जैसलमेर क्षेत्र में हुआ। खड़ीन में ऊँचे या पथरीले जलग्रहण क्षेत्र से आने वाले वर्षाजल के बहाव को निचले कृषि क्षेत्र में एक लंबे मिट्टी के बाँध द्वारा रोका जाता है। पानी कुछ समय तक वहाँ एकत्रित रहता है। धीरे–धीरे पानी मिट्टी में समा जाता है और मिट्टी में नमी बनी रहती है। इसके बाद रबी फसलों की खेती की जाती है।

वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार खड़ीन प्रणाली सदियों पहले जैसलमेर क्षेत्र में विकसित हुई और इसका उपयोग ऐसे क्षेत्रों में किया गया जहाँ पथरीले जलग्रहण क्षेत्र और निचले घाटी क्षेत्र एक–दूसरे के निकट हों। खड़ीन में वर्षाजल के साथ उपजाऊ गाद भी जमा होती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है। पानी के धीरे–धीरे नीचे जाने से मिट्टी में नमी बनी रहती है और गेहूँ तथा चने जैसी फसलों का उत्पादन बिना अतिरिक्त सिंचाई के संभव हो सकता है। (ScienceDirect)

खड़ीन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल जल संरक्षण प्रणाली नहीं बल्कि जल + मृदा + कृषि + पारिस्थितिकी को एक साथ जोड़ने वाली प्रणाली है।

इसका मूल सिद्धांत है –

जल को तेज गति से बहकर निकलने देने के बजाय उसे नियंत्रित करके कृषि भूमि में उपयोग करना।

खड़ीन प्रणाली शुष्क क्षेत्रों में जल, मिट्टी और कृषि के बीच संबंध स्थापित करती है।

तालाब भारतीय जल संस्कृति का आधार :

तालाब भारत के सबसे व्यापक पारंपरिक जलस्रोतों में से एक रहे हैं। मुख्यतः दक्षिण भारत : तमिलनाडु तथा राजस्थान : भीलवाड़ा तालाब के अनेक कार्य थे–

- **पेयजल :** गाँवों में घरेलू उपयोग।
- **सिंचाई :** कृषि के लिए जल उपलब्ध कराना।
- **पशुपालन :** पशुओं के लिए जल।
- **भूजल पुनर्भरण :** तालाब का पानी धीरे–धीरे जमीन में रिसकर भूजल स्तर को प्रभावित करता था।
- **सामाजिक जीवन :** तालाब के आसपास सामाजिक और धार्मिक गतिविधियाँ विकसित होती थीं।

मंदिर और जल संरचनाएँ :

भारत में अनेक मंदिर परिसरों में तालाब, कुण्ड और पुष्करिणियाँ निर्मित की गई।

इनका उपयोग –

धार्मिक स्नान, अनुष्ठान, जल संचयन, सामुदायिक गतिविधियों में होता था। यहाँ धार्मिक संस्था और जल संरक्षण के बीच संबंध दिखाई देता है।

दक्षिण भारत की टैंक प्रणाली :

- दक्षिण भारत, विशेषकर तमिल क्षेत्र में जलाशय आधारित सिंचाई की लंबी परंपरा रही है।
- वर्षा जल को टैंकों में संग्रहित करके कृषि के लिए उपयोग किया जाता था।
- तमिलनाडु की एरी प्रणाली इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

एक टैंक से अतिरिक्त जल दूसरे टैंक में जा सकता था। इस प्रकार एक प्रकार की श्रृंखलाबद्ध जल प्रणाली विकसित हुई।

यह आधुनिक watershed management की अवधारणा से तुलना योग्य है।

आहर–पाइन प्रणाली :

बिहार क्षेत्र में आहर–पाइन जल प्रबंधन की पारंपरिक प्रणाली रही है।

इसमें –

- **आहर** = जल संग्रह क्षेत्र
- **पाइन** = जल प्रवाह/चैनल का उपयोग किया जाता था।

वर्षाजल और बाढ़ के पानी को नियंत्रित करके कृषि में उपयोग किया जाता था।

इससे स्पष्ट है कि बाढ़ जैसी समस्या को भी जल संसाधन में परिवर्तित किया जा सकता है।

हिमालयी जल प्रणालियाँ :

हिमालयी और पर्वतीय क्षेत्रों में जल को ऊँचाई से नीचे लाने के लिए स्थानीय जलधाराओं और चैनलों का उपयोग किया गया।

कुल और नौला जैसी प्रणालियाँ पर्वतीय जल प्रबंधन की स्थानीय तकनीकों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

यहाँ जल प्रबंधन का आधार था –

- ढाल + गुरुत्वाकर्षण + स्थानीय स्रोत सामुदायिक रखरखाव।

उत्तर-पूर्व भारत की जल परंपराएँ :

उत्तर–पूर्व भारत में भारी वर्षा के बावजूद जल प्रबंधन की अलग समस्याएँ रही हैं।

कुछ क्षेत्रों में वर्षाजल और पहाड़ी बहाव को रोकने के लिए स्थानीय प्रणालियों विकसित हुई।

नागालैंड की जाबो प्रणाली इसका उदाहरण है, जहाँ जल, भूमि, पशुपालन और कृषि को एकीकृत प्रणाली के रूप में देखा जाता है।

प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन की मूल दार्शनिक विशेषताएँ :

अब प्रश्न उठता है कि इन सभी प्रणालियों के पीछे कौन–से मूल सिद्धांत काम कर रहे थे? इनमें प्रमुख हैं–

- जल के प्रति सम्मान
- जल को केवल उपभोग की वस्तु नहीं समझा गया।
- स्थानीयता
- स्थानीय भूगोल के अनुसार तकनीक विकसित हुई।

विकेंद्रीकरण :

जल प्रबंधन का महत्वपूर्ण भाग गाँव और समुदाय के स्तर पर था।

- **संचयन :** वर्षा को बह जाने देने के बजाय संग्रह करने का प्रयास किया गया।
- **पुनर्भरण :** जल को भूमिगत स्तर तक पहुँचाने पर जोर दिया गया।
- **सामुदायिक उत्तरदायित्व :** जलस्रोत की सुरक्षा सामूहिक जिम्मेदारी थी।
- **मितव्ययिता :** जल का उपयोग आवश्यकता के अनुसार करने की भावना थी।

जल और सामाजिक संस्थाएँ :

पारम्परिक जल प्रणाली की सफलता का एक प्रमुख कारण उसका सामुदायिक प्रबंधन था। आधुनिक समय में भी जल संरक्षण को केवल सरकारी विभाग की जिम्मेदारी मानना पर्याप्त नहीं है। ग्राम पंचायत, स्थानीय समुदाय, स्वयंसेवी संगठन, किसान समूह, महिला समूह और विद्यालय मिलकर जल संरचनाओं की देखभाल कर सकते हैं। राजस्थान सरकार द्वारा हाल के वर्षों में जल संरक्षण कार्यों में जनभागीदारी पर बल दिया गया है और राज्य में बड़ी संख्या में जल संरक्षण कार्य पूरे किए जाने की सूचना दी गई है। (Water Rajasthan) इससे यह संकेत मिलता है कि पारम्परिक सामुदायिक सोच को आधुनिक सरकारी कार्यक्रमों के साथ जोड़ा जा सकता है। जल प्रबंधन केवल तकनीकी व्यवस्था नहीं था। इसके साथ सामाजिक संस्थाएँ भी जुड़ी थीं। गाँवों में जलस्रोतों के रखरखाव के लिए सामुदायिक श्रम, स्थानीय नियम और सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्थाएँ रही होंगी। इससे जल प्रबंधन के तीन स्तर दिखाई देते हैं–

व्यक्ति – समुदाय – राज्य

व्यक्ति जल का उपयोग करता था।

समुदाय जल संरचना की रक्षा करता था।राज्य व्यापक प्रशासन और नियमों की व्यवस्था करता था।

जल और सामाजिक न्याय :

जल का प्रश्न सामाजिक न्याय से भी जुड़ा हुआ है। भारत (मुख्यतः राजस्थान) की पारम्परिक जल प्रणालियों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनकी सामुदायिक प्रकृति थी। जल संरचनाओं के निर्माण एवं रखरखाव में

विभिन्न सामाजिक समूहों की भागीदारी होती थी। गाँव के लोग जल स्रोत की सफाई, गाद निकालने, बाँध की मरम्मत और जलग्रहण क्षेत्र की देखभाल जैसे कार्य करते थे। इस व्यवस्था में जल को केवल व्यक्तिगत संपत्ति न मानकर सामुदायिक संसाधन के रूप में देखा जाता था। इससे जल के उपयोग पर सामाजिक नियंत्रण बना रहता था। तालाब, बावड़ी और कुंड सामाजिक जीवन के केंद्र भी थे। लोग यहाँ पानी भरने, बातचीत करने, धार्मिक अनुष्ठान करने और सामुदायिक गतिविधियों के लिए आते थे। ऐतिहासिक शोध भी बावड़ियों को पेयजल स्रोत के साथ सामाजिक एवं धार्मिक स्थान के रूप में देखता है। (Taylor & Francis Online)

यदि जल केवल कुछ व्यक्तियों के नियंत्रण में हो तो समाज के कमजोर वर्ग जल संकट का अधिक सामना करते हैं। सामुदायिक जल संरचनाएँ इस समस्या को कम करने का प्रयास करती थीं, हालांकि यह मान लेना उचित नहीं होगा कि प्राचीन समाज पूरी तरह समानतावादी था। जाति, वर्ग और लिंग आधारित असमानताओं ने जल तक पहुँच को कई क्षेत्रों में प्रभावित किया होगा। इसलिए प्राचीन जल व्यवस्था का अध्ययन आदर्शीकरण के बजाय आलोचनात्मक दृष्टि से किया जाना चाहिए।

महिलाओं और जल प्रबंधन :

भारतीय ग्रामीण समाज में जल संग्रह और घरेलू जल उपयोग की जिम्मेदारी ऐतिहासिक रूप से महिलाओं से गहराई से जुड़ी रही है।

कुएँ, तालाब और बावड़ियों केवल जलस्रोत नहीं बल्कि सामाजिक संपर्क के स्थान भी थे।

महिलाओं के दैनिक जीवन, श्रम और जल प्रबंधन के बीच गहरा संबंध था। इसलिए आधुनिक जल नीति में भी महिलाओं की भूमिका को केवल जल लाने वाली के रूप में नहीं बल्कि जल प्रबंधन की निर्णयकर्ता और हितधारक के रूप में देखना आवश्यक है।

जल और अर्थव्यवस्था :

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि आधारित थी। इसलिए सिंचाई और जल उपलब्धता का सीधा संबंध उत्पादन और राजस्व से था।

जहाँ सिंचाई बेहतर थी वहाँ–

- कृषि उत्पादन बढ़ सकता था, कृषि जोखिम कम हो सकता था,
- अधिक फसल संभव थी,
- राज्य को अधिक राजस्व प्राप्त हो सकता था।

इसलिए जल प्रबंधन को आर्थिक विकास से अलग नहीं किया जा सकता।

जल और पर्यावरण :

प्राचीन भारतीय जल प्रणालियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे स्थानीय पारिस्थितिकी के साथ जुड़ी थीं।

उदाहरण के लिए –

तालाब भूजल पुनर्भरण कृषि वनस्पति पशु मानव एक परस्पर जुड़ा हुआ चक्र बनाता था। इसलिए जल संरक्षण वास्तव में पारिस्थितिकी संरक्षण का भी माध्यम था।

जल प्रदूषण की समस्या :

प्राचीन समाज में आज के औद्योगिक प्रदूषण जैसी समस्या व्यापक स्तर पर नहीं थी, फिर भी जल की

शुद्धता का प्रश्न महत्वपूर्ण था।

जल को अशुद्ध करने वाले व्यवहारों के विरुद्ध धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ विकसित हुई। आज जल प्रदूषण का स्वरूप कहीं अधिक जटिल है –

- औद्योगिक अपशिष्ट,
- रासायनिक उर्वरक,
- कीटनाशक,
- सीवेज,
- प्लास्टिक,
- भारी धातुएँ

जल गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

इसलिए आधुनिक समय में केवल सांस्कृतिक सम्मान पर्याप्त नहीं हैश वैज्ञानिक जल गुणवत्ता प्रबंधन भी आवश्यक है।

प्राचीन जल प्रबंधन और आधुनिक सतत विकास :

आज Sustainable Development का मूल उद्देश्य है–

- वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता न करना।
- प्राचीन जल व्यवस्थाओं में भी संसाधन को लंबे समय तक उपयोगी बनाए रखने की सोच दिखाई देती है।
- विशेष रूप से वर्षाजल संचयन, भूजल पुनर्भरण और सामुदायिक उपयोग सतत जल प्रबंधन की आधुनिक अवधारणा से जुड़ते हैं।

CSE का अध्ययन भी पारंपरिक सामुदायिक वर्षाजल संचयन को आधुनिक जल संकट के संदर्भ में प्रासंगिक मानता है। (cseindia.org)

प्राचीन और आधुनिक जल प्रबंधन की तुलना :

आधार	प्राचीन / पारंपरिक दृष्टिकोण	आधुनिक दृष्टिकोण
मूल आधार	स्थानीय प्रकृति	बड़े पैमाने की तकनीक
जल स्रोत	वर्षा, कुएँ, तालाब, नदियाँ	बाँध, नहर, पाइपलाइन, ट्यूबवेल
जल संचयन	विकेंद्रीकृत	कई बार केंद्रीकृत
समुदाय	महत्वपूर्ण भूमिका	कई स्थानों पर सीमित
भूजल	प्राकृतिक पुनर्भरण से जुड़ा	अत्यधिक दोहन की समस्या
तकनीक	स्थानीय एवं कम लागत	उच्च तकनीकी एवं पूंजी आधारित
पर्यावरण	स्थानीय पारिस्थितिकी पर आधारित	पर्यावरणीय प्रभाव की चुनौती
जल का मूल्य	जीवन एवं सामाजिक संसाधन	आर्थिक एवं सार्वजनिक संसाधन
वर्षाजल	मुख्य स्रोतों में से एक	अक्सर उपेक्षित
जल निकासी	स्थानीय भूगोल आधारित	इंजीनियरिंग नेटवर्क

आधुनिक जल संकट और पारम्परिक प्रणालियों की प्रासंगिकता :

आज भारत में जल संकट केवल वर्षा की कमी का परिणाम नहीं है। यह जल की मांग, भूजल दोहन, भूमि उपयोग परिवर्तन, शहरीकरण और जल प्रबंधन की समस्याओं का संयुक्त परिणाम है।

इस परिस्थिति में पारम्परिक प्रणालियों से कई महत्वपूर्ण शिक्षाएँ प्राप्त की जा सकती हैं –

- पहली, जल को स्थानीय स्तर पर संग्रहित किया जाए।
- दूसरी, वर्षाजल को बहकर बाहर जाने देने के बजाय भूजल पुनर्भरण में लगाया जाए।
- तीसरी, प्रत्येक क्षेत्र की स्थानीय भौगोलिक परिस्थिति के अनुरूप जल संरचना विकसित की जाए।
- चौथी, जल प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
- पाँचवीं, जल संरक्षण को कृषि, पशुपालन और पर्यावरण संरक्षण से जोड़ा जाए।

पारम्परिक एवं आधुनिक तकनीक का समन्वय : पारम्परिक तकनीकों को आधुनिक तकनीक के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि आधुनिक जल प्रबंधन के पूरक के रूप में देखना अधिक उचित होगा।

आज GIS और Remote Sensing की सहायता से –

- जलग्रहण क्षेत्रों की पहचान।
- वर्षाजल प्रवाह का विश्लेषण।
- उपर्युक्त तालाब स्थलों का चयन।
- भूजल संभाव्यता का अध्ययन।
- पारम्परिक जल संरचनाओं की मैपिंग।
- जल संरचनाओं की स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

इसी प्रकार आधुनिक जल गुणवत्ता परीक्षण द्वारा पारम्परिक स्रोतों के पानी की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकती है।

इस प्रकार पारम्परिक ज्ञान + आधुनिक विज्ञान + सामुदायिक सहभागिता एक प्रभावी जल प्रबंधन मॉडल विकसित कर सकते हैं।

आधुनिक जल संकट : आज भारत के सामने कई गंभीर जल समस्याएँ हैं।

भूजल का अत्यधिक दोहन :

कृषि, उद्योग और घरेलू उपयोग के लिए अत्यधिक भूजल निकासी से कई क्षेत्रों में जलस्तर नीचे जा रहा है।

जल प्रदूषण :

नदियों, झीलों और भूजल में प्रदूषण बढ़ रहा है।

वर्षा की अनिश्चितता :

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की तीव्रता और समय में परिवर्तन हो सकता है।

शहरीकरण :

शहरों में प्राकृतिक जल निकासी क्षेत्र और तालाब समाप्त होने से वर्षाजल का स्थानीय पुनर्भरण घट सकता है।

पारंपरिक जल संरचनाओं का विनाश :

तालाब, बावड़ी और अन्य संरचनाएँ अतिक्रमण तथा उपेक्षा के कारण समाप्त हो रही हैं।

पारम्परिक एवं आधुनिक तकनीक का समन्वय :

पारम्परिक तकनीकों को आधुनिक तकनीक के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि आधुनिक जल प्रबंधन के पूरक के रूप में देखना अधिक उचित होगा।

आज GIS और Remote Sensing की सहायता से –

- जलग्रहण क्षेत्रों की पहचान
- वर्षाजल प्रवाह का विश्लेषण
- उपर्युक्त तालाब स्थलों का चयन
- भूजल संभाव्यता का अध्ययन
- पारम्परिक जल संरचनाओं की मैपिंग
- जल संरचनाओं की स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

इसी प्रकार आधुनिक जल गुणवत्ता परीक्षण द्वारा पारम्परिक स्रोतों के पानी की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकती है।

इस प्रकार पारम्परिक ज्ञान आधुनिक विज्ञान सामुदायिक सहभागिता एक प्रभावी जल प्रबंधन मॉडल विकसित कर सकते हैं।

प्राचीन ज्ञान की आधुनिक प्रासंगिकता प्राचीन जान से आधुनिक समाज को निम्नलिखित शिक्षाएँ प्राप्त हो सकती हैं–

"Catch the rain where it falls"

वर्षाजल को उसके गिरने के स्थान के आसपास ही रोकना।

तालाबों का पुनर्जीवन :

पुराने तालाबों को अतिक्रमण से मुक्त कर पुनर्जीवित करना।

भूजल पुनर्भरण :

जोहड़, चेक डैम, परकोलेशन टैंक और अन्य संरचनाओं के माध्यम से भूजल पुनर्भरण बढ़ाना।

शहरी वर्षाजल संचयन :

भवनों की छतों से वर्षाजल को संग्रहित करना।

सामुदायिक जल प्रबंधन :

गाँव स्तर पर जल उपयोग और संरक्षण समितियों को मजबूत करना।

आधुनिक जल संकट और पारम्परिक प्रणालियों की प्रासंगिकता :

आज राजस्थान में जल संकट केवल वर्षा की कमी का परिणाम नहीं है। यह जल की मांग, भूजल दोहन, भूमि उपयोग परिवर्तन, शहरीकरण और जल प्रबंधन की समस्याओं का संयुक्त परिणाम है।

इस परिस्थिति में पारम्परिक प्रणालियों से कई महत्वपूर्ण शिक्षाएँ प्राप्त की जा सकती हैं–

- पहली, जल को स्थानीय स्तर पर संग्रहित किया जाए।
- दूसरी, वर्षाजल को बहकर बाहर जाने देने के बजाय भूजल पुनर्भरण में लगाया जाए।
- तीसरी, प्रत्येक क्षेत्र की स्थानीय भौगोलिक परिस्थिति के अनुरूप जल संरचना विकसित की जाए।
- चौथी, जल प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

- पाँचवीं, जल संरक्षण को कृषि, पशुपालन और पर्यावरण संरक्षण से जोड़ा जाए।

राजस्थान से आधुनिक सीख :

राजस्थान में पारंपरिक जल प्रणालियाँ आज भी आधुनिक तकनीक के साथ जोड़ी जा सकती हैं।

उदाहरण के लिए–

- टांका + आधुनिक फिल्टर
- जोहड़ + भूजल निगरानी
- तालाब + जल गुणवत्ता परीक्षण
- बावड़ी + पुनर्भरण योजना
- खड़ीन + आधुनिक कृषि तकनीक

इस प्रकार परंपरा और आधुनिक विज्ञान के बीच विरोध के बजाय समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

आधुनिक उदाहरण : जोधपुर :

जोधपुर जैसे कम वर्षा वाले क्षेत्र में पारंपरिक जल प्रणालियों से आधुनिक परियोजनाएँ भी प्रेरित हुई हैं।

CSE के अनुसार जोधपुर के Umaid Heritage क्षेत्र में ठपतीं ठूंतप को राजस्थान की कुण्ड और बावड़ी परंपरा से प्रेरित वर्षाजल संचयन संरचना के रूप में विकसित किया गया। परियोजना का उद्देश्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में वर्षाजल को संग्रहित करना और भूजलध्नगर जल पर निर्भरता कम करना था। (cseindia.org)

यह उदाहरण दिखाता है कि पारंपरिक वास्तु और आधुनिक जल प्रबंधन को एक साथ जोड़ा जा सकता है।

CAZRI और पारंपरिक टांका :

जोधपुर स्थित Central Arid Zone Research Institute (CAZRI) में वर्षाजल संचयन की एक आधुनिक व्यवस्था पारंपरिक राजस्थान के टांका सिद्धांत पर आधारित है।

इस प्रणाली में–

1. छत से वर्षाजल एकत्र किया जाता है।
2. पानी पहले अवसादन/फिल्टर प्रणाली से गुजरता है।
3. इसके बाद भूमिगत टैंक में संग्रहित होता है।
4. संग्रहित जल का उपयोग पौधों और अन्य आवश्यकताओं में किया जाता है।

CSE की केस स्टडी में इस परियोजना को राजस्थान की पारंपरिक टांका प्रणाली के सिद्धांत से प्रेरित बताया गया है। (cseindia.org)

प्राचीन ज्ञान की सीमाएँ :

प्राचीन जल प्रणालियों का अध्ययन करते समय रोमांटिक या आदर्शवादी दृष्टिकोण से बचना आवश्यक है।

हर पारंपरिक प्रणाली –

- हर परिस्थिति में प्रभावी नहीं थी,
- हर समुदाय में समान रूप से उपलब्ध नहीं थी,
- आधुनिक जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती,

- आधुनिक जल गुणवत्ता मानकों को स्वतः पूरा नहीं करती।

उदाहरण के लिए, पारंपरिक जल स्रोतों में प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न होने पर आधुनिक जल शोधन आवश्यक है।

इसलिए सही दृष्टिकोण है–

परंपरा + आधुनिक विज्ञान + संस्थागत प्रबंधन।

''अतीत में सब बेहतर था'' – इस धारणा की आलोचना।

प्राचीन भारतीय जल व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते समय यह मान लेना कि अतीत में जल संकट नहीं था, ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं है।

सूखा, अकाल, जल की कमी और जल के लिए संघर्ष प्राचीन तथा मध्यकालीन समाजों में भी रहे होंगे।

अंतर यह था कि स्थानीय समाज ने अपनी परिस्थितियों के अनुसार जल संकट से निपटने के लिए अनेक विकेंद्रीत व्यवस्थाएँ विकसित की थी।

इसलिए प्राचीन जल ज्ञान को समाधान का एक स्रेत माना जाना चाहिए, पूर्ण समाधान नहीं।

जल प्रबंधन में राज्य की भूमिका :

प्राचीन और आधुनिक दोनों व्यवस्थाओं में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

आधुनिक राज्य को चाहिए कि –

1. जलस्रोतों का अभिलेखीकरण करे।
2. तालाबों और नदियों की भूमि सुरक्षित करे।
3. भूजल दोहन को वैज्ञानिक आधार पर नियंत्रित करे।
4. वर्षाजल संचयन को बढ़ावा दे।
5. ग्रामीण जल समितियों को मजबूत करे।
6. जल गुणवत्ता की नियमित निगरानी करे।
7. पारंपरिक जल संरचनाओं का संरक्षण करे।

जल प्रबंधन में स्थानीय समुदाय की भूमिका :

सफल जल प्रबंधन केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है।

स्थानीय समुदाय –

- जलस्रोत की निगरानी,
- सफाई,
- मरम्मत,
- जल वितरण,
- जल उपयोग के नियम,
- वर्षाजल संचयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

CSE के अध्ययन में सामुदायिक वर्षाजल संचयन को भारत की पारंपरिक जल प्रबंधन व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता बताया गया है। (cseindia.org)

जल और स्थानीय ज्ञान :

स्थानीय लोगों को अपने क्षेत्र की –

- वर्षा,
- मिट्टी,
- जलस्तर,
- जल प्रवाह,
- प्राकृतिक ढाल,
- पुराने जल स्रोत के बारे में व्यावहारिक ज्ञान होता है।

आधुनिक जल नीति में इस स्थानीय ज्ञान को वैज्ञानिक अध्ययन के साथ जोड़ना उपयोगी हो सकता है।

जल संरक्षण के लिए प्रस्तावित मॉडल :

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से प्रेरित आधुनिक मॉडल को निम्न प्रकार बनाया जा सकता है–

- **प्रथम स्तर : घर**

  छत का वर्षाजल फिल्टर टैंक रिचार्ज पिट।

- **द्वितीय स्तर : मोहल्ला**

  वर्षाजल नाली तालाब/रिचार्ज क्षेत्र।

- **तृतीय स्तर : गाँव**

  जोहड़ + तालाब + चेक डैम भूजल पुनर्भरण।

- **चतुर्थ स्तर : नदी क्षेत्र**

  जलागम संरक्षण + वन संरक्षण नदी पुनर्जीवन।

- **पंचम स्तर : राज्य**

  जल नीति + वैज्ञानिक निगरानी कानून + वित्तीय सहायता।

जल संरक्षण के लिए नीतिगत सुझाव :

पारंपरिक जल संरचनाओं का डिजिटल अभिलेखीकरण।

प्रत्येक गाँव में पुराने–

- तालाब,
- कुएँ,
- बावड़ियाँ,
- जोहड़,
- कुण्ड का GIS आधारित रिकॉर्ड तैयार किया जाना चाहिए।

तालाबों का पुनर्जीवन :

तालाब की मूल जल ग्रहण सीमा को सुरक्षित किया जाना चाहिए।

वर्षाजल संचयन अनिवार्य करना :

विशेषकर जल–संकट वाले शहरी क्षेत्रों में भवनों में वर्षाजल संचयन की व्यवस्था प्रभावी ढंग से लागू की

जानी चाहिए।

भूजल बजट :

प्रत्येक क्षेत्र में यह आकलन होना चाहिए कि कितना भूजल उपलब्ध है और कितना निकाला जा रहा है।

सामुदायिक भागीदारी :

जल प्रबंधन समितियों में महिलाओं, किसानों और स्थानीय हितधारकों की आगीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

जल संसाधन प्रबंधन : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय दृष्टिकोण :

भारत में जल संसाधन जीवन, कृषि, उद्योग, ऊर्जा, पर्यावरण और आर्थिक विकास का आधार हैं। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगीकरण, जलवायु परिवर्तन तथा भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण जल संसाधनों पर दबाव लगातार बढ़ रहा है। इसलिए भारतीय दृष्टिकोण में जल प्रबंधन का उद्देश्य केवल जल की उपलब्धता बढ़ाना नहीं, बल्कि जल संरक्षण, समान वितरण, दक्ष उपयोग और सतत् प्रबंधन सुनिश्चित करना है।

भारत में कृषि जल की सबसे बड़ी उपभोक्ता है। NITI Aayog के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि जल की मांग कुल जल उपयोग का लगभग 80–90 प्रतिशत तक हो सकती है। इसी कारण सूक्ष्म सिंचाई, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई, फसल विविधीकरण और जल–कुशल कृषि को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

NITI Aayog :

दूसरी बड़ी चुनौती भूजल का गिरता स्तर है। 2023 के आकलन के अनुसार भारत में भूजल दोहन का समग्र स्तर 59.26 प्रतिशत था तथा 6,553 आकलन इकाइयों में 736 इकाइयाँ 'अति–दोहित' श्रेणी में थीं। अतः वर्षा जल संचयन, कृत्रिम भूजल पुनर्भरण, तालाबों और पारंपरिक जल संरचनाओं का पुनर्जीवन अत्यंत आवश्यक है।

NITI Aayog :

भारतीय जल प्रबंधन में अब समेकित जल संसाधन प्रबंधन (Integrated Water Resources Management) की अवधारणा को महत्व दिया जा रहा है। इसमें नदी, जलाशय, तालाब, भूजल, वर्षाजल और जलग्रहण क्षेत्र को अलग–अलग न देखकर एक समग्र प्रणाली के रूप में प्रबंधित किया जाता है। साथ ही स्थानीय समुदायों, पंचायतों, किसानों और नागरिक समाज की भागीदारी को भी आवश्यक माना जाता है। NITI Aayog के जल प्रबंधन सूचकांक में जल निकायों का पुनर्जीवन, भूजल, सिंचाई, जलग्रहण विकास, सहभागी सिंचाई, ग्रामीण पेयजल, शहरी जलापूर्ति तथा नीति–शासन जैसे क्षेत्रों को प्रमुखता दी गई है।

NITI Aayog :

पेयजल के क्षेत्र में जल जीवन मिशन के माध्यम से ग्रामीण परिवारों को सुरक्षित और पर्याप्त नल–जल उपलब्ध कराने पर बल दिया गया है। इसके साथ ही जल की गुणवत्ता, अपशिष्ट जल का उपचार तथा उसके पुनः उपयोग को भी जल सुरक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जा रहा है। शहरी क्षेत्रों में वर्षाजल संचयन, सीवेज ट्रीटमेंट और उपचारित जल के पुनः उपयोग को बढ़ाना आवश्यक है।

वर्तमान भारतीय दृष्टिकोण में जलवायु परिवर्तन के अनुकूल जल प्रबंधन भी महत्वपूर्ण हो गया है।

अनियमित मानसून, सूखा, बाढ़ और तापमान वृद्धि जल उपलब्धता को प्रभावित कर रहे हैं। इसलिए स्थानीय स्तर पर जल बजटिंग, जलग्रहण क्षेत्र विकास और डेटा आधारित निर्णय को बढ़ावा दिया जा रहा है। NITI Aayog की हाल की Water Budgeting in Aspirational Blocks पहल इसी दिशा में जल की मांग और उपलब्धता का वैज्ञानिक आकलन करने पर बल देती है।

NITI Aayog :

अतः वर्तमान भारतीय दृष्टिकोण में जल को केवल आर्थिक संसाधन नहीं, बल्कि सामाजिक, पर्यावरणीय और राष्ट्रीय संपदा माना जाना चाहिए। "अधिक जल प्राप्त करना" के स्थान पर "उपलब्ध जल का विवेकपूर्ण और न्यायपूर्ण उपयोग" भारतीय जल नीति का प्रमुख आधार होना चाहिए। जल संरक्षण, पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक तकनीक, जनभागीदारी और वैज्ञानिक नियोजन के समन्वय से ही भारत दीर्घकालीन जल सुरक्षा प्राप्त कर सकता है।

जल संसाधन प्रबंधन में वर्तमान परिप्रेक्ष्य के नवाचार : राजस्थान के विशेष संदर्भ में :

राजस्थान भारत का सर्वाधिक शुष्क एवं जल–संकटग्रस्त राज्यों में से एक है। अनियमित मानसून, कम वर्षा, मरुस्थलीय भौगोलिक परिस्थितियाँ, भूजल का अत्यधिक दोहन तथा बढ़ती कृषि एवं घरेलू जल मांग ने जल संसाधन प्रबंधन को गंभीर चुनौती बना दिया है। ऐसे में राजस्थान में पारंपरिक जल ज्ञान को आधुनिक विज्ञान, तकनीक और जनभागीदारी से जोड़ना जल प्रबंधन में महत्वपूर्ण नवाचार के रूप में सामने आया है।

राजस्थान में मुख्यमंत्री जल स्वावलंबन अभियान (MJSA) जल प्रबंधन का एक प्रमुख नवाचारी मॉडल है। इसके अंतर्गत वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर रोकने, भूजल पुनर्भरण बढ़ाने और जल संरचनाओं के पुनर्जीवन पर बल दिया जाता है। इसका आधार "फोर वाटर कॉन्सेप्ट" है, जिसमें वर्षाजल, भूजल, भूमिगत जल तथा मृदा में उपलब्ध नमी के संरक्षण और उपयोग को एकीकृत किया जाता है। ग्राम सभाओं में वाटर बजटिंग के माध्यम से पेयजल, सिंचाई, पशुपालन और अन्य आवश्यकताओं के लिए उपलब्ध जल तथा उसकी मांग का आकलन किया जाता है।

NITI Aayog :

MJSA 2.0 को फरवरी 2024 में प्रारंभ किया गया। इसमें नए एनीकट, फार्म पॉण्ड, मिनी परकोलेशन टैंक, सब–सर्फेस बैरियर तथा पुरानी जल संरचनाओं की मरम्मत जैसे कार्य शामिल हैं। राज्य सरकार ने अगले चार वर्षों में 20,000 गांवों में लगभग 5 लाख जल संरक्षण एवं जल संचयन संरचनाएं विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

Jankalyan File :

दूसरा महत्वपूर्ण नवाचार पारंपरिक जल संरचनाओं का वैज्ञानिक पुनर्जीवन है। राजस्थान के टांका, जोहड़, नाड़ी, बावड़ी, तालाब, खडीन और कुण्ड जैसी पारंपरिक प्रणालियों को आधुनिक तकनीक के साथ पुनर्जीवित किया जा रहा है। विशेष रूप से बाड़मेर जैसे शुष्क क्षेत्रों में पारंपरिक टांकों और चेक डैमों का उपयोग विकेंद्रीकृत जल भंडारण को मजबूत कर रहा है। केंद्र सरकार द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन में बाड़मेर में 45,000 से अधिक पारंपरिक टांकों और चेक डैमों के योगदान को रेखांकित किया गया है।

Jal Shakti :

GIS, रिमोट सेंसिंग और जियो–टैगिंग भी आधुनिक जल प्रबंधन के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। जल निकायों

की डिजिटल मैपिंग, जलग्रहण क्षेत्रों की पहचान, भूजल संभावनाओं का आकलन तथा जल संरक्षण संरचनाओं की निगरानी के लिए इन तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। राष्ट्रीय जल मिशन वैज्ञानिक जल संरक्षण योजनाओं के निर्माण में GIS एवं रिमोट–सेंसिंग आधारित मानचित्रण को प्रोत्साहित करता है।

Jal Shakti Abhiyan :

इसी प्रकार जल साक्षरता और जनभागीदारी को भी नवाचार का महत्वपूर्ण आधार बनाया गया है। अलवर में विद्यालयों को जल संरक्षण एवं भूजल पुनर्भरण से जोड़ना तथा बाड़मेर में टांका आधारित विकेंद्रीकृत जल भंडारण इसके उदाहरण हैं। राजस्थान ने जल संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी के कारण राष्ट्रीय स्तर पर भी उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है।

Press Information Bureau :

भविष्य में राजस्थान के लिए अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग, माइक्रो–सिंचाई, जल–कुशल फसलें, सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई, कृत्रिम भूजल पुनर्भरण और डिजिटल वाटर बजटिंग जैसे नवाचार अत्यंत महत्वपूर्ण होंगे। इस प्रकार राजस्थान का प्रभावी जल संसाधन प्रबंधन पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक तकनीक और सामुदायिक भागीदारी के समन्वय पर आधारित होना चाहिए। यही दृष्टिकोण राज्य को अधिक जल–सुरक्षित, आत्मनिर्भर और जलवायु–लचीला बनाने में सहायक हो सकता है।

जल संरचनाओं के पुनर्जीवन के लिए सुझाव :

भारत में पारम्परिक जल प्रणालियों के संरक्षण एवं पुनर्जीवन के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं–

1. प्रत्येक जिले में पारम्परिक जल संरचनाओं का डिजिटल सर्वेक्षण किया जाए।
2. पुराने तालाबों और नाड़ियों का सीमांकन किया जाए।
3. जलग्रहण क्षेत्रों पर अतिक्रमण रोका जाए।
4. तालाबों से समय–समय पर गाद निकाली जाए।
5. जोहड़ एवं छोटे बाँधों की मरम्मत की जाए।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में टांका एवं कुंड प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाए।
7. पश्चिमी राजस्थान में खड़ीन प्रणालियों का वैज्ञानिक पुनर्जीवन किया जाए।
8. पारम्परिक संरचनाओं को भूजल पुनर्भरण कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।
9. महिलाओं एवं स्थानीय समुदाय को जल प्रबंधन में निर्णयकारी भूमिका दी जाए।
10. विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर स्थानीय जल विरासत का अध्ययन कराया जाए।
11. पारम्परिक जल संरचनाओं को सांस्कृतिक विरासत के रूप में संरक्षित किया जाए।
12. आधुनिक जल गुणवत्ता परीक्षण की व्यवस्था की जाए।
13. GIS आधारित जल संरचना मानचित्र तैयार किए जाएँ।
14. स्थानीय जल बजट तैयार किए जाएँ।
15. जल उपयोग के साथ जल पुनर्भरण को अनिवार्य रूप से जोड़ा जाए।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष :

इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं –

- पहला, प्राचीन भारतीय समाज जल को केवल आर्थिक वस्तु के रूप में नहीं देखता था।
- दूसरा, जल के साथ धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधों ने जल संरक्षण के लिए सामाजिक आधार प्रदान किया।
- तीसरा, सिंधु सभ्यता में जल आपूर्ति और निकासी की उन्नत व्यवस्थाएँ थीं।
- चौथा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सिंचाई और जल प्रबंधन राज्य की आर्थिक नीति से जुड़े थे।
- पाँचवाँ, भारत की पारंपरिक जल प्रणालियाँ स्थानीय पर्यावरण के अनुसार विकसित हुई।
- छठा, राजस्थान की बावड़ी, कुण्ड, टांका, जोहड़, पार और अन्य प्रणालियों शुष्क क्षेत्रों में जल सुरक्षा के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।
- सातवाँ, सामुदायिक सहभागिता पारंपरिक जल प्रबंधन का महत्वपूर्ण तत्व थी।
- आठवाँ, पारंपरिक प्रणालियों में जल संचयन के साथ भूजल पुनर्भरण पर भी अप्रत्यक्ष रूप से ध्यान दिया जाता था।
- नौवाँ, आधुनिक जल संकट के समाधान में पारंपरिक ज्ञान उपयोगी हो सकता है, लेकिन उसे आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ना आवश्यक है।
- दसवाँ, प्राचीन भारतीय जल–दृष्टिकोण का सबसे महत्वपूर्ण संदेश है–जल का उपयोग और संरक्षण एक–दूसरे से अलग नहीं हैं।
- ग्याहरवाँ, भूजल पुनर्भरण में योगदान : पारम्परिक जल संरचनाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें संग्रहित पानी का कुछ भाग जमीन में रिसकर भूजल का पुनर्भरण करता है।

जोहड़, तालाब, छोटे बाँध और कुछ प्रकार की बावड़ियाँ स्थानीय जलचक्र को मजबूत कर सकती हैं। वर्षाजल को तुरंत बह जाने से रोककर उसे जमीन में प्रवेश करने का समय दिया जाता है।

इस प्रकार पारम्परिक जल प्रबंधन का उद्देश्य केवल सतही जल संग्रहण नहीं था, यह स्थानीय जलचक्र को संतुलित करने का भी माध्यम था।

प्राचीन भारतीय जल दृष्टिकोण एक बहुआयामी और समग्र दृष्टिकोण था। इसमें जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं बल्कि जीवन, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के आधार के रूप में समझा गया।

वैदिक साहित्य में जल के प्रति श्रद्धा, सिंधु घाटी सभ्यता में विकसित जल–निकासी एवं संचयन व्यवस्था, धोलावीरा के जलाशय, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सिंचाई और राज्य की भूमिका, राजस्थान की बावड़ी–कुण्ड–टांका–जोहड़ परंपरा तथा दक्षिण भारत की टैंक प्रणाली यह दिखाती है कि भारतीय समाज ने जल प्रबंधन के अनेक रूप विकसित किए थे। इन व्यवस्थाओं का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप समाधान। जहाँ मरुस्थल था वहाँ भूमिगत टांके और कुण्ड विकसित हुएय जहाँ वर्षाजल अधिक था वहाँ तालाब और टैंक बनाए गएय जहाँ भूभाग में ढाल थी वहाँ गुरुत्व आधारित जल प्रणालियाँ विकसित हुई, और जहाँ कृषि का महत्व अधिक था वहाँ सिंचाई जलाशयों का विकास हुआ।

इसलिए प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन का मूल संदेश किसी एक तकनीक में नहीं बल्कि उसके दृष्टिकोण में निहित है।

यह दृष्टिकोण पाँच प्रमुख सिद्धांतों में संक्षेपित किया जा सकता है –

1. वर्षाजल को संग्रहित करो।
2. स्थानीय जलस्रोतों की रक्षा करो।
3. भूजल का अत्यधिक दोहन मत करो।
4. जल प्रबंधन में समुदाय को सहभागी बनाओ।
5. जल उपयोग को प्रकृति और भविष्य की पीढ़ियों के हित से जोड़ो।

आज जब भारत जल संकट, भूजल हास, जल प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों से गुजर रहा है, तब इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है।

हालाँकि प्राचीन प्रणालियों को आधुनिक परिस्थितियों में बिना परिवर्तन के लागू नहीं किया जा सकता। आधुनिक जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिक आवश्यकताओं और स्वास्थ्य संबंधी मानकों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसलिए सही नीति यह होगी कि प्राचीन स्थानीय ज्ञान को आधुनिक जल–विज्ञान, GIS, रिमोट सेंसिंग, भूजल मॉडलिंग, जल गुणवत्ता परीक्षण और आधुनिक निर्माण तकनीक से जोड़ा जाए।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय जल दृष्टिकोण आधुनिक जल नीति का विकल्प नहीं, बल्कि उसका एक महत्वपूर्ण पूरक बन सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि–

प्राचीन भारतीय जल–बुद्धिमत्ता की सबसे बड़ी देन कोई एक जल–संरचना नहीं, बल्कि जल को प्रकृति, समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति से जोड़कर देखने की समग्र दृष्टि है।

भारत की पारम्परिक जल प्रणालियाँ केवल अतीत की तकनीकें नहीं हैं, बल्कि वे स्थानीय ज्ञान, पर्यावरणीय अनुकूलन, सामुदायिक सहभागिता और टिकाऊ विकास का एक समग्र मॉडल प्रस्तुत करती हैं। आधुनिक जल संकट के संदर्भ में इनका पुनर्जीवन तभी सफल होगा जब इन्हें केवल पुरानी संरचनाओं की मरम्मत तक सीमित न रखकर आधुनिक जल बजट, भूजल प्रबंधन, जलग्रहण क्षेत्र विकास, ळै आधारित नियोजन और सहभागी शासन के साथ जोड़ा जाए। इस दृष्टि से भारत की पारम्परिक जल विरासत भविष्य की जल–सुरक्षा नीति के लिए महत्वपूर्ण ज्ञान–स्रोत बन सकती है।

भविष्य के शोध की संभावनाएँ :

इस विषय पर आगे निम्नलिखित शोध किए जा सकते हैं–

1. भारत की पारंपरिक जल प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन।
2. बावड़ियों और आधुनिक वर्षाजल संचयन का तुलनात्मक अध्ययन।
3. प्राचीन एवं आधुनिक जल कानूनों का तुलनात्मक अध्ययन।
4. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जल नीति का विश्लेषण ।
5. सिंधु सभ्यता की जल व्यवस्था और आधुनिक शहरी जल प्रबंधन।
6. जल प्रबंधन में महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका।
7. पारंपरिक जल प्रणालियों और जलवायु परिवर्तन।
8. भारत में जोहड़ एवं भूजल पुनर्भरण का अध्ययन।
9. पारंपरिक तालाबों के पुनर्जीवन का सामाजिक–आर्थिक प्रभाव।
10. जल प्रबंधन में स्थानीय समुदाय और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका।

संदर्भ ग्रंथ सूची एवं स्रोत :

प्राथमिक स्रोत :

- कौटिल्य अर्थशास्त्र।
- ऋग्वेद आपः सूक्त एवं नदी संबंधी सूक्त।
- अथर्ववेद जल एवं पर्यावरण संबंधी सूक्त।
- प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रीय एवं स्मृति साहित्य।

द्वितीयक स्रोत :

- Sharma, R.S.- India's Ancient Past.
- Singh, Upinder A History of Ancient and Early Medieval India.
- Kosambi, D. D. Historical Outline.The Culture and Civilisation of Ancient India in
- Agarwa, Anil & Narain, Sunita Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems.
- Centre for Science and Environment Traditional Water Harvesting Systems.
- Centre for Science and Environment पारंपरिक एवं आधुनिक वर्षाजल संचयन संबंधी अध्ययन।
- Government of India / National Institute of Disaster Management Manual for Drought Management.
- भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से संबंधित सिंधु सभ्यता एवं प्राचीन जल संरचनाओं के अध्ययन।

प्रमुख ऑनलाइन स्रोत :

- NITI Aayog, Composite Water Management Index 2.0, Government of India, 2019. NITI Aayog
- NITI Aayog, Compendium of Best Practices in Water Management 2.0, Government of India, 2021. NITI Aayog
- NITI Aayog, Compendium of Best Practices in Water Management 3.0, Government of India, 2023. NITI Aayog
- NITI Aayog, Water Budgeting in Aspirational Blocks, Government of India, 2025.NITI Aayog
- Ministry of Jal Shakti, Government of India, जल संसाधन एवं जल संरक्षण संबंधी नीतियाँ एवं कार्यक्रम।
- Centre for Science and Environment ने भारत की पारंपरिक जल प्रणालियों पर विस्तृत सामग्री उपलब्ध कराई है, जिसमें राजस्थान के पार, जोहड़, तालाब, साजा कुआँ तथा अन्य क्षेत्रों की प्रणालियों का विवरण मिलता है। (cseindia.org)
- जोधपुर में पारंपरिक कुण्ड और बावड़ी की अवधारणा पर आधारित आधुनिक वर्षाजल संचयन परियोजना का विवरण भी उपलब्ध है। (cseindia.org)
- राजस्थान के टांका आधारित वर्षाजल संचयन के आधुनिक प्रयोग का CAZRI संबंधी विवरण भी उपलब्ध है। (cseindia.org)

- NITI Aayog,
- Compendium of Best Practices in Water Management 3.0, Government of India.
- NITI Aayog
- Government of Rajasthan, Mukhyamantri Jal Swavlamban Abhiyan 2.0, 2024–25.
- Jankalyan File
- Ministry of Jal Shakti, Jal Shakti Abhiyan: Catch the Rain.
- Jal Shakti Abhiyan
- Ministry of Jal Shakti] Jal Sanchay Jan Bhagidari.
- Jal Shakti Abhiyan
- Press Information Bureau, Government of India Community Participation and Local Governance under Jal Shakti Abhiyan,16 March 2026.
- Press Information Bureau
- Ministry of Jal Shakti, Water Conservation and Groundwater Management Government Initiatives, 2025.
- Jal Shakti
- राजस्थान सरकार, Water Resources / जल संरक्षण संबंधी प्रेस प्रकाशनी, जनभागीदारी एवं जल संरक्षण कार्य। (Water Rajasthan)
- Government of Rajasthan, District Disaster Management /Environmental Assessment Documents, पारम्परिक जल संरचनाओं के क्षरण संबंधी विवरण। (DM Relief Rajasthan)
- Central Water Commission, Historical and Hydrological Evidence Relating to Kalibangan and Ancient River Systems. (Central Water Commission)

शोध ग्रंथ :

- Bimrah, Kanika & Saizen, Izuru. "The Evolution and Decline of Traditional Water Management Systems: A Case Study of Jaipur, India. Water History, Vol. 18, 2026, pp. 291-317. (Springer Link)
- Everard, Mark et al. "Co-production through Tacit Knowledge for Water Resilience." Landscape and Urban Planning. जोधपुर की ऐतिहासिक जल प्रणाली एवं पारम्परिक जल नेटवर्क के अध्ययन में उपयोगी। (ScienceDirect)
- Yadav, Subhash Chandra. "Traditional Rain Water Harvesting Systems in Rajasthan: Water Resources Conservation and its Sustainable Management A Review." Sustainability, Agri, Food and Environmental Research, Vol. 11, 2023. (Chilean Academic Journals Portal)
- "Khadin-A Method of Harvesting Water for Agriculture in the Thar Desert." Journal of Arid Environments, Vol. 6, Issue 1, 1983, pp. 59-66. (ScienceDirect)

- Kumawat, Satyam et al. “Study of Traditional Water Resource Management in Rajasthan.” Journal for ReAttach Therapy and Developmental Diversities, 2023. (TeePublic)
- “Traditional Practices in Water Resources Conservation in the Thar Desert of Rajasthan.” International Journal of Food and Nutritional Sciences, Vol. 12, No. 7, 2023, pp. 420-431. (IJFANS)
- “Traditional Water Management in the Thar Desert: The Khadeen of Rajasthan, India.” Blue Papers. (Blue Papers)

arvindjakhar006@gmail.com
9413920877

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

स्थानीय पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरणीय शासन : सतत ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायतों की भूमिका

Dr. Nitu Rai
Assistant Professor, Political science
B.S.N.V.PG College, Lucknow.

सारांश :

यह शोध–पत्र स्थानीय पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरणीय शासन के बीच संस्थागत संबंध की जाँच करता है, विशेष रूप से इस प्रश्न पर केंद्रित होकर कि ग्राम पंचायतें जल, भूमि, वन, चरागाह और जैव विविधता के प्रबंधन से जुड़े अनुभव–आधारित स्थानीय ज्ञान को औपचारिक पर्यावरणीय प्रशासन से जोड़ने वाला संस्थागत सेतु किस सीमा तक बन सकती हैं। पद्धति गुणात्मक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है, जो संवैधानिक प्रावधानों, आधिकारिक दस्तावेजों और प्रकाशित शोध की आलोचनात्मक समीक्षा पर आधारित है। इसमें किसी क्षेत्रकार्य अथवा साक्षात्कार का दावा नहीं किया गया है। विश्लेषण दिखाता है कि यह संभावित भूमिका पूर्वनिर्धारित सफलता नहीं, बल्कि वास्तविक अधिकार, वित्त, तकनीकी सहयोग और समावेशी सहभागिता पर निर्भर एक सशर्त संभावना है। निष्कर्ष यह स्पष्ट करता है कि संवैधानिक प्रावधान अपने आप में पर्यावरणीय शासन को लोकतांत्रिक अथवा प्रभावी नहीं बनातेय जाति, वर्ग और लिंग आधारित शक्ति–असमानताएँ इस संभावना को गंभीर रूप से सीमित कर सकती हैं।

मुख्य शब्द : स्थानीय पारंपरिक ज्ञान, पर्यावरणीय शासन, ग्राम पंचायत, ग्राम सभा, सतत ग्रामीण विकास, प्राकृतिक संसाधन, सहभागी शासन।

प्रस्तावना :

अब भी ग्रामीण भारत आज जल–संकट, भूजल क्षरण, भूमि की गुणवत्ता में गिरावट, सामुदायिक चरागाहों पर बढ़ते दबाव, जैव विविधता की क्षति, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और आजीविका की बढ़ती असुरक्षा जैसी परस्पर जुड़ी चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन समस्याओं का समाधान केवल ऊपर से लागू की गई तकनीकी योजनाओं से संभव नहीं स्थानीय समुदायों का संचित अनुभव और लोकतांत्रिक संस्थाओं की सार्थक भागीदारी भी उतनी ही आवश्यक है। इस संदर्भ में स्थानीय पारंपरिक ज्ञान को केवल अतीत से प्राप्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में देखना अपर्याप्त है, यह जल–संग्रह, मिट्टी की पहचान, स्थानीय बीज, चरागाह–प्रबंधन और मौसम के संकेतों से जुड़ा अनुभव–आधारित ज्ञान भी है, जो पीढ़ियों के अवलोकन से विकसित हुआ। ग्राम

पंचायतें, संवैधानिक रूप से स्थानीय स्वशासन की इकाई होने के कारण, इस ज्ञान और औपचारिक पर्यावरणीय प्रशासन के बीच एक संभावित संस्थागत सेतु बन सकती हैं। यह शोध–पत्र इस तर्क को पूर्वसिद्ध सत्य नहीं मानता। प्रत्येक पारंपरिक प्रथा पर्यावरणीय दृष्टि से उपयोगी अथवा सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण हो, यह आवश्यक नहीं कुछ परंपराएँ महिलाओं, दलितों अथवा आदिवासी समुदायों को निर्णय–प्रक्रिया से बाहर भी रख सकती हैं। इसी तरह ग्राम पंचायतों को स्वाभाविक रूप से लोकतांत्रिक अथवा पर्यावरण–संवेदनशील संस्था मान लेना भी उतना ही अनुचित होगा। यह अध्ययन उपलब्ध कानूनों, नीतिगत दस्तावेजों और प्रकाशित शोध के आधार पर इस संभावना की सीमाओं तथा शर्तों की आलोचनात्मक जाँच करता है।

अवधारणात्मक एवं सैद्धांतिक आधार :

स्थानीय पारंपरिक ज्ञान से आशय उस ज्ञान से है जो समुदायों द्वारा दीर्घकालीन अनुभव, अवलोकन, व्यवहार और पीढ़ीगत हस्तांतरण के माध्यम से विकसित हुआ है। जिसमें जल–संग्रह की तकनीकें, स्थानीय बीज, मिश्रित खेती और चरागाह–प्रबंधन जैसी प्रथाएँ सम्मिलित हो सकती हैं। पर्यावरणीय शासन प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े निर्णयों में राज्य, स्थानीय संस्थाओं, नागरिकों और अन्य पक्षों के बीच अधिकार, जवाबदेही और भागीदारी की व्यवस्था को दर्शाता है। सतत ग्रामीण विकास ऐसे विकास को इंगित करता है जो वर्तमान आजीविका–आवश्यकताओं को पूरा करते हुए प्राकृतिक संसाधनों, सामाजिक न्याय और भावी पीढ़ियों के हितों की रक्षा करे। सहभागी शासन वह प्रक्रिया है जिसमें नागरिक केवल योजनाओं के लाभार्थी न होकर प्राथमिकता–निर्धारण, योजना, क्रियान्वयन और निगरानी में वास्तविक भागीदार हों। ओस्ट्रॉम (1990) का साझा संसाधन प्रबंधन संबंधी कार्य इस संदर्भ में सैद्धांतिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। उनका विश्लेषण दिखाता है कि सामुदायिक संस्थाएँ, समुचित परिस्थितियों में, साझा प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी प्रबंधन बिना पूर्ण राज्य–नियंत्रण अथवा निजीकरण के भी कर सकती हैं। परंतु यह क्षमता स्वचालित नहीं है और निगरानी, प्रतिबंधन तथा स्पष्ट सीमाओं जैसी संस्थागत शर्तों पर निर्भर करती है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक स्थानीय समुदाय अपने संसाधनों का सफल प्रबंधन करता ही है, ओस्ट्रॉम स्वयं असफल उदाहरणों की भी चर्चा करती हैं। यह भेद इस अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह पारंपरिक ज्ञान अथवा सामुदायिक संस्थाओं के रोमानीकरण से बचने में सहायक है।

संवैधानिक एवं संस्थागत परिप्रेक्ष्य :

भारत के संविधान में 73वें संशोधन (1992) ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया, जिसमें ग्राम सभा और ग्राम पंचायत ग्रामीण स्वशासन की आधारभूत इकाइयाँ बनीं। अनुच्छेद 243G राज्य विधानमंडलों को यह अधिकार देता है कि वे पंचायतों को स्वशासन की संस्था के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक अधिकार और उत्तरदायित्व सौंपें, जिसमें ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषय जैसे कृषि, भूमि–सुधार, लघु सिंचाई, जल–प्रबंधन, पशुपालन, सामाजिक वानिकी, लघु वन–उपज, पेयजल और सामुदायिक संपत्तियाँ सम्मिलित हो सकते हैं। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण भेद स्पष्ट करना आवश्यक है : ग्यारहवीं अनुसूची में किसी विषय का उल्लेख होना, और किसी ग्राम पंचायत को उस विषय पर वास्तविक प्रशासनिक, वित्तीय तथा कार्मिक नियंत्रण प्राप्त होना कृ एक ही बात नहीं है। 'कार्य, वित्त और कार्मिक' के वास्तविक हस्तांतरण की स्थिति राज्यों के बीच व्यापक रूप से भिन्न रही है, और कई राज्यों में पंचायतें बिना पर्याप्त वित्तीय स्वायत्तता अथवा प्रशिक्षित कर्मचारियों के ही ये उत्तरदायित्व निभाने की अपेक्षा रखती हैं। अनुसूचित क्षेत्रों के संदर्भ में, पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 जिसे सामान्यतः पेसा अधिनियम कहा जाता है। संविधान के भाग

IX के प्रावधानों को कुछ संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित किया, जिसमें ग्राम सभा को लघु वन–उपज, लघु जल–निकायों और स्थानीय संसाधनों पर विशेष अधिकार दिए गए। यह अधिनियम केवल अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू होता है, समस्त भारत की पंचायतों पर नहीं इसे सामान्यीकृत रूप से प्रस्तुत करना भ्रामक होगा। पंचायती राज मंत्रालय की ग्राम पंचायत विकास योजना प्रक्रिया और सतत विकास लक्ष्यों के स्थानीयकरण से संबंधित पहल इस संस्थागत ढाँचे को व्यावहारिक योजना–प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास दर्शाती हैं, यद्यपि इनके वास्तविक क्रियान्वयन की गुणवत्ता स्थान के अनुसार भिन्न रहती है।

स्थानीय पारंपरिक ज्ञान के प्रमुख क्षेत्र :

स्थानीय पारंपरिक ज्ञान भारत के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में भिन्न रूप लेता है, और पूरे भारत को एक समान पारंपरिक ज्ञान–क्षेत्र मानना गंभीर सरलीकरण होगा हिमालयी क्षेत्र, शुष्क राजस्थान, मध्य भारत, तटीय क्षेत्र और उत्तर–पूर्वी भारत की पारिस्थितिक परिस्थितियाँ और तदनुसार पारंपरिक व्यवहार भी अलग–अलग हैं।

जल–संग्रह इस ज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है। अगरवाल एवं नारायण (1997) के व्यापक अध्ययन के अनुसार भारत के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में जोहड़, तालाब, नाड़ी और बावड़ी जैसी विविध जल–संग्रह प्रणालियाँ विकसित हुईं, जो स्थानीय वर्षा–प्रतिरूप, मिट्टी और ढलान के ज्ञान पर आधारित थीं। राजस्थान के लापोड़िया गाँव की नाड़ी इसी परंपरा का एक उदाहरण है, जो वर्षा–जल के संग्रह तथा पशुधन के लिए जल–उपलब्धता को संभव बनाती है। यद्यपि इसे संपूर्ण भारत की जल–प्रणाली का प्रतिनिधि उदाहरण नहीं माना जा सकता, यह राजस्थान के एक विशिष्ट स्थानीय संदर्भ में समझा जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त स्थानीय बीज–प्रथाएँ, मिश्रित खेती, फसल–चक्र, सामुदायिक चरागाह–प्रबंधन, पवित्र उपवनों के माध्यम से वन–संरक्षण, औषधीय वनस्पतियों का ज्ञान, पशुपालन–प्रथाएँ, और सूखे की स्थिति में अपनाए जाने वाले पारंपरिक उपाय भी इस ज्ञान–भंडार का हिस्सा हैं। प्रत्येक प्रथा को स्वतः वैज्ञानिक रूप से प्रभावी घोषित करना उचित नहीं होगा इनकी उपयोगिता और सीमाएँ उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर ही आँकी जानी चाहिए। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यह ज्ञान केवल गाँव के प्रभावशाली पुरुषों तक सीमित नहीं महिलाओं, आदिवासी समुदायों, पशुपालकों, छोटे किसानों और भूमिहीन समूहों के पास भी संसाधन–प्रबंधन से जुड़ा विशिष्ट और प्रायः कम मान्यता–प्राप्त ज्ञान होता है।



चित्र 1. राजस्थान के लापोड़िया गाँव में स्थित नाड़ी, जो स्थानीय जल–संग्रह और पशुधन के लिए जल–व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करती है। छायाकार : Amar Singh Kangarot, 8 अगस्त 2019। स्रोत : Wikimedia Commons। लाइसेंस : CC BY-SA 4.0। (यह राजस्थान का एक विशिष्ट स्थानीय

उदाहरण है, संपूर्ण भारत का प्रतिनिधि चित्र नहीं।)

पर्यावरणीय शासन में ग्राम पंचायतों की भूमिका :

पर्यावरणीय शासन में ग्राम पंचायतों की संभावित भूमिका को केवल निर्माण–कार्यों की स्वीकृति तक सीमित नहीं समझा जाना चाहिए। यह भूमिका स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के मानचित्रण, जल–स्रोतों की पहचान और संरक्षण, तालाबों तथा जलागम क्षेत्रों के पुनर्जीवन, भूजल–उपयोग की स्थानीय निगरानी, सामुदायिक भूमि और चरागाहों की रक्षा, तथा स्थानीय वृक्ष–प्रजातियों को बढ़ावा देने जैसे अनेक क्षेत्रों तक विस्तृत हो सकती है। इसमें जैव विविधता संबंधी स्थानीय जानकारी का दस्तावेजीकरण, जलवायु–जोखिम आकलन और आपदा–तैयारी भी सम्मिलित हो सकते हैं।

व्यावहारिक स्तर पर यह भूमिका ग्राम पंचायत विकास योजना की प्रक्रिया से जुड़ती है, जिसमें पर्यावरणीय प्राथमिकताओं को स्थानीय योजना का हिस्सा बनाया जा सकता है, तथा मनरेगा जैसी योजनाओं के साथ समन्वय स्थापित कर जल–संरक्षण और भूमि–सुधार से जुड़े कार्यों को क्रियान्वित किया जा सकता है। ग्राम सभा, सिद्धांततः, इस प्रक्रिया में प्राथमिकता–निर्धारण का मंच बन सकती है, और कार्यों की सामाजिक निगरानी को जवाबदेही सुनिश्चित करने का साधन माना जा सकता है।

यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि स्थानीय ज्ञान और वैज्ञानिक विशेषज्ञता को परस्पर विरोधी ध्रुवों के रूप में प्रस्तुत करना उपयोगी नहीं। सिंह (2025) का विश्लेषण दिखाता है कि भारत में प्राकृतिक संसाधन–शासन के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक अर्थव्यवस्था से गहराई से प्रभावित रही है, और वन–प्रबंधन तथा ग्रामीण पेयजल–क्षेत्र में विकेंद्रीकरण के प्रयास प्रायः केंद्रीकरण की पूर्ववर्ती संस्थाओं और हितों से प्रभावित होकर अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाए। इसी तरह बराल (2024) यह तर्क देती हैं कि भारत में प्राकृतिक संसाधनों के विकेंद्रीकृत शासन की वर्तमान नीतिगत रूपरेखा प्रायः प्रतिबंधात्मक बनी रहती है, और स्थानीय समुदाय की सार्थक भागीदारी को पूरी तरह सक्षम नहीं बनाती। इन विश्लेषणों से यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय ज्ञान और वैज्ञानिक विशेषज्ञता के बीच संवाद तथा सह–उत्पादन की संभावना तो है, पर यह संभावना संस्थागत डिजाइन और राजनीतिक इच्छाशक्ति पर निर्भर करती है, स्वतः घटित नहीं होती।

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है : पंचायत–कार्यालय जैसी संरचनाओं की उपस्थिति संस्थागत उपस्थिति को दर्शाती है, परंतु उससे पंचायत के वास्तविक पर्यावरणीय प्रदर्शन के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता भौतिक अवसंरचना का होना और उसका प्रभावी उपयोग होना, दो भिन्न बातें हैं।



चित्र 2. बथेरी, मंडी, हिमाचल प्रदेश का ग्राम पंचायत कार्यालय। छायाकार : Timothy A. Gonsalves, 12 नवंबर 2012। स्रोत : Wikimedia Commons। लाइसेंस : CC BY-SA 4.0। (यह संस्थागत उपस्थिति का दृश्य संदर्भ है, सफल पर्यावरणीय शासन का प्रमाण नहीं।)

ग्राम सभा, सहभागिता और सामाजिक न्याय :

ग्राम सभा और ग्राम पंचायत को एक ही संस्था मान लेना एक सामान्य किंतु गंभीर भूल है। ग्राम सभा समस्त पंजीकृत मतदाताओं की सभा है, जबकि ग्राम पंचायत निर्वाचित प्रतिनिधियों की कार्यकारी इकाई। ग्राम सभा में उपस्थित होना ही प्रभावी भागीदारी का प्रमाण नहीं है, उपस्थिति, बोलने की वास्तविक क्षमता, निर्णय पर प्रभाव और संसाधनों तक वास्तविक पहुँच इन सबके बीच अंतर करना आवश्यक है।

महिलाओं की भागीदारी के संदर्भ में चट्टोपाध्याय एवं डफ्लो (2004) का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पश्चिम बंगाल और राजस्थान के ग्राम पंचायतों पर आधारित उनके शोध से पता चलता है कि जिन पंचायतों में प्रधान का पद महिलाओं के लिए आरक्षित था, वहाँ सार्वजनिक वस्तुओं में निवेश का प्रतिरूप महिलाओं की वरीयताओं की ओर अधिक झुका हुआ पाया गया जैसे जल संबंधी अवसंरचना में अधिक निवेश। यह अध्ययन दिखाता है कि प्रतिनिधित्व की संरचना वास्तविक नीतिगत परिणामों को प्रभावित कर सकती है, यद्यपि यह प्रभाव संदर्भ के अनुसार भिन्न रहता है और इसे सभी पंचायतों पर यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता।

इसके साथ कुछ राजनीतिक प्रश्न केंद्रीय बने रहते हैंरू किसका ज्ञान मान्यता प्राप्त करता है? कौन निर्णय लेता है? किस समूह को वास्तविक लाभ पहुँचता है? किसकी भूमि अथवा संसाधन प्रभावित होते हैं? अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, भूमिहीन परिवारों, पशुपालकों और वन–आश्रित समुदायों की उपस्थिति औपचारिक रूप से सुनिश्चित होने पर भी, स्थानीय अभिजात वर्ग का प्रभाव अनौपचारिक रूप से निर्णय–प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकता है। यह अंतर्विरोध पर्यावरणीय शासन की लोकतांत्रिक गुणवत्ता के मूल्यांकन के लिए केंद्रीय महत्त्व रखता है।

चुनौतियाँ और अंतर्विरोध :

पंचायत–आधारित पर्यावरणीय शासन की राह में अनेक व्यावहारिक बाधाएँ हैं। अपर्याप्त अधिकार और वित्तीय निर्भरता, प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी, तथा विभिन्न सरकारी विभागों के बीच समन्वय के अभाव के कारण पंचायतों की क्षमता प्रायः सीमित रह जाती है। स्थानीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण भी कमजोर बना हुआ है, जिससे यह ज्ञान औपचारिक योजना–प्रक्रिया में समुचित रूप से सम्मिलित नहीं हो पाता।

जाति, वर्ग और लिंग आधारित शक्ति–असमानताएँ इस चुनौती को और जटिल बनाती हैं प्रभावशाली समूहों का नियंत्रण, कमजोर ग्राम सभा और ऊपर से निर्धारित तथा ठेकेदार–केंद्रित विकास–प्रतिरूप अक्सर पर्यावरणीय कार्यों को केवल भौतिक निर्माण तक सीमित कर देते हैं, जबकि दीर्घकालीन पारिस्थितिक प्रबंधन उपेक्षित रह जाता है। जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक पुरानी प्रथाओं की उपयोगिता भी बदल रही है। जो ज्ञान अतीत की जलवायु–परिस्थितियों में प्रभावी था, वह वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में उतना ही प्रभावी हो, यह आवश्यक नहीं। समुदाय के ज्ञान के व्यावसायिक उपयोग में सहमति और उचित मान्यता का प्रश्न भी बढ़ता जा रहा है, और डिजिटल शासन–प्रणालियाँ प्रायः स्थानीय भाषाओं तथा स्थानीय ज्ञान की उपेक्षा करती हैं।

परंपरा का रोमानीकरण इस विश्लेषण में एक बार–बार सामने आने वाला जोखिम है। कुछ पारंपरिक व्यवस्थाएँ, चाहे वे कितनी भी पारिस्थितिक रूप से सूक्ष्म क्यों न हों, महिलाओं, दलितों अथवा आदिवासी समुदायों को निर्णय–प्रक्रिया से बाहर रखती रही हैं। पारंपरिक ज्ञान को अपनाने का अर्थ इन असमानताओं को भी अनजाने में सुदृढ़ करना नहीं होना चाहिए।

नीतिगत सुझाव :

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कुछ व्यावहारिक दिशाएँ प्रस्तावित की जा सकती हैं। ग्राम पंचायत स्तर पर स्थानीय पर्यावरण एवं ज्ञान–रजिस्टर तैयार किए जाने चाहिए, जिसमें महिलाओं और हाशिए के समुदायों के ज्ञान को स्वतंत्र रूप से दर्ज किया जाए। ग्राम सभा की केवल औपचारिक नहीं, वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ठोस संस्थागत उपाय आवश्यक हैं, साथ ही पंचायत प्रतिनिधियों को पर्यावरणीय नियोजन का उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

पारंपरिक ज्ञान को वैज्ञानिक परीक्षण और स्थानीय अनुभव, दोनों के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए, न कि किसी एक को दूसरे से श्रेष्ठ मानकर। ग्राम पंचायत विकास योजना में जल, भूमि, वन और जैव विविधता से संबंधित एक स्पष्ट पर्यावरणीय भाग सम्मिलित किया जाना चाहिए, और इसके साथ पंचायतों को पर्याप्त कार्य, वित्त तथा प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध कराए जाने चाहिए। बिना इसके, संवैधानिक प्रावधान व्यवहार में अधूरे रह जाते हैं। विभिन्न सरकारी विभागों और पंचायतों के बीच समन्वय बढ़ाना, पर्यावरणीय कार्यों की सामाजिक तथा स्वतंत्र निगरानी सुनिश्चित करना, और समुदाय के ज्ञान का उपयोग उसकी पूर्व सहमति तथा उचित मान्यता के साथ करना भी आवश्यक है। अंततः, किसी एक क्षेत्र में सफल पाए गए मॉडल को बिना स्थानीय परिस्थितियों के गहन अध्ययन के अन्यत्र दोहराना उचित नहीं होगा।

निष्कर्ष :

यह अध्ययन स्थापित करता है कि स्थानीय पारंपरिक ज्ञान सतत ग्रामीण विकास के लिए एक उपयोगी संसाधन हो सकता है, परंतु यह न तो स्थिर है, न एकरूप, और न सदैव सही। ग्राम पंचायतें इस ज्ञान और औपचारिक पर्यावरणीय प्रशासन के बीच एक महत्त्वपूर्ण संस्थागत सेतु बन सकती हैं, पर यह क्षमता स्वतः सिद्ध नहीं होती।

केवल संवैधानिक प्रावधान पंचायतों को प्रभावी नहीं बनाते इसके लिए वास्तविक अधिकार, पर्याप्त वित्त, प्रशिक्षित कर्मचारी, समावेशी ग्राम सभा और सुदृढ़ जवाबदेही–तंत्र आवश्यक हैं। पर्यावरणीय शासन तभी वास्तविक अर्थों में लोकतांत्रिक होगा जब स्थानीय समुदाय विशेषकर महिलाएँ, अनुसूचित जाति–जनजाति के सदस्य, भूमिहीन परिवार और पशुपालक समुदाय केवल योजनाओं के लाभार्थी न होकर सक्रिय निर्णयकर्ता भी हों। स्थानीय ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक समझ के बीच एक न्यायपूर्ण और सम्मानजनक संवाद विकसित करना इस दिशा में एक आवश्यक, यद्यपि चुनौतीपूर्ण, कदम है।

संदर्भ-सूची :

1. Agarwal, A., & Narain, S. (1997). 'Dying wisdom : Rise, fall, and potential of India's traditional water harvesting systems' (State of India's Environment No. 4). Centre for Science and Environment.
2. Baral, K. (2024). Revisiting decentralised governance of natural resources in India: Conceptual binaries and restrictive policy design. 'Journal of Development Policy and Practice, 9'(2), 219–237. https://doi.org/10.1177/24551333231185000
3. Chattopadhyay, R., & Duflo, E. (2004). Women as policy makers: Evidence from a randomized

policy experiment in India. 'Econometrica, 72'(5), 1409–1443. https://doi.org/10.1111/j.1468-0262.2004.00539.x

4. भारत का संविधान। (1992)। 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, अनुच्छेद 243G एवं ग्यारहवीं अनुसूची। भारत सरकार।
5. भारत सरकार। (1996)। पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996। https://faolex.fao.org/docs/pdf/ind200703.pdf
6. Ostrom, E. (1990). 'Governing the commons : The evolution of institutions for collective action'. Cambridge University Press.
7. पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार। (न.द.)। ग्राम पंचायत विकास योजना एवं People's Plan Campaign? https://panchayat.gov.in/en/peoples-plan-campaign-ppc/
8. Singh, S. (2025). Malignity in decentralization of natural resource governance in India. 'Policy and Society, 44'(2), 150–164. https://doi.org/10.1093/polsoc/puaf022
9. राजस्थान के लापोड़िया गाँव में स्थित नाड़ी, जो स्थानीय जल–संग्रह और पशुधन के लिए जल–व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह पारंपरिक जल–संग्रह प्रणाली का एक विशिष्ट स्थानीय उदाहरण है, और इसे संपूर्ण भारत की जल–व्यवस्था का प्रतिनिधि चित्र नहीं माना जाना चाहिए।
10. छायाकार : Amar Singh Kangarot तिथि : 8 अगस्त 2019। स्रोत : Wikimedia Commons लाइसेंस : CC BY-SA 4.0। कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। स्रोत–लिंकः https://commons.wikimedia.org/wiki/File:A_Nadi_(small_johad)_in_village_Laporiya,_Rajasthan.jpg
11. बथेरी, मंडी, हिमाचल प्रदेश का ग्राम पंचायत कार्यालय। यह चित्र ग्रामीण स्तर पर पंचायत की संस्थागत उपस्थिति को दर्शाता है, इसे पंचायत के सफल पर्यावरणीय शासन का प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए यह केवल संस्थागत उपस्थिति का दृश्य संदर्भ प्रस्तुत करता है।
12. छायाकार: Timothy A. Gonsalves तिथि : 12 नवंबर 2012। स्रोत : Wikimedia Commons. लाइसेंस CC BY-SA 4.0 कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। स्रोत–लिंक https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gram_Panchayat_Batheri_Mandi_Himachal_Nov12_DSC_0764.jpg

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी भूमिका

अनुराधा, शोधार्थिनी, शिक्षा विभाग,
प्रो. (डॉ.) तनूजा अग्रवाल, शोध निर्देशिका, बी.एड. डिपार्टमेंट इंचार्ज,
के. आर. महिला पी.जी. कॉलेज, मथुरा
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, यू.पी.

सारांश

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके प्राकृतिक संसाधनों से अधिक उसके ज्ञान, कौशल, नवाचार तथा तकनीकी क्षमता पर निर्भर करती है। भारत सरकार द्वारा प्रारंभ किया गया **'आत्मनिर्भर भारत'** अभियान देश को आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी दृष्टि से सशक्त बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा नागरिकों में ज्ञान, कौशल, नैतिक मूल्यों तथा नवाचार की भावना का विकास करती है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा को अधिक सुलभ, प्रभावी एवं समावेशी बनाती है। अध्ययन में आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में डिजिटल समावेशन तथा उद्यमिता को प्रोत्साहित कर वर्तमान चुनौतियों एवं उनके समाधान पर भी विचार प्रस्तुत किया गया है।

कुंजी शब्द: आत्मनिर्भर भारत, शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास।

प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसकी शिक्षित एवं जागरूक जनसंख्या होती है। यदि नागरिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करें, नवीन तकनीकों का उपयोग करना सीखें तथा आत्मविश्वास के साथ नवाचार करें, तो वह राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनता है। इसी विचार को आधार बनाकर भारत सरकार ने *आत्मनिर्भर भारत* की परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य देश को उत्पादन, कौशल, अनुसंधान, नवाचार तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना है।

आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल स्वदेशी वस्तुओं का निर्माण नहीं है, बल्कि ऐसी व्यवस्था का निर्माण भी है जिसमें प्रत्येक नागरिक अपनी क्षमता का पूर्ण विकास कर सके और राष्ट्र के विकास में सक्रिय भागीदारी निभा सके। इस दृष्टि से शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा व्यक्ति को ज्ञान एवं कौशल प्रदान करती है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी उस ज्ञान को व्यापक समाज तक पहुँचाने तथा उसे व्यवहार में परिवर्तित करने का प्रभावी माध्यम बनती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने शिक्षा को रोजगारोन्मुख, कौशल-आधारित तथा तकनीक-सक्षम बनाने पर विशेष बल दिया है। इसके साथ ही *डिजिटल इंडिया*, *दीक्षा (DIKSHA)*, *स्वयं (SWAYAM)*, *पीएम ई-विद्या* तथा *राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय* जैसी पहलें शिक्षा के डिजिटलीकरण को गति प्रदान कर रही हैं। इन पहलों ने शिक्षा की पहुँच को ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों तक विस्तारित किया है तथा विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराई है।

यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वय आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में किस प्रकार परिवर्तनकारी भूमिका निभा रहा है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका को समझने के लिए विभिन्न शोधकर्ताओं एवं संस्थाओं द्वारा किए गए अध्ययनों का अवलोकन किया गया। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का डिजिटलीकरण, कौशल विकास तथा तकनीकी नवाचार राष्ट्र की आत्मनिर्भरता के प्रमुख आधार हैं।

1. डे एवं पांडा (2026) ने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला गया कि **SWAYAM**, डिजिटल मूल्यांकन तथा प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षण विद्यार्थियों में स्व-अधिगम, कौशल विकास एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्रोत्साहित करते हैं, जो आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा को सुदृढ़ बनाते हैं।

2. अपार बिंजोला एवं कुलदीप शर्मा (2026) शोध के अनुसार **DIKSHA**, **SWAYAM** तथा **PM eVIDYA** जैसी पहलों ने शिक्षा की पहुँच एवं गुणवत्ता में वृद्धि की है, यद्यपि डिजिटल विभाजन अभी भी एक प्रमुख चुनौती है।

3. श्वेता सिंह (2026) ने शोध में पाया गया कि नीति के माध्यम से डिजिटल साक्षरता, ई-लर्निंग तथा समावेशी शिक्षा को बढ़ावा मिला है, जिससे भविष्य के लिए तकनीकी रूप से दक्ष मानव संसाधन तैयार हो रहे हैं।

4. करनम पुष्पनाधम (2019) ने यूनेस्को के लिए प्रकाशित अध्ययन में भारत में MOOCs एवं **SWAYAM** जैसे मंचों की उपयोगिता का विश्लेषण किया। अध्ययन के अनुसार डिजिटल शिक्षण मंच उच्च शिक्षा की पहुँच बढ़ाने तथा आजीवन अधिगम को प्रोत्साहित करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

5. ज्योति झा एवं डी. हरिचंदन (2022) ने भारत में ऑनलाइन शिक्षा के विकास का अध्ययन किया। शोध के अनुसार **SWAYAM** मंच गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सभी वर्गों तक पहुँचाने तथा डिजिटल असमानता को कम करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शोधों में डिजिटल शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, ऑनलाइन शिक्षण मंचों तथा तकनीकी नवाचारों के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में शिक्षा की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी के समन्वित प्रभाव का मूल्यांकन करना।
4. इस क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियों एवं समाधान प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन **द्वितीयक आँकड़ों** पर आधारित है। अध्ययन हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, शिक्षा मंत्रालय, नीति आयोग, यूनेस्को, यूजीसी, विभिन्न शोध-पत्रों, पुस्तकों, सरकारी प्रतिवेदनों तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। संकलित तथ्यों का वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन किया गया है।

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की अवधारणा में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती है। यह केवल साक्षरता तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व, चिंतन क्षमता, नैतिक मूल्यों तथा व्यावसायिक दक्षता का समग्र विकास करती है। आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना तभी सफल हो सकती है, जब देश का युवा वर्ग ज्ञान के साथ-साथ कौशल एवं नवाचार से भी परिपूर्ण हो।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर **आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, अनुसंधान**

तथा कौशल विकास पर विशेष बल दिया गया है। इससे विद्यार्थियों में समस्या-समाधान की क्षमता विकसित होती है, जो आत्मनिर्भर समाज की मूल आवश्यकता है।

वर्तमान समय में स्टार्टअप संस्कृति, नवाचार तथा उद्यमिता को बढ़ावा देने में उच्च शिक्षा संस्थानों की भूमिका निरंतर बढ़ रही है। अनेक विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में नवाचार प्रयोगशालाएँ, इनक्यूबेशन केंद्र तथा उद्यमिता विकास प्रकोष्ठ स्थापित किए गए हैं, जहाँ विद्यार्थी अपने विचारों को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। इससे रोजगार खोजने वाले युवाओं के स्थान पर रोजगार उपलब्ध कराने वाले युवा तैयार हो रहे हैं।

आत्मनिर्भर भारत में शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वित प्रभाव व परिवर्तनकारी भूमिका

वर्तमान युग को सूचना एवं ज्ञान का युग कहा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी ने शिक्षा, उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, प्रशासन तथा व्यापार सहित प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में इसकी भूमिका केवल तकनीकी सुविधा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ज्ञान के प्रसार, नवाचार को प्रोत्साहन, डिजिटल समावेशन तथा आर्थिक विकास का प्रमुख आधार बन चुकी है।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, सुलभ एवं लचीला बनाया है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को देश के दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी ने केवल शिक्षा के प्रसार में ही नहीं, बल्कि कौशल विकास एवं रोजगार सृजन में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), डेटा विज्ञान, साइबर सुरक्षा, क्लाउड कम्प्यूटिंग तथा डिजिटल विपणन जैसे क्षेत्रों में लाखों युवाओं के लिए नए अवसर उपलब्ध हुए हैं। इससे भारत वैश्विक डिजिटल अर्थव्यवस्था में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

ग्रामीण भारत में भी डिजिटल शिक्षा ने सकारात्मक परिवर्तन लाया है। इंटरनेट एवं मोबाइल प्रौद्योगिकी के माध्यम से ग्रामीण विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो रही है। इससे शैक्षिक असमानता में कमी आई है तथा शिक्षा का दायरा व्यापक हुआ है। यदि डिजिटल संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित किया जाए, तो यह परिवर्तन और अधिक प्रभावी सिद्ध होगा।

चुनौतियाँ एवं सुझाव

यद्यपि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी ने आत्मनिर्भर भारत की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दिया है, तथापि अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। देश के अनेक ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित उपलब्धता, डिजिटल उपकरणों का अभाव तथा आर्थिक विषमता डिजिटल शिक्षा के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं। इसके अतिरिक्त अनेक शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में डिजिटल दक्षता का अभाव भी प्रभावी तकनीकी उपयोग में बाधा उत्पन्न करता है।

साइबर सुरक्षा, व्यक्तिगत आँकड़ों की गोपनीयता तथा ऑनलाइन माध्यमों के दुरुपयोग जैसी समस्याएँ भी निरंतर बढ़ रही हैं। इन चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता से नहीं, बल्कि उनके सुरक्षित एवं उत्तरदायी उपयोग से संभव है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक है कि डिजिटल अवसंरचना का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों तक किया जाए, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए नियमित डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाएँ, स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण ई-शैक्षिक सामग्री विकसित की जाए तथा अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहित करने हेतु शिक्षा एवं उद्योग के मध्य सहयोग को और सुदृढ़ बनाया जाए। साथ ही, डिजिटल साक्षरता को विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी तकनीकी रूप से दक्ष एवं आत्मनिर्भर बन सके।

निष्कर्ष

आत्मनिर्भर भारत का निर्माण केवल आर्थिक नीतियों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए शिक्षित, कुशल, नवाचारी एवं तकनीकी रूप से सक्षम नागरिकों का निर्माण आवश्यक है। शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक एवं नैतिक विकास का आधार है, जबकि सूचना प्रौद्योगिकी उस शिक्षा को व्यापक, प्रभावी एवं समावेशी बनाती है। दोनों के समन्वित प्रयासों से ही ऐसा समाज निर्मित किया जा सकता है जो ज्ञान-आधारित, आत्मविश्वासी एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी हो।

अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एवं सूचना प्रौद्योगिकी केवल आत्मनिर्भर भारत के सहायक साधन नहीं हैं, बल्कि वे उसके मूल प्रेरक तत्व हैं। एक शिक्षित, तकनीकी रूप से दक्ष एवं नवाचारी नागरिक ही आत्मनिर्भर, समृद्ध एवं विकसित भारत की आधारशिला रख सकता है।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020*. शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।

2. नीति आयोग. (2020). *आत्मनिर्भर भारत : विकास की नई दिशा*।
3. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. *अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE) प्रतिवेदन*।
4. शिक्षा मंत्रालय. *यू-डाइस प्लस (UDISE+) प्रतिवेदन*।
5. UNESCO. (2021). *Reimagining Our Futures Together: A New Social Contract for Education*.
6. World Bank. (2020). *The COVID-19 Pandemic: Shocks to Education and Policy Responses*.
7. भारत सरकार. *डिजिटल इंडिया कार्यक्रम*.
8. भारत सरकार. *स्वयं (SWAYAM) पोर्टल*.
9. भारत सरकार. *दीक्षा (DIKSHA) मंच*.
10. भारत सरकार. *राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI)*.
11. Dey, B., & Panda, B. N. (2026). *Understanding the Role of Digital Technologies in Transforming Educational Practices and Evaluation Methods: An NEP 2020 Perspective*. International Journal of Management and Development Studies. DOI: **10.53983/ijmds.v15n04.006**
Link: https://ijmds.in/index.php/IJMDS/article/view/52
12. Binjola, A., & Sharma, K. (2026). *Digital Transformation in Indian Education: A Systematic Review of NEP 2020 Initiatives, Challenges, Impacts, and Enhancement Strategies*. IJFMR.
Link: https://www.ijfmr.com/research-paper.php?id=80397
13. Singh, S. (2026). *A Study of the Role of the National Education Policy 2020 in Digital Education*. International Journal of Research - GRANTHAALAYAH. DOI: **10.29121/granthaalayah.v14.i6.2026.7013**
Link: https://granthaalayahpublication.org/journals/granthaalayah/article/view/7013
14. Pushpanadham, K. (2019). *Massive Open Online Courses: The Emerging Landscape of Digital Learning in India*. UNESCO International Institute for Educational Planning.
Link: https://www.iiep.unesco.org/en/publication/massive-open-online-courses-emerging-landscape-digital-learning-india
15. Jha, J., & Harichandan, D. (2022). *MOOCs in India and SWAYAM: An Overview*. Indian Journal of Educational Technology.
Link: https://journals.ncert.gov.in/IJET/article/view/497

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

नाट्य विधा में संगीत तत्व : एक अवलोकन

अर्चना कुशवाहा, शोधार्थी,
प्रो. किन्शुक श्रीवास्तव, शोध निर्देशिका,
मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

भारतीय संगीत की अति समृद्धि परंपरा के अंतर्गत पारंपरिक रूप से दो धाराएं हमेशा से विद्यमान रही हैं, जिनमें वैदिक संगीत तथा लौकिक संगीत प्रमुख रहे हैं। वैदिक संगीत अनादि, अपौरुषेय, अत्यंत पवित्र, व्यवस्थित नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय था जबकि लौकिक संगीत को मनुष्य ने अपने रस रंजन एवं मनोरंजन के लिए निर्मित किया था तथा इसमें लोक रुचि के आधार पर परिवर्तन की गुंजाइश थी और हमेशा से रही है। जब नाटक एवं रंगमंच की बात होती है तब भरतमुनी कृत नाट्यशास्त्र ग्रंथ का ध्यान जरूर आता है क्योंकि यही वह ग्रंथ है जिसमें नाट्य और संगीत की सर्वप्रथम चर्चा की गई है और इस ग्रंथ को नाटक एवं संगीत के आधार ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस ग्रंथ में भरत मुनि ने नाट्य और संगीत की चर्चा एक साथ नहीं की है। व्यवहारिक दृष्टिकोण से नाट्य शब्द का प्रयोग इस ग्रंथ में व्यापक रूप से किया गया है जिसकी अपनी एक मर्यादा है। यहां नाट्य का तात्पर्य केवल नाटक (रंगमंच) अथवा रंगकर्म से ही नहीं बल्कि इसके अंतर्गत समाहित रंग, कला, वास्तु, अभिनय, रस, छंद, संगीत, अलंकार, वेशभूषा, रंगशिल्प, उपस्थान, पात्र और दर्शक–समाज इत्यादि सभी से है। नाटक के इन सभी तत्वों का आधार नाट्यशास्त्र ही है। इस संदर्भ को नाट्यशास्त्र के अंतर्गत प्रमाणित भी किया गया है, जिसके अनुसार :

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।
(ना. शा. 1/116)

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रव्य अथवा दृश्य रूप से प्राप्त शिल्प, ज्ञान, विद्या, कला, योग तथा सत्कर्म इत्यादि सभी कौशलों में कहीं ना कहीं नाट्य अवश्य दृष्टिगोचर होता है अर्थात रंगमंच अथवा नाटक के बिना इन सभी तत्वों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बहुधा लोग ग्रंथ के शीर्षक नाट्यशास्त्र को सुनकर अनुमान लगा लेते हैं कि यह ग्रंथ केवल नाटक का ही शास्त्र है परंतु वास्तविकता यह है कि नाट्यशास्त्र कला, साहित्य एवं प्रमुख रूप से संगीत का आदि ग्रंथ है, भले ही वह स्वतंत्र ना होकर नाटक के रूप में मान्य है। नाट्यशास्त्र को पंचम वेद भी कहा गया है।

नाट्य और संगीत के गहरे संबंध के महत्व एवं उपयोगिता को बताते हुए भरत मुनि ने कहा है कि –

गीते प्रयत्नः प्रथमस्तु कार्यः, शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।

गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते, नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति।।

अर्थात 'गीत 'नाट्य का ऐसा आधार है जिसमें रंगकर्मी को नाटक से पहले गीत में परिश्रम करना चाहिए।

जिस प्रकार श्रम करने वाला मजदूर थोड़ी देर आराम करने के बाद स्वयं को ऊर्जावान महसूस करता है तथा अपने श्रम को सुचारू रूप से कार्यान्वित करता है, ठीक इसी प्रकार नाट्य में गीत–संगीत ऐसी विश्रांति का कार्य करता है जिससे नाटक में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हो पाती है और नाटक सुचारू रूप से कार्यान्वित होता रहता है।

संगीत के गीत एवं वाद्य समग्र रूप से नाटक के विविध प्रसंगों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, नाट्य में संगीत के इस योगदान की प्रशंसा के संदर्भ में भरत मुनि ने कहा है कि –

''यानि वाक्येस्तु न बरियात तानी गीतैरुदाहरेत।।''

तात्पर्य है कि नाटक के अंतर्गत किसी प्रसंग के संवादों को जब व्यक्त नहीं किया जा सकता हैं तो उसे स्वर, लय, ताल छंद तथा पद के माध्यम से आसानी से प्रभावपूर्ण तरीके से कहा जा सकता है। हमारे भारतीय चिंतन में संगीत को 'स्वरतालपदात्मक' की संज्ञा दी गई है अर्थात स्वर, लय, पद इत्यादि संगीत के ऐसे उपकरण है जो अत्यंत ही अमूर्त एवं गतिशील होते हैं इनका विस्तृत, सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक विवेचन सभी शास्त्रकारों के वर्णित विषय रहे हैं। संगीत के मनीषियों ने गीत, वाद्य तथा नृत्य में सम्यक रूप से गीत को प्रधान माना है।

संगीत का मानव समाज में उपयोग जिस प्रकार वर्तमान में अनुकूल रहा है। उसी प्रकार वैदिक काल से भारत काल तक इसका प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ, जैसा कि आज हो रहा है अर्थात् वैदिक संगीतकाल के पश्चात वैदिकोत्तर काल में नाटक के प्रयोजन से संगीत का विवरण प्राप्त है जिसका उल्लेख हमें वैदिकोत्तर काल के ब्रह्मभरत द्वारा रचित 'ब्रह्मभरतम्' ग्रंथ में प्राप्त होता है, जिसमें नाटक के लिए गीत, वाद्य, नृत्य रूपी संगीत को गंधर्व की संज्ञा दी गई है। इस ग्रंथ के समय काल के बाद उपरोक्त विषयों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में भी मिलता है।

अतः आरंभ काल से ही संगीत विधा से संबंध गंधर्व, गान और संगीत में प्रयोग किए जाते रहे हैं और इनका संबंध नाटक (रंगमंच) से जोड़ा जाता रहा है। इस दृष्टिकोण से भरत का नाट्यशास्त्र नाटक और संगीत दोनों कलाओं का सर्वश्रेष्ठ एवं आदिग्रंथ माना गया है। नाट्यशास्त्र में कुल 36 अध्याय हैं जिसमें भरतमुनि ने नाट्य में प्रयुक्त होने वाले सभी विषयों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है, नाट्यशास्त्र में छः अध्याय 28 से 33 पूर्ण रूप से संगीत से संबंधित है। अतः नाटक का संगीत से गहरा संबंध है। नाटक में यदि हम संगीत की बात करें तो चाहे वह ध्रुवा हो या फिर गीतिका इनका प्रयोग मुख्य रूप से नाटक में ही होता आ रहा है। ध्रुवा गान हमेशा से रस एवं भाव से परिपूर्ण गान रहा है। नाट्य की विभिन्न परिस्थितियों को रसानुभूति कराकर उन परिस्थितियों को तीव्र बनाने अथवा पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए जिन छंदोबद्ध गीतों का प्रयोग नाटक के भीतर किया जाता है वह ध्रुवा गान कहलाते हैं।

गीतकों के विविध अंगों का इनमें प्रयोग होने के कारण यह गीतक से भी संबद्ध है। नाटक के पूर्व रंग में गीतक का प्रयोग होता है। गीतक एक प्रकार का गीत है जो मुख्य रूप से नाटक में ही प्रयोग होता था। नाटक शुरू होने से पहले मंच के ऊपर पर्दा खोलने के बाद गीतक का प्रयोग होता था। इस तथ्य को नाटक में संगीत की उपयोगिता व महत्व को दर्शाता है। संगीत के प्रयोग से नाट्य (रंगमंच) और भी बोधगम्य और सरस बन जाता

है। संगीत के बिना नाटक को संपूर्णता नहीं मिलती है इसलिए भरत ने नाट्यशास्त्र में जगह–जगह संगीत की चर्चा की है भले ही वह स्वतंत्र ना होकर नाटक के संदर्भ में है।

प्राचीन नाटकों में संगीत वाद्य का बहुत महत्व हुआ करता था यही वजह रही है कि पूर्वरंग के अंतर्गत संगीत वाद्यों की पूरी तैयारी कर ली जाती थी जिसके फलस्वरूप नाटक में कोई आशंका नहीं रह पाती थी और जिसका परिणाम निश्चय रूप से अच्छा होता था, ऐसा माना जाता है कि भरत ने नाट्यशास्त्र में नाटक का प्रारंभ पूर्वरंग के रूप में बताया है जिसके अंतर्गत गीतक का प्रयोग किया गया है तथा जिसमें नंदीपाठ, देवद्विज वंदना, राष्ट्र की उन्नति तथा देवों के अनुग्रह आदि के लिए प्रार्थना की जाती है। नाट्य के समारंभ से जुड़ा होने के कारण इसे पूर्व रंग कहते हैं। यद्यपि भरतमुनी प्रणीत नाट्यशास्त्र के नाट्य संदर्भित 36 अध्याय में ऐसा एक भी अंग नहीं है जहां संगीत का प्रयोग ना हुआ हो। यद्यपि इस ग्रंथ का 6 अध्याय (28–33) पूर्ण रूप से संगीत से प्रभावित है भरतकालीन नाट्यशास्त्र में गंधर्व का अनिवार्य स्थान रहा है जो हमारे आज के संगीत का पर्याय है। नाटक में संगीत के गान के लिए महिलाओं को उपयुक्त माना जाता था। नाट्य में संगीत की भूमिका निभाने वाली स्त्री या पुरुष का कंठ सुमधुर तथा लय तालज्ञ होना आवश्यक था। नाटक अथवा रंगमंच में जितना संगीत का महत्व है उतना ही रस का भी अपना महत्व है नाट्य शब्द का प्रधान अर्थ ही रस है तथा भाव के अभिनय संयुक्त रूप से रस परिपक्व होता है। प्रत्येक रस का विशिष्ट भाव से संबंध आवश्यक होता है, इसलिए आठ स्थाई भाव के आधार पर रसों की संख्या भी विद्वानों ने 8 बताई है जो नाटक का अनिवार्य तत्व है। इसके बिना नाटक का कोई भी अंग सार्थक नहीं हो सकता।

वास्तव में जब नाट्य के प्रयोग में रस–भाव के संचार की साधना हो, तो गीत और वाद्य ही रागात्मकता को संदीपित करते हैं तथा नाट्य प्रयोग की रस्वता को उभारते हैं। अतः गीत तथा वाद्य नाट्य में रस–भाव के संचरण हेतु अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं जिससे नाट्य अपनी सार्थकता सिद्ध करने में समर्थ हो जाता है।

निष्कर्ष :

नाटक की रचना आदिकाल से मिश्रित कला के रूप में होती आ रही है क्योंकि नाटक में सदैव ही नृत्य–संगीत की अधिकता एवं उपयोगिता रही है। नाटक विश्व की सभी भाषाओं में प्राथमिक और सर्वाधिक सशक्त विधा के रूप में परिवर्तित हुआ है। आज भी नाटक से अधिक सम्मोहक जटिल सामाजिक और जीवंत कोई दूसरी विद्या एवं कला नहीं है। समाजिक व्यवस्था राष्ट्रहित और सबसे बढ़कर मानवता की प्रतिस्थापना के लिए सदैव से ही नाट्य अपना सक्रिय योगदान देता रहा है अथवा चतुर्विद अभिनय द्वारा मनुष्य जीवन के अनुकरण का रसबोध कराकर नाट्य विद्या में मनुष्य की कलात्मकता को ऊंचा उठाना ही नाट्य (रंगमंच) का मूल उद्देश्य है।

आज नाटक अपनी प्राचीन सर्वश्रेष्ठ विधा के रूप में विकसित होकर अनेक परिवर्तन एवं परिवर्धन के लिए आधुनिकता की ओर अग्रसित हुआ है और उसमें संगीत की अनिवार्यता एवं महत्ता सदैव बनी रही है। इसलिए नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में विभिन्न देवताओं द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के उपकरण प्रदान करने का उल्लेख है। इसी प्रकार ब्रह्मा ने भी वेदों को ग्रहण कर नाट्य को मिश्रित कला के रूप में उपस्थित किया जिसमें समस्त ज्ञान, शिल्प, विधा तथा कलाएं प्रमुखतः सम्यक संगीत उपस्थित है जो नाट्य का मूल आधार अथवा प्राण हैं। अतः हम कह सकते हैं कि रंगमंच अथवा नाटक का संगीत से जन्म–जन्मान्तर से ही गहरा एवं प्रभावशाली संबंध रहा है। संगीत के अभाव में नाटक की कल्पना नहीं की जा सकती और उसका

कोई अस्तित्व भी नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शास्त्री, श्री मधुसूदन, नाट्यशास्त्रम प्रथम भाग, एम. ए. एक्स. डी .फैकल्टी ऑफ द ओरिएंटल लर्निंग, का. हिं. वि. वि. वाराणसी।
2. द्विवेदी, डॉ. पारसनाथ, नाट्यशास्त्र प्रथम भाग, मनोरमा हिंदी व्याख्या, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।
3. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, रंगमंच और नाट्य की भूमिका, नेशनल पब्लिसिंग हाउस दिल्ली।
4. चटर्जी, गौतम, संगीत विमर्श, भरत (भाद्र) पूर्णिमा, 2009 वाराणसी।
5. वालिया, डॉ. दीपिका, संगीत कला के विविध आयाम, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पाटिल मनोज, भारतीय रंगमंच की परंपरा, रोहित पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2013

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय दर्शन और सतत जीवन शैली

उषा रानी
शोधार्थी, मानविकी विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची।

भारतीय दर्शन केवल आध्यात्मिक चिंतन या मोक्ष की साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन नैतिकता करुणा संयम और सह–अस्तित्व का संदेश देता है। वैदिक साहित्य, उपनिषद्, भगवतगीता, बौद्ध एवं जैन दर्शन तथा अन्य भारतीय दार्शनिक परंपराएं मनुष्य और प्रकृति के विभिन्न संबंध को स्वीकार करती है।

आज संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित सतत विकास की अवधारणा जिस संतुलित जीवन शैली की बात करती है, उसका मूल स्वर भारतीय दर्शन में प्राचीन काल से विद्यमान है। भारतीय संस्कृति का संदेश है कि विकास का अर्थ केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि प्रकृति, समाज और मानव जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित करना भी है। इस दृष्टि से भारतीय दर्शन सतत जीवन शैली का दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

भारतीय दर्शन का स्वरूप :–

दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के "दृश्" धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है – सत्य का साक्षात्कार करना। भारतीय दर्शन का उद्देश्य केवल बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं बल्कि जीवन के परम सत्य का अनुभव करना तथा उसके अनुरूप आचरण करना है। भारतीय दर्शन का मूल आधार वेद उपनिषद भागवतगीता तथा अन्य प्राचीन ग्रंथ हैं। इन ग्रंथो में जीवन, जगत, आत्मा, परमात्मा, कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष जैसे गूढ़ विषयों का सविस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय दार्शनिक परंपरा का मत है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप आत्मा है, जो अमर और शाश्वत है।

भारतीय दर्शन को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है – आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन।

- **आस्तिक दर्शन वे होते हैं जो वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करते हैं :–**
  - न्याय
  - वैशेषिक
  - सांख्य
  - योग
  - पूर्व मीमांसा
  - वेदांत।
- **नास्तिक दर्शन वे हैं जो वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करते हैं :–**
  - बौद्ध दर्शन
  - जैन दर्शन
  - चार्वाक दर्शन।

- **न्याय दर्शन :–** तारक प्रमाण और विवेक पूर्ण ज्ञान पर बल देता है। इसके अनुसार सत्य ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है और मनुष्य उचित निर्णय लेने में सक्षम बनता है। आज पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता है इसलिए न्यायदर्शन की प्रासंगिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- **वैशेषिक दर्शन :–** प्रकृति के मूल तत्वों का विश्लेषण करता है। यह दर्शन बताता है कि प्रकृति का प्रत्येक तत्व महत्वपूर्ण है और उसका अपना अस्तित्व एवं उपयोगिता है।
- **सांख्य दर्शन :–** प्रकृति और पुरुष के सिद्धांत पर आधारित है। इसके अनुसार प्रकृति समस्त भौतिक जगत का आधार है, जबकि पुरुष चेतन सत्ता है।
- **योग दर्शन :–** महर्षि पतंजलि को योग दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने बताया कि योग के माध्यम से व्यक्ति आत्मसंयम, अनुशासन और संतुलित जीवन को प्राप्त कर सकता है।
- **पूर्व मीमांसा दर्शन :–** कर्तव्य, यज्ञ और धर्म पर बल देता है।
- **वेदांत दर्शन :–** भारतीय दर्शन का अत्यंत प्रभावशाली स्वरूप है। आदि–शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के अनुसार ब्रह्मा ही परम सत्य है और समस्त सृष्टि उसी की अभिव्यक्ति है।
- **बौद्ध दर्शन :–** मध्यम मार्ग, करुणा, मैत्री और अहिंसा पर आधारित है। गौतम बुद्ध ने अति भोग और अति तप दोनों का त्याग कर संतुलित जीवन का मार्ग बताया है।
- **जैन दर्शन :–** अहिंसा और अपरिग्रह का सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैन धर्म प्रत्येक जीव में जीवन का सम्मान करना तथा अनावश्यक उपभोग और संग्रह का विरोध करता है।
- **चार्वाक दर्शन :–** भारतीय दर्शनों में एकमात्र दर्शन है जो अनुमान को प्रमाण नहीं मानता। वह प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानता है।

सतत जीवन शैली की अवधारणा एवं भारतीय दृष्टिकोण :

सतत जीवन शैली का अर्थ ऐसी जीवन पद्धति से है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलित विवेकपूर्ण और उत्तरदायित्व ढंग से किया जाए ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ भविष्य की पीढ़ियों के अधिकार भी सुरक्षित रहे।

सतत विकास और भारतीय दृष्टि :–

सतत विकास का अर्थ है – ऐसा विकास जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करें, किंतु भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता न करे। भारतीय दर्शन इसी संतुलन का समर्थन करता है। यहां विकास का अर्थ केवल आर्थिक उन्नति नहीं बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय संतुलित भी है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य का उद्देश्य गरीबी उन्मूलन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वच्छ जल, स्वच्छ ऊर्जा, लैंगिक समानता, जलवायु संरक्षण तथा सतत उपभोगग को बढ़ावा देना है। यद्यपि इन लक्षणों का मूल भाव भारतीय दर्शन में पहले से विद्यमान है।

सर्वे भवंतु सुखिनः।
वसुधैव कुटुंबकम्।
लोकाः समस्ता सुखिनो भवंतु।

भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांत एवं सतत जीवन शैली :

भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल सैद्धांतिक चिंतन तक सीमित नहीं है बल्कि जीवन के व्यावहारिक पक्ष को भी दिशा प्रदान करता है। इसके मूल सिद्धांत–अहिंसा, अपरिग्रह, वसुधैव कुटुंबकम्, धर्म तथा संयम – आज की सतत जीवन शैली के आधारभूत मूल्य हैं। यदि इन सिद्धांतों को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अपनाया जाए तो पर्यावरणीय संकट संसाधनों का असमान वितरण तथा सामाजिक असंतुलन जैसी अनेक समस्याओं का समाधान संभव है।

1. **अहिंसा : प्रकृति और समस्त जीवों के प्रति संवेदनशीलता :**

भारतीय दर्शन में अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक मूल्य माना गया है।

महावीर स्वामी का कथन है :–

"अहिंसा परमो धर्मः"।

2. **वसुधैव कुटुंबकम् : वैश्विक सह अस्तित्व की भावना :**

महा उपनिषद का प्रसिद्ध वाक्य :–

"वसुधैव कुटुंबकम्"।

अर्थात अर्थात संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार है।

"सर्वे भवंतु सुखिनः"।

अर्थात समस्त जीव सुखी हो।

उपसंहार :

भारतीय दर्शन केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक व्यावहारिक एवं मानवीय जीवन–दृष्टि प्रदान करता है। इसके मूल सिद्धांत–अहिंसा, अपरिग्रह, वसुधैव कुटुंबकम्, धर्म तथा योग सतत जीवन शैली के दार्शनिक और व्यावहारिक आधार है। यह सिद्धांत व्यक्ति को संतुलित उपभोग, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रेरणा देते हैं। यदि भारतीय जीवन–मूल्यों को आधुनिक जीवन में अपनाया जाए तो सतत जीवन शैली का लक्ष्य अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन न केवल भारत के लिए बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए एक स्थायी संतुलित और मानवीय जीवन का मार्गदर्शन सिद्ध होगा।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

वैदिक काल से वर्तमान तक : वायु प्रदूषण की रोकथाम के उपाय और उनकी प्रासंगिकता

Dr. Shivkaran Nimal
Assistant Professor
SPC Govt. College Bhim Rajasamand.

सारांश –

मनुष्य ने अपने विकास के चरण चिन्हों पर अनेक गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं को उत्पन्न किया है। उन समस्याओं में औद्योगीकरण, नगरीकरण, वाहनों की संख्या में वृद्धि तथा जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग के कारण वायु की गुणवत्ता निरंतर गिर रही है। भारत में वैदिक परम्परा में प्रकृति एवं पर्यावरण के संरक्षण को धर्म, संस्कृति और जीवन–पद्धति का अभिन्न अंग माना है। हमारे वैदिक कालीन ऋषियों ने वायु को केवल जीवनदायिनी शक्ति ही नहीं, बल्कि देवतुल्य माना है। चारों वेदों एवं उपनिषदों में वायु की शुद्धता बनाए रखने, वृक्षारोपण, यज्ञ, वन संरक्षण तथा संतुलित जीवनशैली जैसे अनेक उपायों का उल्लेख मिलता है।

यह शोध–पत्र वैदिक काल से वर्तमान समय तक वायु प्रदूषण की रोकथाम के उपायों का अध्ययन करता है तथा उनकी वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक विज्ञान और वैदिक ज्ञान का समन्वय सतत विकास एवं स्वच्छ पर्यावरण के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुख्य शब्द : वायु प्रदूषण, यज्ञ, वृक्षारोपण, पंचमहाभूत, भारतीय ज्ञान परम्परा।

1. प्रस्तावना :

'वायु' पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) में एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। इस संसार में जीव–जगत का अस्तित्व शुद्ध वायु पर निर्भर करता है। मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पतियाँ तथा सूक्ष्म जीव सभी श्वसन क्रिया के माध्यम से वायु से जीवन प्राप्त करते हैं। यदि वायु शुद्ध एवं संतुलित हो तो पर्यावरण स्वस्थ रहता है, किन्तु जब इसमें हानिकारक गैसों, धूलकणों तथा विषैले रासायनिक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है, तब वह प्रदूषित होकर मानव स्वास्थ्य, जैव विविधता तथा संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के लिए गंभीर संकट उत्पन्न करती है। इस प्रकार वायु केवल जीवन का आधार ही नहीं, बल्कि पृथ्वी पर पर्यावरणीय संतुलन की प्रमुख धुरी भी है।

वर्तमान युग में तीव्र औद्योगीकरण, अनियंत्रित नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक

उपयोग, वाहनों की बढ़ती संख्या, निर्माण कार्यों से उत्पन्न धूल तथा कृषि अवशेषों (पराली) के दहन के कारण वायु प्रदूषण वैश्विक समस्या का रूप ले चुका है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वायु प्रदूषण प्रतिवर्ष लाखों लोगों की असामयिक मृत्यु का कारण बनता है। भारत के अनेक महानगरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक कई बार श्बहुत खराबश अथवा श्गंभीरश श्रेणी में पहुँच जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, फेफड़ों का कैंसर, हृदय रोग, एलर्जी, आँखों में जलन तथा अन्य श्वसन संबंधी रोगों की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है। इतना ही नहीं, वायु प्रदूषण जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, अम्लीय वर्षा तथा जैव विविधता के ह्रास जैसी वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों को भी बढ़ावा देता है।

यद्यपि वायु प्रदूषण आधुनिक युग की एक जटिल समस्या के रूप में सामने आया है, तथापि भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण का विचार अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण रहा है। वैदिक साहित्य में वायु को केवल एक भौतिक तत्व नहीं, बल्कि जीवनदायिनी शक्ति तथा देवस्वरूप माना गया है। ऋषियों ने वायु की पवित्रता, शुद्धता तथा संतुलन को मानव जीवन, स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य माना। यही कारण है कि ऋग्वेद में वायु के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा गया है–

'वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।'

(ऋग्वेद 10.186.1)

अर्थात्– हे वायु! तुम औषधि के समान हमारे लिए कल्याणकारी बनो, हमारे हृदय को सुख, शांति तथा स्वास्थ्य प्रदान करो।

यह मंत्र स्पष्ट करता है कि वैदिक ऋषि वायु को केवल श्वसन का साधन नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, आरोग्य एवं जीवन–शक्ति का मूल स्रोत मानते थे। वैदिक समाज में पर्यावरण संरक्षण केवल सामाजिक दायित्व नहीं था, बल्कि धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक आचरण का अभिन्न अंग था। वृक्षारोपण, वन संरक्षण, यज्ञ, औषधीय वनस्पतियों का संवर्धन तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग जैसी परम्पराएँ इसी पर्यावरणीय चेतना का परिणाम थीं।

वर्तमान समय में जब सम्पूर्ण विश्व स्वच्छ वायु, जलवायु परिवर्तन और सतत विकास जैसी चुनौतियों का समाधान खोज रहा है, तब भारतीय वैदिक ज्ञान परम्परा के पर्यावरणीय सिद्धान्त पुनः अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के साथ वैदिक पर्यावरण–दृष्टि का समन्वय स्थापित किया जाए, ताकि मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित एवं सह–अस्तित्व पर आधारित विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध–पत्र 'वैदिक काल से वर्तमान तक : वायु प्रदूषण की रोकथाम के उपाय और उनकी प्रासंगिकता' विषय का अध्ययन करते हुए वैदिक साहित्य में वर्णित वायु संरक्षण संबंधी सिद्धान्तों एवं उपायों का विश्लेषण करता है तथा वर्तमान पर्यावरणीय परिस्थितियों में उनकी उपयोगिता और प्रासंगिकता का सम्यक् मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

2. शोध के उद्देश्य –

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. वैदिक साहित्य में वायु संरक्षण संबंधी विचारों का अध्ययन।
2. वैदिक कालीन वायु शुद्धिकरण उपायों का विश्लेषण।

3. शोध पद्धति :

यह शोध मुख्यतः गुणात्मक (Qualitative Research) एवं वर्णनात्मक (Descriptive Research) पद्धति पर आधारित है। इस हेतु वेदों, उपनिषद, मनुस्मृति, पर्यावरण विज्ञान संबंधी शोध, WHO एवं CPCB की रिपोर्टें, भारतीय ज्ञान परम्परा सम्बन्धी पुस्तकें प्रमुख रूप से उपयोगी रही है।

4. वैदिक काल में वायु का स्वरूप :

वैदिक साहित्य में वायु को जीवन का आधार माना गया है।

ऋग्वेद में कहा गया–

'वायुरनिलममृतम्।'

अर्थात्– वायु अमृत के समान जीवन प्रदान करने वाली है।

उपनिषदों में प्राण एवं वायु को एक–दूसरे का पर्याय माना गया है।

छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि समस्त इन्द्रियों में वायु सर्वोच्च है क्योंकि उसके बिना जीवन संभव नहीं।

5. वैदिक काल में वायु प्रदूषण रोकने के उपाय

(क) यज्ञ द्वारा वायु शुद्धिकरण :

वैदिक समाज में यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि पर्यावरण संरक्षण का माध्यम था।

यज्ञ में प्रयुक्त घृत, गूगल, चन्दन, कपूर, औषधीय वनस्पतियाँ वातावरण में सुगन्धित एवं रोगाणुनाशक तत्वों का प्रसार करती थीं।

(ख) वृक्षारोपण :

वैदिक संस्कृति में वृक्षों को देवतुल्य माना गया। अथर्ववेद में पृथ्वी एवं वनस्पतियों की रक्षा का विशेष उल्लेख है। पीपल, वट, नीम, अशोक, बेल आदि वृक्षों का संरक्षण धार्मिक कर्तव्य माना गया। आज वैज्ञानिक रूप से सिद्ध है कि वृक्ष– कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करते हैं, ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, धूल कण रोकते हैं और तापमान नियंत्रित करते हैं।

(ग) वन संरक्षण :

वैदिक काल में वन केवल लकड़ी का स्रोत नहीं बल्कि जीवन के आधार थे। आश्रम संस्कृति जंगलों में विकसित हुई। जिसमे अत्यधिक वृक्ष कटाई को अनुचित माना गया।

(घ) संतुलित जीवन शैली :

वैदिक समाज आवश्यकता आधारित उपभोग में विश्वास करता था। अत्यधिक उत्पादन एवं उपभोग को प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। इसी कारण प्रदूषण न्यूनतम था।

(ङ) पंचमहाभूत सिद्धान्त :

मानव और प्रकृति को एक ही तत्वों से निर्मित माना गयाकृ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। इनमें संतुलन बनाए रखना मनुष्य का धर्म माना गया।

6. वर्तमान समय में वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण :

आज वायु प्रदूषण के मुख्य कारण हैं– औद्योगीकरण, कारखानों से निकलने वाली गैसें— SO_2, NO_2, CO वायु को प्रदूषित करती हैं। वाहनों की संख्या बढ़ने से कार्बन मोनोऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड निकलते

हैं, जिनसे निरंतर प्रदुषण बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त पराली जलाना जो कि उत्तर भारत में यह गंभीर समस्या बन चुकी है।

अन्धाधुन्ध जंगलो की कटाई और जीवाश्म ईंधन भी इसमें शामिल है।

7. वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव :

इससे मनुष्यों अनेक बीमारियाँ बढ़ रही है, जैसे – अस्थमा, फेफड़ों का कैंसर, ब्रोंकाइटिस, हृदय रोग आदि। वायु प्रदुषण से अम्लीय वर्षा, ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के खतरे बढ़ रहे है।

8. आधुनिक रोकथाम के उपाय :

इस समस्या के अनेक समाधान है जिनमे शामिल है – इलेक्ट्रिक वाहन, सौर ऊर्जा, हरित ऊर्जा, सार्वजनिक परिवहन, ग्रीन बिल्डिंग, औद्योगिक उत्सर्जन नियंत्रण, वृक्षारोपण अभियान, स्वच्छ ईंधन और जन–जागरूकता. एक पेड़ माँ के नाम अभियान भी इसी दिशा में कार्य कर रहा है।

9. वैदिक एवं आधुनिक उपायों का तुलनात्मक अध्ययन :

नीचे तालिका में वैदिक कालीन उपायों और उनके वर्तमान में प्रयासों को दर्शाया गया है।

वैदिक उपाय	आधुनिक रूप
यज्ञ	वायु शोधन एवं जैविक शोध
वृक्ष पूजा	वृक्षारोपण अभियान
वन संरक्षण	वन अधिनियम
संतुलित उपभोग	सतत विकास
पंचमहाभूत सिद्धान्त	पारिस्थितिकी विज्ञान
प्रकृति पूजन	पर्यावरण नैतिकता

10. वर्तमान समय में वैदिक उपायों की प्रासंगिकता :

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व वायु प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, ओजोन परत के क्षरण तथा जैव विविधता के ह्रास जैसी गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals—SDGs), विशेष रूप से लक्ष्य 3 (अच्छा स्वास्थ्य एवं कल्याण), लक्ष्य 11 (सतत नगर एवं समुदाय), लक्ष्य 13 (जलवायु कार्रवाई) तथा लक्ष्य 15 (स्थलीय पारिस्थितिकी का संरक्षण), इन समस्याओं के समाधान हेतु वैश्विक स्तर पर सामूहिक प्रयासों पर बल देते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि जिन सिद्धांतों को आज आधुनिक पर्यावरण विज्ञान और सतत विकास की आधारशिला माना जा रहा है, उनका मूल भाव भारतीय वैदिक परम्परा में हजारों वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित किया जा चुका था।

वैदिक साहित्य में प्रकृति को केवल संसाधन (Resource) नहीं, बल्कि जीवनदाता एवं पूजनीय सत्ता के रूप में देखा गया है। अथर्ववेद का प्रसिद्ध मंत्र –

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

(अथर्ववेद 12.1.12)

अर्थात्– 'पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।'

यह मंत्र मानव और प्रकृति के मध्य अत्यंत गहरे आत्मीय संबंध को व्यक्त करता है। यदि पृथ्वी हमारी माता है, तो उसकी वायु, जल, वन, पर्वत तथा समस्त प्राकृतिक संपदा का संरक्षण करना प्रत्येक मानव का नैतिक

एवं सामाजिक दायित्व बन जाता है। इस दृष्टिकोण में पर्यावरण संरक्षण केवल वैज्ञानिक आवश्यकता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्य और नैतिक कर्तव्य भी है।

वैदिक संस्कृति का मूल आधार 'सह–अस्तित्व' (Co-existence) है। इसमें मानव को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग माना गया है। यही कारण है कि वैदिक ऋषियों ने वृक्षों, नदियों, पर्वतों, वनस्पतियों तथा वायु के प्रति श्रद्धा का भाव विकसित किया। यह श्रद्धा अंधविश्वास नहीं थी, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का एक प्रभावी सामाजिक एवं सांस्कृतिक माध्यम थी। आज जब अंधाधुंध औद्योगीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावादी जीवनशैली के कारण पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है, तब वैदिक सह–अस्तित्व की अवधारणा पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गई है।

वायु प्रदूषण की रोकथाम में वृक्षारोपण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक काल में पीपल, वट, नीम, अशोक, बेल आदि वृक्षों को धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया गया, जिसके परिणामस्वरूप उनका संरक्षण स्वाभाविक रूप से होता था। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान भी यह सिद्ध करते हैं कि वृक्ष कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण कर ऑक्सीजन का उत्सर्जन करते हैं, वायुमंडल में उपस्थित धूलकणों को कम करते हैं, तापमान को नियंत्रित रखते हैं तथा जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार वैदिक वृक्ष–संरक्षण की परम्परा आज के जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

इसी प्रकार वैदिक जीवनशैली में संयमित उपभोग, आवश्यकता आधारित संसाधन उपयोग तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को विशेष महत्व दिया गया। आधुनिक समय में बढ़ता उपभोक्तावाद, अत्यधिक ऊर्जा खपत तथा प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन पर्यावरणीय संकट के प्रमुख कारण हैं। यदि वैदिक सिद्धांतों के अनुसार संतुलित एवं उत्तरदायी जीवनशैली अपनाई जाए, तो प्रदूषण के स्तर में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है।

वैदिक साहित्य में यज्ञ का भी विशेष महत्व बताया गया है। पारंपरिक दृष्टि से यज्ञ का उद्देश्य वातावरण की पवित्रता, सामाजिक समरसता तथा मानसिक शुद्धि था। आधुनिक संदर्भ में यज्ञ के संबंध में किए गए कुछ वैज्ञानिक अध्ययनों में औषधीय सामग्री के नियंत्रित उपयोग से सीमित परिस्थितियों में जीवाणुनाशक प्रभावों की चर्चा मिलती है, यद्यपि इस विषय पर व्यापक और निर्णायक वैज्ञानिक अनुसंधान अभी अपेक्षित हैं। इसलिए यज्ञ की प्रासंगिकता को मुख्यतः उसके सांस्कृतिक, नैतिक, सामुदायिक तथा पर्यावरण–जागरूकता संबंधी पक्षों के साथ समझना अधिक उपयुक्त है।

वर्तमान समय में भारत सहित अनेक देशों में वृक्षारोपण अभियान, हरित ऊर्जा का उपयोग, कार्बन उत्सर्जन में कमी, स्वच्छ ईंधनों को बढ़ावा, प्लास्टिक पर नियंत्रण तथा पर्यावरण शिक्षा जैसी पहलें की जा रही हैं। यदि इन प्रयासों के साथ भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित प्रकृति–सम्मत जीवन–दर्शन, संयम, कर्तव्यबोध तथा पर्यावरणीय नैतिकता को भी जोड़ा जाए, तो पर्यावरण संरक्षण अधिक प्रभावी एवं जनभागीदारी आधारित बन सकता है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि वैदिक उपाय केवल ऐतिहासिक या धार्मिक परम्पराएँ नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु मूल्य–आधारित एवं व्यवहारिक दिशा प्रदान करते हैं। आधुनिक विज्ञान की तकनीकी उपलब्धियों और वैदिक ज्ञान परम्परा के नैतिक एवं पारिस्थितिक सिद्धांतों का समन्वय ही स्वच्छ वायु, स्वस्थ पर्यावरण तथा सतत विकास की दिशा में एक सुदृढ़ और दीर्घकालिक समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

11. सुझाव –

पर्यावरण को संतुलित रखना, उसे बचाए रखना हम सबकी जिम्मेदारी है। इस हेतु सभी लोगों, सरकारों द्वारा निरंतर प्रयत्न किए जा रहे है। इस हेतु कुछ सुझाव निम्न प्रकार से हो सकते है –

- प्रत्येक व्यक्ति प्रति वर्ष 1 पेड़ लगाए और उसकी निरंतर देखभाल करे।
- सभी लोग अनावश्यक रूप से साधनों का प्रयोग न करे और आवश्यकता अनुसार सार्वजनिक परिवहन का अधिक उपयोग करे।
- उधोगों से जो प्रदूषण बढ़ रहा है उस पर कठोर नियंत्रण हो।
- विद्यालयों, महाविद्यालय में पर्यावरण शिक्षा अनिवार्य की जाए।
- भारतीय ज्ञान परम्परा के पर्यावरणीय सिद्धान्तों को शिक्षा में समाहित किया जाए और उनके अनुसार कार्य हो।
- हर व्यक्ति स्वच्छ ऊर्जा के महत्व को समझे और उसके उपयोग को बढ़ावा दे।
- शहरी हरित क्षेत्र का विस्तार किया जाए।

12. निष्कर्ष :

वैदिक काल में प्रकृति एवं मानव के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने पर बल दिया गया था। वायु को देवतुल्य मानकर उसकी शुद्धता बनाए रखने हेतु वृक्षारोपण, वन संरक्षण, संतुलित उपभोग, यज्ञ तथा पर्यावरणीय नैतिकता जैसे अनेक उपाय अपनाए जाते थे। वर्तमान समय में वायु प्रदूषण एक वैश्विक संकट बन चुका है, जिसके समाधान के लिए आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ–साथ भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों 'जैसे प्रकृति के प्रति सम्मान, संसाधनों का संयमित उपयोग और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व' को भी व्यवहार में लाना आवश्यक है। इस प्रकार, वैदिक दृष्टि और आधुनिक वैज्ञानिक उपायों का समन्वय स्वच्छ वायु, स्वस्थ समाज और सतत विकास की दिशा में एक प्रभावी मार्ग प्रदान कर सकता है।

संदर्भ सूची (References)

- Atharvaveda. (n.d.). *Atharvaveda*. (Original work composed c. 1500–1000 BCE).
- Bharucha, E. (2019). *Textbook of environmental studies* (3rd ed.). Universities Press.
- Central Pollution Control Board. (2024). *National air quality reports*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India.
- Chandogya Upanishad. (n.d.). *Chandogya Upanishad*. (Original work composed c. 800–600 BCE).
- Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). *Climate change 2023: Synthesis report*. IPCC.
- Manu. (n.d.). *Manusmriti*. (Original work composed c. 2nd century BCE–3rd century CE).
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2024). *Annual report 2023–24*. Government of India.
- National Green Tribunal. (2023). *Annual report 2022–23*. Government of India.
- National Mission for Clean Air. (2023). *National Clean Air Programme (NCAP): Progress*

report. Government of India.
- NITI Aayog. (2022). *State of India's environment*. Government of India.
- Oza, G. M. (2017). *Environmental studies*. McGraw Hill Education.
- Prashna Upanishad. (n.d.). *Prashna Upanishad*.
- Agveda. (n.d.). *Agveda*. (Original work composed c. 1500–1200 BCE).
- Sharma, P. D. (2021). *Ecology and environment* (14th ed.). Rastogi Publications.
- Sharma, R. K. (2018). *Environmental studies*. Atlantic Publishers & Distributors.
- Srimad Bhagavad Gita. (n.d.). *Bhagavad Gita*. (Original work composed c. 2nd century BCE).
- Tiwari, G. N. (2015). *Green energy and environment*. Narosa Publishing House.
- United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development*. United Nations.
- United Nations Environment Programme. (2023). *Emissions gap report 2023*. UNEP.
- World Health Organization. (2024). *Air pollution*. World Health Organization.
- Yajurveda. (n.d.). *Yajurveda*. (Original work composed c. 1200–800 BCE).
- Cunningham, W. P., & Cunningham, M. A. (2018). *Environmental science: A global concern* (15th ed.). McGraw-Hill Education.
- Miller, G. T., & Spoolman, S. (2019). *Living in the environment* (20th ed.). Cengage Learning.
- Odum, E. P., & Barrett, G. W. (2005). *Fundamentals of ecology* (5th ed.). Brooks/Cole.
- Singh, J. S., Singh, S. P., & Gupta, S. R. (2017). *Ecology, environmental science and conservation*. S. Chand.
- UNEP. (2022). *Global environment outlook (GEO-6)*. United Nations Environment Programme.
- World Bank. (2022). *The changing wealth of nations 2021: Managing assets for the future*. World Bank.
- Central Pollution Control Board. (2023). *National ambient air quality status and trends in India*. Government of India.
- Ministry of Statistics and Programme Implementation. (2023). *Environmental statistics, India 2023*. Government of India.

Email : shivkarannirmal@gmail.com
Mob 7597359036

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

जोधपुर जिले में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण की दिशा में गूढ़ा विश्नोइयां इको–टूरिजम क्षेत्र की भूमिका : एक प्रतीकात्मक अध्ययन

डॉ. दिलभाग
सहायक आचार्य (वि.स.यो.)
राजकीय महाविद्यालय भिनाय, अजमेर, राजस्थान।

शोध सारांश :

यह अध्ययन राजस्थान के जोधपुर जिले की लूनी तहसील में स्थित गुड़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र पर केंद्रित है, जो प्रवासी पक्षियों, वन्यजीव विविधता और विश्नोई समुदाय की पर्यावरण-संरक्षण परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र जोधपुर जिले की लूनी तहसील में, लूनी नदी के अपवाह बेसिन में स्थित एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय एवं पर्यटन स्थल है। यह अर्द्ध-शुष्क मरुस्थलीय समतल भूभाग पर 150-250 मीटर की ऊँचाई पर विस्तृत है। क्षेत्र का मुख्य पारिस्थितिक आकर्षण गूढ़ा तालाब है, जो शीत ऋतु में देशी-विदेशी प्रवासी पक्षियों विशेषकर कुरजा पक्षी तथा ब्लैकबक, चिंकारा जैसे वन्यजीवों के लिए जीवनरेखा का कार्य करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य अर्द्ध-शुष्क मरुस्थलीय क्षेत्र में इको-टूरिज़्म के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों का विश्लेषण करना है। शोध में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़े 75 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार, प्रत्यक्ष प्रेक्षण और क्षेत्रीय सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्र किए गए, जबकि द्वितीयक आंकड़े विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोतों से संकलित किए गए। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि इको-टूरिज़्म ने अतिरिक्त आय के सृजन, रोजगार के नए अवसरों, स्थानीय उत्पादों की मांग में वृद्धि, परंपरागत ज्ञान के संरक्षण, महिला सशक्तिकरण तथा सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देकर ग्रामीण

अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके साथ ही यातायात, आवास, मूलभूत सुविधाओं, जल प्रबंधन, प्रशिक्षण की कमी, संस्थागत समन्वय तथा प्रचार-प्रसार के अभाव जैसी समस्याएँ भी सामने आई हैं, जो इको-टूरिज़्म के सतत विकास में बाधक हैं।

कीवर्ड :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था, इको-टूरिज़्म, गुड़ा विश्नोइयां, सतत विकास, आजीविका विविधीकरण, सामुदायिक सहभागिता

शोध परिचय :

प्रस्तुत शोध पश्चिमी राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क मरुस्थलीय परिवेश में जोधपुर जिले में स्थित एक विशिष्ट इको-टूरिज़्म क्षेत्र के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों को समझने का प्रयास करता है। पारंपरिक रूप से जोधपुर जिले की ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन और वर्षा-आधारित आजीविका पर निर्भर रही है, किंतु बदलती जलवायु परिस्थितियों, सीमित कृषि उत्पादकता और रोजगार के अवसरों की कमी के कारण वैकल्पिक आजीविका स्रोतों की आवश्यकता लगातार बढ़ती जा रही है। ऐसे में इको-टूरिज़्म एक उभरते हुए विकल्प के रूप में सामने आया है, जो पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ स्थानीय समुदाय के लिए आय और रोजगार के नए अवसर सृजित करता है। गुड़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र अपने प्राकृतिक संसाधनों, प्रवासी पक्षियों, वन्यजीव विविधता तथा विश्नोई समुदाय की पर्यावरण-संरक्षण परंपराओं के कारण एक विशिष्ट पहचान रखता है। यह क्षेत्र न केवल पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि ग्रामीण समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना को प्रभावित करने की क्षमता भी रखता है। होम-स्टे, स्थानीय मार्गदर्शन, हस्तशिल्प, पारंपरिक भोजन, परिवहन और अन्य अनौपचारिक गतिविधियों के माध्यम से यह क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में योगदान दे रहा है।

यह शोध गुड़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र को एक प्रतीकात्मक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार इको-टूरिज़्म ग्रामीण क्षेत्रों में आय के स्रोतों का विस्तार, रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण, सामुदायिक सहभागिता तथा सांस्कृतिक-पर्यावरणीय संरक्षण को प्रोत्साहित करता है। साथ ही, अध्ययन में इको-टूरिज़्म के विकास से जुड़ी समस्याओं, संभावनाओं और भविष्य की दिशा पर भी प्रकाश डाला गया है, ताकि जोधपुर जिले सहित अन्य समान भौगोलिक क्षेत्रों में सतत ग्रामीण विकास के लिए इको-टूरिज़्म को एक प्रभावी रणनीति के रूप में अपनाया जा सके।

अध्ययन क्षेत्र :

गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र जोधपुर जिले की लूनी तहसील में लूनी नदी के अपवाह बेसिन में राजस्थान राज्य राजमार्ग संख्या 68 पर अवस्थित है। यह क्षेत्र 26° 8' 51.64" उत्तरी अक्षांश और 73° 5' 53.80" दक्षिणी देशान्तर पर अवस्थित है। इस क्षेत्र की भूगर्भिक संरचना मुख्यतः गहराई तक फैली जलोढ़ मृदा से निर्मित है, जिसके कारण यहाँ नग्न चट्टानों का अभाव पाया जाता है, यद्यपि उत्तर-पश्चिमी भाग में एरिनपुरा ग्रेनाइट एवं मालाणी समूह की अवशिष्ट चट्टानें दृष्टिगोचर होती हैं। भू-आकृतिक दृष्टि से यह क्षेत्र अर्द्ध-शुष्क मरुस्थलीय प्रदेश में स्थित एक समतल मैदान है, जहाँ औसत ऊँचाई 150 से 250 मीटर के मध्य है तथा सामान्य ढाल उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर पाई जाती है। लूनी नदी द्वारा यहाँ व्यापक जलोढ़ निक्षेप हुआ है, जिससे बालुका स्तूपों का विस्तार सीमित रहा है।

यह क्षेत्र गूढ़ा तालाब के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जो शीत ऋतु में देश-विदेश से आने वाले प्रवासी पक्षियों तथा स्थानीय वन्यजीवों के लिए प्रमुख जल स्रोत है। तालाब में जल की आवक मुख्यतः वर्षा पर निर्भर है, किंतु अल्प वर्षा की स्थिति में ग्रामीणों एवं वन विभाग द्वारा टैंकर और पाइपलाइन के माध्यम से जल पूर्ति की जाती है। वन विभाग द्वारा यहाँ इको-टूरिज़्म को प्रोत्साहित करने हेतु हाट, अवलोकन स्तंभ एवं चौकी की स्थापना की गई है। मृदा की दृष्टि से क्षेत्र में जलोढ़ एवं कंकरयुक्त मृदा पाई जाती है, जिसमें नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की कमी तथा लवणता की अधिकता है। आर्द्रता धारण क्षमता कम होने के बावजूद सिंचाई द्वारा बाजरा, दलहन एवं मूंगफली जैसी फसलें उगाई जाती हैं। प्राकृतिक वनस्पति मुख्यतः मरुस्थलीय है, जिसमें खेजड़ी, कीकर, बबूल, थोर तथा विभिन्न घासें प्रमुख हैं। खेजड़ी वृक्ष का पारिस्थितिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्व विशेष है। वन्यजीव संपदा की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है, जहाँ ब्लैकबक, चिंकारा, नीलगाय तथा अनेक प्रवासी पक्षी पाए जाते हैं। इनमें कुरजा पक्षी का विशेष महत्व है, जो प्रतिवर्ष अक्टूबर से मार्च तक यहाँ प्रवास करता है और स्थानीय संस्कृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। जलवायु की दृष्टि से यह क्षेत्र उष्ण कटिबंधीय अर्द्ध-शुष्क जलवायु वाला है, जहाँ ग्रीष्म ऋतु में तीव्र तापमान, वर्षा ऋतु में सीमित मानसूनी वर्षा तथा शीत ऋतु में शीतलहर का प्रभाव देखा जाता है।

शोध उद्देश्य :

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण पर गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र के प्रभाव का आकलन करना
2. गूढ़ा विश्नोइयां क्षेत्र में इको-टूरिज्म के विकास से जुड़ी प्रमुख समस्याओं की पहचान करना।
3. गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज्म मॉडल को अधिक टिकाऊ, समावेशी एवं आर्थिक रूप से लाभप्रद बनाने हेतु ठोस नीतिगत सुझाव एवं कार्ययोजना प्रस्तुत करना।

आंकड़ों का स्रोत एवं शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध एक वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का प्रतीकात्मक अध्ययन है, जो गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के आंकड़ों पर आधारित है। शोध के आंकड़े दो मुख्य स्रोतों से एकत्रित किए गए। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र के 75 उत्तरदाताओं से उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित कर संरचित एवं अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार, प्रत्यक्ष प्रेक्षण, फोटोग्राफी तथा अनौपचारिक चर्चाएँ शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में प्रकाशित रिपोर्ट्स, वन्यजीव अध्ययन, अप्रकाशित अभिलेख जैसे- जनगणना रिपोर्ट, विभागीय दस्तावेज तथा इलेक्ट्रॉनिक स्रोत उपग्रह चित्र, ऑनलाइन डेटाबेस सम्मिलित हैं। आंकड़ों के विश्लेषण में मात्रात्मक आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण जैसे- प्रतिशत, सारणी तथा गुणात्मक सूचनाओं का विवेचनात्मक विश्लेषण किया गया। अध्ययन की संभावित सीमाओं में क्षेत्र की सीमाबद्धता, मौसमी प्रभाव तथा उत्तरदाताओं की व्यक्तिपरकता शामिल है। समस्त प्रक्रिया में नैतिक मानकों जैसे- सूचित सहमति, गोपनीयता का पालन किया गया। इस प्रकार, यह शोध एक समग्र मिश्रित-विधि दृष्टिकोण अपनाते हुए विषय की गहन एवं विश्वसनीय समझ प्रस्तुत करता है।

शोध परिणाम एवं परिचर्चा :

तालिका-1 से स्पष्ट होता है कि गुड़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में बहुआयामी भूमिका निभाई है। अतिरिक्त आय के सृजन के संदर्भ में 45 (60.0%) उत्तरदाताओं ने इसकी भूमिका को उच्च माना, जबकि 25 (33.3%) ने मध्यम तथा केवल 5 (6.7%) ने निम्न भूमिका स्वीकार की। होमस्टे, स्थानीय गाइडिंग, पारंपरिक भोजन एवं हस्तशिल्प की बिक्री के माध्यम से ग्रामीण परिवारों को प्रति माह

□2000-5000 तक की अतिरिक्त आय प्राप्त हो रही है, जिससे आजीविका के स्रोतों में विविधता आई है। इसी प्रकार रोजगार के नए अवसरों के सृजन में भी इको-टूरिज़्म की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, जहाँ 40 (53.3%) उत्तरदाताओं ने उच्च तथा 30 (40.0%) ने मध्यम भूमिका बताई, जबकि मात्र 5 (6.7%) ने इसे निम्न माना। क्षेत्र में 15-20 युवा सीधे रूप से गाइड अथवा रेंजर के रूप में जुड़े हैं तथा 8-10 महिलाओं को होमस्टे प्रबंधन में नियमित रोजगार प्राप्त हुआ है।

स्थानीय उत्पादों की मांग में वृद्धि के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 35 (46.7%) उत्तरदाताओं ने उच्च भूमिका तथा 30 (40.0%) ने मध्यम भूमिका स्वीकार की, जबकि 10 (13.3%) ने निम्न भूमिका मानी। सांगरी, केर, हस्तनिर्मित झाड़ू एवं कैंडीला मोम से बने उत्पाद पर्यटकों के बीच लोकप्रिय होने से स्थानीय कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन मिला है। परंपरागत ज्ञान के संरक्षण एवं उसके मुद्रीकरण में इको-टूरिज़्म की भूमिका सर्वाधिक प्रभावशाली दिखाई देती है, जहाँ 50 (66.7%) उत्तरदाताओं ने उच्च तथा 20 (26.7%) ने मध्यम भूमिका को स्वीकार किया, जबकि केवल 5 (6.7%) ने निम्न भूमिका मानी। बिश्नोई जीवन-शैली, खेजड़ी वृक्ष का पर्यावरणीय महत्व तथा वन्यजीव संरक्षण से जुड़ी कथाएँ पर्यटकों के लिए प्रमुख आकर्षण बन गई हैं।

महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में 28 (37.3%) उत्तरदाताओं ने उच्च, 32 (42.7%) ने मध्यम तथा 15 (20.0%) ने निम्न भूमिका बताई, जिससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है, किंतु इसमें अभी और विस्तार की संभावनाएँ विद्यमान हैं। सामुदायिक भागीदारी की भावना के विकास में इको-टूरिज़्म की भूमिका अत्यंत सशक्त रही है, जहाँ 60 (80.0%) उत्तरदाताओं ने उच्च भूमिका स्वीकार की, जबकि 10 (13.3%) ने मध्यम तथा 5 (6.7%) ने निम्न भूमिका मानी। तालाबों का रखरखाव, पक्षियों के लिए चुग्गा डालना तथा पर्यटकों को 'अतिथि' मानकर सेवा देना सामूहिक गतिविधियों के रूप में उभरा है। वहीं अनौपचारिक गतिविधियों के विकास में 20 (26.7%) उत्तरदाताओं ने उच्च, 40 (53.3%) ने मध्यम तथा 15 (20.0%) ने निम्न भूमिका को स्वीकार किया, जिससे यह संकेत मिलता है कि परिवहन, चाय-नाश्ते की दुकानों एवं अन्य छोटे व्यवसायों के माध्यम से आय के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं।

तालिका-1 : गुड़ा विश्नोइयां इको-टूरिजम क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में भूमिका का आकलन

क्र.	मूल्यांकन बिंदु	उच्च भूमिका संख्या (%)	मध्यम भूमिका संख्या (%)	निम्न भूमिका संख्या (%)	प्रमुख अवलोकन
1	अतिरिक्त आय का सृजन	45 (60.0%)	25 (33.3%)	5 (6.7%)	होमस्टे (₹500-1000/रात), गाइडिंग (₹300-500/ट्रिप), स्थानीय भोजन व शिल्प बिक्री से प्रति माह ₹2000-5000 अतिरिक्त आय।
2	रोज़गार के नए अवसर	40 (53.3%)	30 (40.0%)	5 (6.7%)	15-20 युवा सीधे गाइड/रेंजर के रूप में जुड़े। 8-10 महिलाओं को होमस्टे प्रबंधन में नियमित काम।
3	स्थानीय उत्पादों की मांग में वृद्धि	35 (46.7%)	30 (40.0%)	10 (13.3%)	सांगरी, केर, हस्तनिर्मित झाड़ू, कैंडीला मोम के उत्पाद पर्यटकों में लोकप्रिय।
4	परंपरागत ज्ञान का संरक्षण एवं मुद्रीकरण	50 (66.7%)	20 (26.7%)	5 (6.7%)	बिश्नोई जीवन शैली, खेजड़ी का महत्व, वन्यजीव संरक्षण की कहानियाँ पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र।
5	महिला सशक्तिकरण	28 (37.3%)	32 (42.7%)	15 (20.0%)	महिलाओं को घर से आय अर्जित करने का मौका मिला, निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी बढ़ी।
6	सामुदायिक भागीदारी की भावना	60 (80.0%)	10 (13.3%)	5 (6.7%)	तालाब रखरखाव, पक्षियों को चुग्गा डालना सामूहिक गतिविधि है। पर्यटकों को "अतिथि" मानकर सेवा।
7	अनौपचारिक गतिविधियों का विकास	20 (26.7%)	40 (53.3%)	15 (20.0%)	कार, जीप आदि चालकों को आय। अनेक चाय-नाश्ते की दुकानें खुलीं।

(नोट: उच्च = >60% उत्तरदाता सहमत; मध्यम = 40-60%; निम्न = <40%)

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

तालिका क्रमांक 2 के अनुसार आधारभूत समस्याओं के अंतर्गत यातायात सबसे गंभीर चुनौती के रूप में उभरकर सामने आई है, जहाँ 68 (90.7%) उत्तरदाताओं ने गाँव तक पहुँचने वाली 12 किमी सड़क की अत्यंत खराब स्थिति, सार्वजनिक परिवहन के अभाव तथा मार्गदर्शक साइनबोर्डों की कमी को प्रमुख बाधा बताया है। यह स्थिति न केवल पर्यटकों की संख्या को सीमित करती है बल्कि स्थानीय लोगों की आवाजाही पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। आवास सुविधाओं के संदर्भ में 45 (60.0%) उत्तरदाताओं ने वन विभाग द्वारा संचालित सीमित हाटों तथा अपर्याप्त होमस्टे क्षमता को समस्या माना, जिससे यह संकेत मिलता है कि पर्यटकों के ठहराव हेतु आधारभूत ढाँचे का विस्तार आवश्यक है। इसी प्रकार मूलभूत सुविधाओं की कमी को 50 (66.7%) उत्तरदाताओं ने गंभीर समस्या के रूप में रेखांकित किया, विशेषकर शौचालय, कचरा प्रबंधन और सुरक्षित पेयजल की अनुपलब्धता को, जो सतत पर्यटन के मार्ग में प्रमुख अवरोध है।

तालिका-2: आधारभूत समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण

क्र.	समस्या का प्रकार	समस्या का विवरण (उत्तरदाताओं की आवृत्ति)	संभावनाएँ एवं सुझाव
1	यातायात	68 (90.7%) उत्तरदाता के अनुसार गाँव तक जाने वाली 12 किमी सड़क अत्यंत खराब स्थिति में है। सार्वजनिक परिवहन की सुविधा उपलब्ध नहीं है तथा मार्गदर्शक साइनबोर्डों का अभाव है।	पक्की सड़क का निर्माण किया जाए तथा जोधपुर से नियमित शटल/बस सेवा शुरू की जाए। मार्ग संकेतक साइनबोर्ड लगाए जाएँ।
2	आवास	45 (60.0%) उत्तरदाता के अनुसार वन विभाग द्वारा संचालित तीन हाट पर्यटकों के लिए अपर्याप्त हैं। होमस्टे की गुणवत्ता और क्षमता सीमित है।	होमस्टे सुविधाओं का विस्तार किया जाए तथा संचालकों को प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।
3	मूलभूत सुविधाएँ	50 (66.7%) उत्तरदाता ने शौचालय, कचरा प्रबंधन और सुरक्षित पेयजल की कमी को गंभीर समस्या बताया।	सौर ऊर्जा आधारित सुविधाएँ, बायो-टॉयलेट और जल शोधन इकाइयाँ स्थापित की जाएँ।

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

तालिका क्रमांक 3 के अनुसार प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित समस्याओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जल संकट एक अत्यंत संवेदनशील विषय है, जहाँ 55 (73.3%) उत्तरदाताओं ने तालाबों की वर्षा-निर्भरता, सूखे वर्षों में पक्षियों की अनुपस्थिति तथा टैंकरों पर बढ़ती निर्भरता को प्रमुख समस्या बताया। यह स्थिति क्षेत्र की पारिस्थितिक संतुलन व्यवस्था को प्रभावित करती है। पर्यावरणीय दबाव के संदर्भ में 40 (53.3%) उत्तरदाताओं ने बढ़ती पर्यटक संख्या के कारण कचरे और शोरगुल में वृद्धि की आशंका व्यक्त की, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण संरक्षण हेतु नियोजन एवं नियंत्रण आवश्यक है।

तालिका-3: प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन संबंधी समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण

क्र.	समस्या का प्रकार	समस्या का विवरण (उत्तरदाताओं की आवृत्ति)	संभावनाएँ एवं सुझाव
1	जल संकट	55 (73.3%) उत्तरदाता के अनुसार तालाब वर्षा पर निर्भर हैं। सूखे वर्षों में पक्षी नहीं आते और टैंकरों पर निर्भरता बढ़ जाती है।	तालाबों का गहरीकरण एवं विस्तार किया जाए तथा वैकल्पिक जल स्रोतों से जोड़ा जाए।
2	पर्यावरणीय दबाव	40 (53.3%) उत्तरदाता ने बताया कि बढ़ते पर्यटकों से कचरा और शोरगुल बढ़ने का खतरा है।	पर्यटकों की दैनिक संख्या सीमित की जाए और स्थानीय पौधों जैसे खेजड़ी व सेवण घास का रोपण किया जाए।

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

तालिका क्रमांक 4 के अनुसार बाजार एवं प्रचार से संबंधित समस्याओं का विश्लेषण दर्शाता है कि क्षेत्र की पहचान का अभाव सबसे बड़ी चुनौती है, जहाँ 65 (86.7%) उत्तरदाताओं के अनुसार गुड़ा विश्नोइयां का राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर कोई प्रभावी प्रचार नहीं हुआ है। इससे संभावित पर्यटक इस गंतव्य से अनजान बने हुए हैं। मौसमीकरण की समस्या को 60 (80.0%) उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया, जिनके अनुसार पर्यटन से आय केवल अक्टूबर से मार्च तक सीमित रहती है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था पर मौसमी दबाव उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त अनुभव आधारित पर्यटन पैकेजों की कमी को 50 (66.7%) उत्तरदाताओं ने रेखांकित किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि संगठित और थीम

आधारित पर्यटन उत्पादों का अभाव क्षेत्र की संभावनाओं को पूर्ण रूप से साकार नहीं होने दे रहा है।

तालिका-4: बाजार एवं प्रचार संबंधी समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण

क्र.	समस्या का प्रकार	समस्या का विवरण (उत्तरदाताओं की आवृत्ति)	संभावनाएँ एवं सुझाव
1	अनजान गंतव्य	65 (86.7%) उत्तरदाता के अनुसार क्षेत्र का राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर कोई प्रचार नहीं है।	"गूढ़ा विश्नोइयां" ब्रांड विकसित कर वेबसाइट और सोशल मीडिया पर प्रचार किया जाए।
2	मौसमीकरण	60 (80.0%) उत्तरदाता के अनुसार पर्यटन से आय केवल अक्टूबर से मार्च तक सीमित रहती है।	ग्रीष्मकाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम, स्टारगेजिंग कैंप और फोटोग्राफी वर्कशॉप आयोजित की जाएँ।
3	पैकेजिंग का अभाव	50 (66.7%) उत्तरदाता ने अनुभव आधारित पर्यटन पैकेजों की कमी बताई।	"बिश्नोई ट्रेल" और "वाइल्डलाइफ सफारी" जैसे थीम आधारित पैकेज तैयार किए जाएँ।

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

तालिका क्रमांक 5 के अनुसार सामुदायिक समस्याओं के अंतर्गत प्रशिक्षण की कमी सबसे प्रमुख चुनौती के रूप में उभरकर सामने आई है, जहाँ 58 (77.3%) उत्तरदाताओं ने भाषा ज्ञान, आतिथ्य प्रबंधन तथा प्राथमिक उपचार से संबंधित किसी भी प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण के अभाव को गंभीर समस्या बताया। यह स्थिति स्थानीय युवाओं की रोजगार क्षमता और पर्यटकों को गुणवत्तापूर्ण अनुभव प्रदान करने में बाधक सिद्ध होती है। इसी प्रकार संस्थागत समन्वय के अभाव को 48 (64.0%) उत्तरदाताओं ने रेखांकित किया, जिनके अनुसार वन विभाग, पंचायत एवं पर्यटन विभाग के बीच प्रभावी तालमेल न होने से योजनाओं का क्रियान्वयन अपेक्षित रूप से नहीं हो पा रहा है। लाभ वितरण की अनिश्चितता भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में सामने आई, जहाँ 35 (46.7%) उत्तरदाताओं ने आय के वितरण को लेकर स्पष्ट एवं पारदर्शी व्यवस्था के अभाव की बात कही, जिससे समुदाय के भीतर असंतोष की संभावना उत्पन्न होती है।

तालिका-5: सामुदायिक एवं संस्थागत समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण

क्र.	समस्या का प्रकार	समस्या का विवरण (उत्तरदाताओं की आवृत्ति)	संभावनाएँ एवं सुझाव
1	प्रशिक्षण की कमी	58 (77.3%) उत्तरदाता के अनुसार भाषा, आतिथ्य एवं प्राथमिक उपचार का कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं है।	स्थानीय युवाओं को प्रमाणित नेचर गाइड के रूप में प्रशिक्षित किया जाए।
2	समन्वय का अभाव	48 (64.0%) उत्तरदाता ने वन विभाग, पंचायत और पर्यटन विभाग के बीच समन्वय की कमी बताई।	"गूढ़ा इको-टूरिज्म समिति" का गठन किया जाए जिसमें सभी हितधारक शामिल हों।
3	लाभ वितरण की अनिश्चितता	35 (46.7%) उत्तरदाता के अनुसार आय वितरण को लेकर स्पष्ट व्यवस्था नहीं है।	पारदर्शी और स्पष्ट राजस्व-साझाकरण मॉडल विकसित किया जाए।

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

तालिका क्रमांक 6 के अनुसार अन्य समस्याओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जलवायु जोखिम इको-टूरिज़्म की स्थिरता के लिए एक उभरती हुई चुनौती है, जहाँ 42 (56.0%) उत्तरदाताओं ने अनियमित मानसून के कारण पक्षियों के प्रवास में अनिश्चितता की ओर संकेत किया। इससे न केवल पर्यटन गतिविधियों की निरंतरता प्रभावित होती है, बल्कि क्षेत्र की पारिस्थितिक पहचान पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मानव-वन्यजीव संघर्ष के संदर्भ में 25 (33.3%) उत्तरदाताओं ने पर्यटकों की लापरवाही से वन्यजीवों के विचलित होने की आशंका व्यक्त की, जो जैव विविधता संरक्षण के लिए चिंता का विषय है।

तालिका-6: अन्य समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण

क्र.	समस्या का प्रकार	समस्या का विवरण (उत्तरदाताओं की आवृत्ति)	संभावनाएँ एवं सुझाव
1	जलवायु जोखिम	42 (56.0%) उत्तरदाता ने बताया कि अनियमित मानसून के कारण पक्षी प्रवास अनिश्चित हो गया है।	दीर्घकालिक पक्षी गणना डेटा संग्रह कर शोध को बढ़ावा दिया जाए।
2	मानव-वन्यजीव संघर्ष	25 (33.3%) उत्तरदाता ने पर्यटकों की लापरवाही से वन्यजीवों के परेशान होने	पर्यटकों के लिए अनिवार्य व्यवहार संहिता लागू की

		की आशंका जताई।	जाए तथा स्थानीय गाइड के साथ भ्रमण अनिवार्य किया जाए।

स्रोत: क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ें

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म क्षेत्र जोधपुर जिले में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। होमस्टे, स्थानीय गाइडिंग, हस्तशिल्प, पारंपरिक भोजन एवं अनौपचारिक सेवाओं के माध्यम से ग्रामीण परिवारों को अतिरिक्त आय और रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं, जिससे आजीविका के स्रोतों में विस्तार हुआ है। इको-टूरिज़्म ने परंपरागत ज्ञान के संरक्षण, सामुदायिक सहभागिता तथा आंशिक रूप से महिला सशक्तिकरण को भी बढ़ावा दिया है।

हालाँकि, अध्ययन यह भी दर्शाता है कि यातायात संयोजकता की कमी, अपर्याप्त आवास एवं मूलभूत सुविधाएँ, जल संकट, पर्यावरणीय दबाव, प्रचार-प्रसार का अभाव, मौसमीकरण, प्रशिक्षण की कमी तथा संस्थागत समन्वय की कमजोरी जैसे कारक इस क्षेत्र की पूर्ण संभावनाओं को साकार होने से रोक रहे हैं। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन एवं मानव-वन्यजीव संघर्ष जैसी उभरती चुनौतियाँ सतत इको-टूरिज़्म के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं।

यह अध्ययन सुझाव देता है कि यदि आधारभूत अवसंरचना का विकास, प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन, सामुदायिक क्षमता निर्माण, पारदर्शी लाभ-वितरण प्रणाली तथा प्रभावी विपणन रणनीतियों को अपनाया जाए, तो गूढ़ा विश्नोइयां इको-टूरिज़्म मॉडल न केवल स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ कर सकता है, बल्कि पश्चिमी राजस्थान के समान भौगोलिक क्षेत्रों के लि**ए** सतत ग्रामीण विकास का एक आदर्श उदाहरण भी प्रस्तुत कर सकता है।

संदर्भ

- Mutsuddi, R., & Mutsuddi, I. (2007). Role of Eco-tourism in Redefining Economic Development. *ICFAI Journal of Environmental Economics*, *5*(3).

- Orboi, M. D. (2012). Development of rural communities by diversification of rural economy in the context of sustainable development. *Scientific Papers Animal Science and Biotechnologies*, *45*(1), 450-450.
- Nagaraju, L. G., & Chandrashekara, B. (2014). Rural tourism and rural development in India. *International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies*, *1*(6), 42-48.
- Prakash, K. B., & Reddy, M. P. S. (2020). Eco-tourism-the enabler and enhancer of sustainable growth. *Innovation in Economy & Policy Research*, *1*(1), 16-23.
- Mannikeri, S. A., Naganur, S., & Bharatkumar, C. (2021). Rural-agri/eco-tourism: factors influencingthe choice of tourist destination.
- Litheko, A. (2021). Small tourism business growth through eco-tourism in Mahikeng, South Africa. *African Journal of Hospitality, Tourism and Leisure*, *10*(1), 256-269.
- Iqbal, A., Ali, D. A., & Ansari, S. (2022). Rural Tourism and Rural Development in India. In *Conference: Special Issue, March*.
- Pandya, R., Dev, H. S., Rai, N. D., & Fletcher, R. (2023). Rendering land touristifiable:(eco) tourism and land use change. *Tourism Geographies*, *25*(4), 1068-1084.
- Thomas, L. (2025). Village Vibes: The Role of Rural Tourism in Revitalizing India's Villages. *Ecology, Environment & Conservation (0971765X)*, *31*.
- श्रीवास्तव, शिरीष (2002). भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यटन उद्योग की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका (अप्रकाशित शोध-प्रबंध). वाणिज्य विभाग, वी. बी. एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय। http://hdl.handle.net/10603/181916
- सिंह, कृष्ण कुमार (2007). पर्यटन उद्योग का उत्तर प्रदेश के आर्थिक विकास में योगदान (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। वाणिज्य विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद। http://hdl.handle.net/10603/232087

- कुमार, राजेश (2010). कुमाऊँ मंडल (उत्तरांचल) में पर्यटन समस्याएँ, संभावनाएँ एवं विकास नियोजन (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। भूगोल विभाग, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय। http://hdl.handle.net/10603/311542
- सिंह, प्रीति (2011). विन्ध्य प्रदेश में वन्यजीव एवं पर्यटन का भू-पर्यावरणीय अध्ययन (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। भूगोल विभाग, वी. बी. एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय। http://hdl.handle.net/10603/182664
- सिंह, विनीता (2015). उत्तर प्रदेश के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग का योगदान (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। वाणिज्य विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद। http://hdl.handle.net/10603/228780
- सुगंध, अरुण कुमार (2016). छत्तीसगढ़ के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग का योगदान (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। स्कूल ऑफ़ स्टडीज़ इन इकोनॉमिक्स, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय। http://hdl.handle.net/10603/251176
- कुमार, रमेश (2022). पश्चिमी राजस्थान में पारिस्थितिक एवं पर्यटन केंद्रों का भौगोलिक व सांस्कृतिक संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन: इको-टूरिज़्म सुंधा माता (जालौर) एवं गुड़ा विश्नोइयां-खेजड़ली (जोधपुर) (अप्रकाशित शोध-प्रबंध)। भूगोल विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर। http://hdl.handle.net/10603/500946

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

वैदिक काल में नदियों का संरक्षण और वर्तमान में उनकी महता

साजन राम
सहायक आचार्य, हिंदी,
राजकीय महाविद्यालय भीम, राजसमंद, राजस्थान।

सारांश :

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास नदियों के किनारे हुआ है। वैदिक काल में नदियों को न केवल जल का स्रोत माना, बल्कि जीवनदात्री माता, देवी, तथा सभ्यता तथा संस्कृति का वाहक माना गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद एवं विभिन्न ब्राह्मण ग्रंथों में नदियों के प्रति श्रद्धा, संरक्षण, और सतत उपयोग की स्पष्ट अवधारणा मिलती है। वैदिक काल के ऋषि मुनियों ने नदियों को दूषित न करने, इनकी प्राकृतिक प्रवाह को बनाएं रखने तथा जल को संयमित प्रयोग का संदेश दिया है।

वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि कल कारखानों, शहरीकरण, प्रदूषण, अवैध खनन तथा बदलते जल वायु परिवर्तन की वजह से नदियों नदियां गंभीर संकट का सामना कर रही है। ऐसे समय में वैदिक दृष्टिकोण आधुनिक जल संरक्षण की नीतियों के लिए प्रेरणादायी तथा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इस शोध पत्र में वैदिक साहित्य में वर्णित नदी जल संरक्षण की अवधारणा, प्रमुख नदियों का सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक महत्व वर्तमान की चुनौतियां एवं नदी संरक्षण के उपाय का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : वैदिक काल, नदी संरक्षण, पर्यावरण, ऋग्वेद, सरस्वती, गंगा, जल संरक्षण एवं सतत विकास।

भूमिका :

भारत को आदिकाल से (नदियों का देश) कहा जाता है। यहां की कृषि, सभ्यता, संस्कृति, व्यापार तथा धार्मिक जीवन नदियों पर आधारित रहा है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्त जीवन का आधार है, उसी प्रकार पृथ्वी के शरीर में नदियां जीवन का संचार करती है। वैदिक साहित्य में नदियों माता, देवी तथा जीवन दायिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ऋग्वेद में नदी सूक्ति ऋग्वेद में (10.75) में भारत की विभिन्न नदियों का वर्णन अत्यंत श्रद्धापूर्वक किया गया है। यह नदी सूक्ति केवल स्तुति नहीं है, अपितु जल संरक्षण तथा पर्यावरण संतुलन का संदेश भी देता है।

अथर्ववेद का प्रसिद्ध मंत्र :

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथ्वीव्या।

अर्थात् – यह है पृथ्वी हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं। जब पृथ्वी हमारी माता है, तब इस पृथ्वी पर बहने वाली नदियां हमारी जीवनदायिनी माताएं हैं। उनका संरक्षण एवं रखरखाव हम सबका नैतिक

कर्तव्य है।

आज संपूर्ण विश्व जल संकट, नदी प्रदूषण, तथा जलवायु परिवर्तन जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। इसलिए वैदिक ज्ञान परंपरा में निहित नदी जल संरक्षण की अवधारणा अत्यधिक प्रासंगिक हो गई है।

वैदिक काल में नदियों का स्वरूप :

वैदिक काल में नदियों को मात्र प्राकृतिक जल संसाधन नहीं माना गया, बल्कि इन्हें दिव्य शक्ति का प्रतीक माना गया है।

ऋग्वेद में कहा गया है (ऋग्वेद 10.75.5)

इमं में गंगे, यमुने, सरस्वती, शुतुद्रि स्तोमं सचता परूष्णा।

इस मंत्र में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलुज) पुरूषणी (रावि) सहित अनेक नदियों का स्मरण किया गया है।

इस सूक्ति में बताया गया है कि सभी नदियों समाज की समान धरोहर थी। जल के उपयोग का अधिकार सभी का था। सभी लोग नदियों का आदर करते थे।

वैदिक काल की प्रमुख नदियां :

1. सरस्वती :

सरस्वती वैदिक काल की महत्वपूर्ण नदी थी। अत्यंत श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण वैदिक साहित्य में किया गया है।

ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र :-

आम्बेतमे नदीतमे देवीतमे सरस्वती। (ऋग्वेद 2.41.16)

अर्थात् -

हे सरस्वती! तू श्रेष्ठ माता, तुम श्रेष्ठ नदी एवं श्रेष्ठ देवी हो।

सरस्वती को ज्ञान, समृद्धि तथा संस्कृति का प्रतीक माना गया है। इसका उद्‌गम हिमालय से होता था, हिमाचल, हरियाणा, पंजाब होते हुए राजस्थान अपना जल अरब सागर में छोड़ती थी। वर्तमान में यह भूमिगत हो गई है।

2. गंगा :

यद्यपि ऋग्वेद में गंगा का उल्लेख बहुत सीमित मिलता है, परंतु उत्तर वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। गंगा को जीवनदायनी देवी, पवित्रता मूर्ति तथा मोक्ष का प्रतीक माना गया है। आज भी भारतीय लोग गंगा को पवित्र एवं मोक्षदायनी नदी मानते हैं, संपूर्ण उत्तर भारतीय हिंदू अपने पूर्वजों की हस्तियां इसी में विसर्जित करके मोक्ष की कामना करते हैं।

3. यमुना :

यमुना भी भारत की प्रमुख नदियों में से एक है। इसे कृषि पेयजल तथा धार्मिक जीवन का प्रतीक माना गया है। कृष्ण साहित्य में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। भारत में अनेक नगरों का विकास इसके तटों पर हुआ है।

4. सिंधु नदी :

ऋग्वेद में सिंधु का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसे शक्तिशाली, विशाल तथा समृद्धि देने वाली बताया गया

है। भारत देश का अन्य नाम हिंदुस्तान भी है यह नाम इसी नदी से पड़ा था। फारसी भाषा में स को ह पढ़ा जाता है। सिंधु को हिंदू पढ़ा गया है।

वैदिक काल में नदी संरक्षण की अवधारणा :

वैदिक समाज प्रकृति के साथ वैज्ञानिक एवं संतुलित जीवन जीने में विश्वास करता था। मानव उपयोगी प्रकृति का प्रयोग सीमित संतुलित तथा संयमित करता था।

1. नदियों को देवी तुल्य मानना :

वैदिक समाज नदियों को देवी तथा माता का प्रतीक रूप में मानता था। जब किसी वस्तु हम देवी या माता के रूप में मानते हैं, तब प्रदूषण सहित रहित पवित्र रखने का भाव स्वतः हो जाता है। नदियों को देवी तुल्य मानना अंधविश्वास नहीं था। इसका कारण मनोवैज्ञानिक थाद्य नदी पूजा केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं थी, बल्कि यह नदी संरक्षण की सामाजिक व्यवस्था थी। जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हुई आज भी हमारे समाज में विद्यमान है।

2. जल का संयमित उपयोग :

यजुर्वेद में जल के महत्व का विस्तृत वर्णन किया गया है, जल को अमृत के समान पवित्र माना है तथा जल के अपव्यय से बचने तथा जल संरक्षण की प्रेरणा दी गई है।

3. प्रदूषण निषेध :

वैदिक समाज में नदियों में गंदगी डालना अपराध माना जाता था। वैदिक काल यज्ञों के माध्यम से पर्यावरण संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जाता था। आज भी जब वर्षा नहीं होती है तो गांव में प्रत्येक घर की से यज्ञ सामग्री एकत्रित करके नदी तट या नदी–तालाब के किनारे यज्ञ किए जाते हैं। जिससे पर्यावरण शुद्धि होती है और वर्षा होने लगती है।

4. वन और नदी का संबंध :

वैदिक ऋषियों द्वारा बताया गया है कि वनों के बिना नदियां जीवित नहीं रह सकती है। वनों के बिना वर्षा नहीं होगी बिना वर्षा नदियां सूख जाएगी। इसी कारण वन संरक्षण को वैदिक काल में धार्मिक कर्तव्य माना गया।

5. जल चक्र की समझ :

ऋग्वेद में वर्षा, बादल, सूर्य, समुद्र तथा नदियों के संबंध का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

वैदिक काल में नदी संरक्षण के वैज्ञानिक आधार :

आधुनिक विज्ञान के अनुसार : विज्ञान के अनुसार पेड़ पौधों जहां अधिक होंगे वहां वर्ष अधिक होगी जिस क्षेत्र में नदियां ज्यादा बहती है।

उसे क्षेत्र का भू जल स्तर ऊपर होता है यानी नदियां भूजल को पुनर्धारित करती है। स्वच्छ जल के सेवन करने से शरीर स्वस्थ रहता है। शुद्ध जल सेवन से बीमार भी रोग मुक्त हो जाता है। जल संरक्षण से कृषि के लिए पर्याप्त जल मिलेगा जिससे पैदावार ज्यादा होगी। ये सभी बातें वैदिक साहित्य में प्रत्यक्ष या है प्रत्यक्ष रूप में से वर्णित है। जो वैज्ञानिक सोच को दर्शाती है।

वर्तमान में नदियों की स्थिति :

वर्तमान में भारत की लगभग सभी नदियां गंभीर संकट से जूझ रही है।

मुख्य समस्याएं :

- औद्योगिक प्रदूषण
- घरेलू शहरीकरण
- प्लास्टिक कचरा रासायनिक उर्वरक
- अवैध रेत खनन
- बांधों के कारण प्राकृतिक प्रभाव में कमी
- भूजल का असीमित दोहन

जलवायु परिवर्तन :

इन कारणों से अनेक नदियों का अपना अस्तित्व होती जा रही है।

वर्तमान में नदियों का महता :

वर्तमान में नदियों का बहुत अधिक महत्व है।

1. **पेयजल का प्रमुख स्रोत :**

भारत में पेयजल की आपूर्ति नदियों पर बांध बनाकर उसके द्वारा की जाती है।

2. **कृषि की आधारशिला :**

भारत कृषि प्रधान देश है। यहां नदियों के पानी से सिंचाई की जाती है।

3. **जल विद्युत का उत्पादन :**

अनेक नदियों पर बांध बनाकर जल विद्युत का उत्पादन किया जाता है। चंबल, माही, आदि नदियों से जल विद्युत उत्पादन किया जाता है।

4. **मत्स्य पालन :**

भारत में मछली पालन का प्रमुख स्रोत नदियां ही है।

5. **जैव विविधता :**

नदियों के आसपास पर्याप्त वन होते हैं होने के कारण वहां वन्य जीव जंतु पाए जाते हैं। जल की उपलब्धता के कारण इन वनों पर अनेक प्रकार की वनस्पतियां पाई जाती है।

6. **पर्यटन :**

नदियों के आसपास बने जीव अभ्यारण्य है। जो पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

7. **परिवहन :**

नदियों के परिवहन सड़क तथा हवाई मार्ग से बहुत सस्ता माना जाता है जिसमें कम खर्चे से नावों द्वारा परिवहन किया जाता है।

8. **आर्थिक विकास :**

जिस देश में नदियों में पर्याप्त जल होता है। कृषि का उत्पादन बढ़ेगा तब उसे देश का आर्थिक विकास अपने आप ही होगा।

9. **सांस्कृतिक विकास :**

भारतीय सभ्यताओं का विकास नदी के तत्वों के आसपास ही हुआ है। अतः उसे संस्कृति को यह प्रमुख केंद्र मानी जाती है। इन सभी कर्म से वर्तमान में नदियों के महत्व बहुत अधिक है।

वैदिक साहित्य में नदी संरक्षण का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण :

हम जानते हैं कि नदियां प्रकृति का प्रमुख अंग है नदियों के बिना मानव सभ्यता का विकास संभव नहीं था। वैदिक साहित्य में प्रकृति और मनुष्य के बीच गहरा और संतुलित संबंध स्थापित किया गया है। ऋषियों ने प्राकृतिक प्रकृति मात्रा प्राकृतिक संसाधन नहीं बल्कि से अस्तित्व का मूल आधार माना जाता है। नदियां प्राकृतिक संसाधनों का प्रमुख अंग मानी जाती है इसलिए नदियों का संरक्षण महत्वपूर्ण है। इनका संरक्षण मानव समाज का धार्मिक सांस्कृतिक नैतिक और सामाजिक कर्तव्य भी वैदिक काल के ऋषियों ने बताया था।

1. नदियां मानव जीवन का आधार ऋग्वेद में नदियों का को जीवनदायनी शक्ति माना गया है। आपको ही निष्ठा मायूस्तरा अर्जी दादा तान ऋग्वेद 10 पॉइंट 9 पॉइंट 1 अर्थात है नदी जल तू सुख देने वाले हो हमें शक्ति स्वास्थ्य और ताकत प्रदान करो। यह मंत्र स्पष्ट करता है कि नदी जल केवल भौतिक आवश्यकता ही नहीं अपितु जीवन स्वास्थ्य और मानव ताकत का मूल आधार है। इसलिए नदी जल स्रोतों की सफाई और संरक्षण करना मानव की सर्वोच्च प्राथमिकता बताई गई है। नंबर दो नदी और अध्यात्म का संबंध वैदिक काल में नदियों के तट मानव ज्ञान, यज्ञ, तपस्या, शिक्षा प्राप्ति के प्रमुख केंद्र बनाए गए बताए गए हैं। अनेक ऋषियों के आश्रम गंगा, सरस्वती, यमुना, सतलुज अन्य नदियों के तटों पर स्थापित किए गए थे। इससे नदियों के प्रति समाज में श्रद्धा बनी रहती है और मानव समाज उन्हें प्रदूषित करने से बचते थे। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी नदियों का जल पवित्र माना गया है। जिसका परिणाम यह हुआ कि नदी जल संरक्षण एक सामाजिक कर्तव्य माना जाने लगा नदी और कृषि आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था प्रमुख का प्रमुख आधार कृषि है।

भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वैदिक काल में भी अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि ही था। कृषि हेतु नदियों के जल का उपयोग किया जाता था किंतु जल का उपयोग संतुलित तथा संयमित रूप से किया जाता था। अथर्ववेद में बताया गया है कि वर्षा जल नदी जल कृषि का मूल आधार था। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के लोग जल संरक्षण तथा जहां वन ज्यादा होंगे वहां नमी ज्यादा होगी तो बाढ़ नियंत्रण वन घनत्व बाढ़ को भी नियंत्रित करता है। वन क्षेत्र ज्यादा होगा वह वर्ष हमेशा ही ज्यादा होगी और जहां वर्षा ज्यादा होगी वहां नदियां भी होगी तो वर्षा जल नदी के रास्ते में जाएगा और बाढ़ का खतरा भी नहीं होगा। नदी में गार्ड की कमी जिस क्षेत्र में नदियां बनेगी वहां दलदल गढ़ होगी कम होगी क्योंकि घाट भाकर समुद्र में चली जाएगी।

निष्कर्ष (Conclusion)

वैदिक काल में नदियों को केवल जल स्रोत नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति, आध्यात्मिकता और समृद्धि का आधार माना गया। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में नदियों के प्रति श्रद्धा, संरक्षण और संतुलित उपयोग का स्पष्ट संदेश मिलता है। नदियों को देवी, माता और लोककल्याणकारी शक्ति के रूप में स्वीकार कर समाज में उनके संरक्षण की नैतिक चेतना विकसित की गई।

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, अवैध खनन तथा जलवायु परिवर्तन के कारण नदियाँ गंभीर संकट का सामना कर रही हैं। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो जल संकट और अधिक गहरा सकता है। इस संदर्भ में वैदिक ज्ञान परंपरा केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि पर्यावरणीय नीति और सतत विकास के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को वैदिक पर्यावरणीय मूल्यों के साथ समन्वित कर

जल संसाधनों का संरक्षण किया जाए। यदि समाज, सरकार और वैज्ञानिक समुदाय मिलकर कार्य करें, तो भारत की नदियों को पुनः स्वच्छ, अविरल और जीवनदायिनी बनाया जा सकता है। यही वैदिक ऋषियों के प्रकृति–दर्शन का वास्तविक सम्मान होगा।

संदर्भ सूची (References)

वैदिक ग्रंथ :

1. ऋग्वेद, सायणभाष्य सहित।
2. अथर्ववेद।
3. यजुर्वेद।
4. सामवेद।
5. शतपथ ब्राह्मण।
6. ऐतरेय ब्राह्मण।

पुस्तकें :

7. वासुदेवशरण अग्रवाल – भारतीय संस्कृति के आधार।
8. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन – Indian Philosophy।
9. बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और संस्कृति।
10. रामशरण शर्मा – प्राचीन भारत का इतिहास।
11. कपिल कपूर – Indian Knowledge Systems।
12. एस.सी. दुबे – भारतीय संस्कृति।

सरकारी एवं अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट :

13. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार Namami Gange Programme Reports?
14. Central Pollution Control Board (CPCB) – River Water Quality Reports?
15. NITI Aayog – Composite Water Management Index?
16. UNESCO – World Water Development Report?
17. IPCC – Climate Change Assessment Report?
18. United Nations – Sustainable Development Goals (SDGs)?

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परम्परा और वैदिक काल : एक अध्ययन

DINESH SINGH
M.Sc. Student, SPC GOVT. COLLEGE, BHIM.

सार (Abstract)

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सर्वाधिक प्राचीन, समृद्ध एवं सतत् विकसित होने वाली ज्ञान परम्पराओं में से एक है। इसका मूल आधार वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, स्मृतियाँ, दर्शन, पुराण तथा भारतीय मनीषियों द्वारा विकसित विविध ज्ञान–विधाएँ हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करना रहा है। वैदिक काल इस परम्परा का आधारभूत काल माना जाता है, जिसमें शिक्षा, दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, पर्यावरण संरक्षण, कृषि, सामाजिक व्यवस्था तथा आध्यात्मिक चिंतन का समन्वित विकास हुआ।

वर्तमान समय में जब विश्व पर्यावरणीय संकट, नैतिक मूल्यों के ह्रास, मानसिक तनाव, तकनीकी असंतुलन तथा सांस्कृतिक विघटन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा के सिद्धांत पुनः प्रासंगिक हो उठे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) को शिक्षा के मुख्य आधारों में सम्मिलित कर इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है।

मुख्य शब्द (Keywords)

भारतीय ज्ञान परम्परा, गुरुकुल, शिक्षा, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय ज्ञान प्रणाली।

भूमिका :

भारत को विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में स्थान प्राप्त है। भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी निरंतरता है। अनेक सभ्यताएँ समय के साथ लुप्त हो गईं, परन्तु भारतीय संस्कृति ने समय–समय पर स्वयं को परिष्कृत करते हुए अपनी मूल आत्मा को सुरक्षित रखा। इस निरंतरता का प्रमुख कारण भारतीय ज्ञान परम्परा है।

भारतीय ज्ञान परम्परा केवल धार्मिक मान्यताओं तक सीमित नहीं है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र 'शिक्षा, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा, कृषि, गणित, भाषा, संगीत, कला, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा पर्यावरण' को समाहित करती है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल सूचना का संग्रह नहीं माना, बल्कि जीवन को श्रेष्ठ बनाने का साधन समझा। इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है –

'सा विद्या या विमुक्तये।'

अर्थात्– वही विद्या है जो मनुष्य को अज्ञान, भय एवं बंधनों से मुक्त करे।

भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल स्रोत वेद हैं। 'वेद' शब्द संस्कृत धातु 'विद्' से बना है, जिसका अर्थ है–जानना या ज्ञान प्राप्त करना। वेद मानव सभ्यता के प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य माने जाते हैं। इनमें केवल धार्मिक स्तोत्र ही नहीं, बल्कि प्रकृति, समाज, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, गणित, संगीत, कृषि तथा नैतिक जीवन से संबंधित बहुमूल्य ज्ञान निहित है।

वैदिक काल को भारतीय इतिहास का प्रारंभिक ऐतिहासिक चरण माना जाता है। सामान्यतः इसका समय लगभग 1500 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व माना जाता है। इस काल को दो भागों में विभाजित किया जाता है–

1. ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ईसा पूर्व)
2. उत्तर वैदिक काल (1000–600 ईसा पूर्व)

ऋग्वैदिक काल में समाज अपेक्षाकृत सरल, ग्रामीण एवं पशुपालन आधारित था, जबकि उत्तर वैदिक काल में कृषि, व्यापार, राज्य व्यवस्था तथा सामाजिक संस्थाओं का अधिक विकास हुआ।

भारतीय ज्ञान परम्परा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यहाँ ज्ञान को प्रयोगात्मक जीवन से जोड़ा गया। ज्ञान का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** की भावना के अनुरूप समस्त समाज का कल्याण था। इसी कारण भारतीय शिक्षा में नैतिकता, आत्मसंयम, अनुशासन, सेवा, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को विशेष महत्व दिया गया।

आज वैश्वीकरण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटलीकरण और तीव्र वैज्ञानिक विकास के युग में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक समाज के लिए उपयोगी है? उत्तर स्पष्ट है–हाँ। योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, वैदिक गणित, भारतीय दर्शन, पर्यावरणीय दृष्टिकोण तथा समग्र शिक्षा जैसे क्षेत्र आज विश्वभर में पुनः लोकप्रिय हो रहे हैं। यह भारतीय ज्ञान परम्परा की वैज्ञानिकता एवं सार्वभौमिकता का प्रमाण है।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध–पत्र भारतीय ज्ञान परम्परा और वैदिक काल का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि आधुनिक समाज के सतत एवं संतुलित विकास का भी आधार बन सकता है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध–पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. भारतीय ज्ञान परम्परा की अवधारणा एवं स्वरूप का अध्ययन करना।
2. वैदिक काल की शिक्षा व्यवस्था एवं ज्ञान प्रणाली का विश्लेषण करना।

भारतीय ज्ञान परम्परा की अवधारणा :

भारतीय ज्ञान परम्परा (Indian Knowledge System–IKS) एक ऐसी समन्वित ज्ञान–व्यवस्था है, जिसका विकास हजारों वर्षों के चिंतन, अनुभव, अनुसंधान और साधना के परिणामस्वरूप हुआ। यह परम्परा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र 'दर्शन, शिक्षा, चिकित्सा, गणित, खगोल विज्ञान, कृषि, पर्यावरण, भाषा, संगीत, कला, राजनीति और समाजशास्त्र' को समाहित करती है।

'ज्ञान' शब्द संस्कृत की 'ज्ञा' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–जानना, समझना और सत्य का बोध

करना। भारतीय चिंतन में ज्ञान का उद्देश्य केवल सूचना प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा समाज के कल्याण को सुनिश्चित करना है। इसलिए भारतीय परम्परा में ज्ञान को 'प्रकाश' और अज्ञान को 'अंधकार' कहा गया है।

उपनिषदों की प्रसिद्ध प्रार्थना–

'असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।।'

ज्ञान की इसी यात्रा का प्रतीक है। यह केवल आध्यात्मिक संदेश नहीं, बल्कि शिक्षा और अनुसंधान का भी मूल दर्शन है।

भारतीय ज्ञान परम्परा की विशेषता यह है कि इसमें आध्यात्मिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अद्भुत समन्वय मिलता है। यहाँ किसी विचार को केवल आस्था के आधार पर स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि तर्क, अनुभव और संवाद के माध्यम से उसे परखा गया। इसीलिए उपनिषदों में प्रश्नोत्तर की समृद्ध परम्परा दिखाई देती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रमुख विशेषताएँ :

भारतीय ज्ञान परम्परा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. समग्र दृष्टिकोण (Holistic Approach)

भारतीय चिंतन मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समन्वित रूप में देखता है। इसलिए यहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विकास भी है।

2. अनुभव पर आधारित ज्ञान :

भारतीय ऋषियों ने अनुभव और निरीक्षण को अत्यधिक महत्व दिया। योग, आयुर्वेद तथा ध्यान जैसी विधियाँ इसका प्रमाण हैं।

3. प्रकृति के साथ सामंजस्य :

भारतीय संस्कृति प्रकृति को पूजनीय मानती है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत कहा गया है। पर्यावरण संरक्षण की यह अवधारणा आज के सतत विकास (Sustainable Development) के सिद्धांत से मेल खाती है।

4. नैतिकता और मानवीय मूल्य :

भारतीय ज्ञान परम्परा सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सेवा, संयम तथा सहिष्णुता जैसे मूल्यों पर आधारित है। यही कारण है कि शिक्षा को चरित्र निर्माण का साधन माना गया।

5. सार्वभौमिक दृष्टिकोण :

भारतीय ज्ञान किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं है। ऋग्वेद का मंत्र–

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।'

यह स्पष्ट करता है कि श्रेष्ठ विचार किसी भी दिशा से आएँ, उनका स्वागत किया जाना चाहिए।

वैदिक काल की शिक्षा व्यवस्था (गुरुकुल प्रणाली)

भारतीय ज्ञान परम्परा का सबसे सशक्त आधार वैदिक शिक्षा व्यवस्था थी। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य

केवल पुस्तकीय ज्ञान देना नहीं था, बल्कि व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना था। शिक्षा को जीवन का संस्कार माना जाता था।

शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। इसके पश्चात् विद्यार्थी गुरु के आश्रम या गुरुकुल में रहकर अध्ययन करता था। गुरुकुल केवल शिक्षण संस्थान नहीं, बल्कि जीवन निर्माण के केंद्र थे, जहाँ विद्यार्थी आत्मनिर्भरता, अनुशासन, सेवा, परिश्रम, संयम और सदाचार का अभ्यास करता था।

गुरु और शिष्य का संबंध अत्यंत आत्मीय था। गुरु केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और चरित्र–निर्माता भी होते थे। शिक्षा पूर्ण होने पर विद्यार्थी समावर्तन संस्कार के माध्यम से समाज में प्रवेश करता था।

वैदिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य :

1. चरित्र निर्माण।
2. आत्मसंयम और अनुशासन का विकास।
3. सत्य एवं धर्म का पालन।
4. समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व की भावना।
5. आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास।
6. व्यावहारिक जीवन के लिए आवश्यक कौशल का विकास।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था –

'शिक्षा मनुष्य में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'

यह विचार वैदिक शिक्षा की मूल भावना से पूर्णतः मेल खाता है।

गुरू–शिष्य परम्परा :

भारतीय संस्कृति में गुरु को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया है। शास्त्रों में कहा गया है –

'गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।'

गुरु केवल पाठ्य ज्ञान नहीं देते थे, बल्कि जीवन के आदर्श भी स्थापित करते थे। गुरु–शिष्य संबंध परस्पर विश्वास, समर्पण और अनुशासन पर आधारित था।

वर्तमान संदर्भ में वैदिक ज्ञान की उपयोगिता :

आज जब विश्व पर्यावरण संकट, मानसिक तनाव, जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों और नैतिक मूल्यों के ह्रास जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब वैदिक चिंतन के अनेक सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं–

- **योग और ध्यान** – मानसिक स्वास्थ्य के लिए।
- **आयुर्वेद** – समग्र स्वास्थ्य के लिए।
- **प्रकृति के प्रति सम्मान** – पर्यावरण संरक्षण के लिए।
- **गुरू–शिष्य परम्परा** – मूल्य आधारित शिक्षा के लिए।
- **समग्र विकास का दृष्टिकोण** – आधुनिक शिक्षा के लिए।

इसी कारण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) को शिक्षा

के पाठ्यक्रम में शामिल करने पर विशेष बल दिया गया है।

भारतीय ज्ञान परम्परा की समकालीन प्रासंगिकता :

वर्तमान युग विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), जैव–प्रौद्योगिकी तथा वैश्वीकरण का युग है। इन परिवर्तनों ने मानव जीवन को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं, किन्तु साथ ही पर्यावरण प्रदूषण, नैतिक मूल्यों का ह्रास, मानसिक तनाव, उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक विघटन तथा सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय ज्ञान परम्परा एक संतुलित, मानवीय एवं सतत् विकास का दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल सिद्धान्त है कि ज्ञान का उद्देश्य केवल आर्थिक उन्नति नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज, प्रकृति और समस्त मानवता का कल्याण होना चाहिए। यही कारण है कि आज योग, आयुर्वेद, ध्यान, वैदिक गणित, भारतीय दर्शन तथा प्राकृतिक जीवन–पद्धति विश्व स्तर पर पुनः लोकप्रिय हो रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जाना इस तथ्य का प्रमाण है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए उपयोगी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान प्रणाली :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP–2020) भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास है। इस नीति में निम्न बिंदुओं पर विशेष बल दिया गया है–

- भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा।
- भारतीय दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन।
- योग, आयुर्वेद एवं पारम्परिक ज्ञान का समावेश।
- अनुसंधान एवं नवाचार को बढ़ावा।
- मूल्यपरक एवं कौशल आधारित शिक्षा।
- बहुविषयक (Multidisciplinary) शिक्षा।
- स्थानीय ज्ञान एवं लोक परम्पराओं का संरक्षण।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य केवल डिग्री प्रदान करना नहीं, बल्कि ऐसे नागरिक तैयार करना है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से भी जुड़े हों।

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध ज्ञान परम्पराओं में से एक है। इसका मूल आधार वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, दर्शन, आयुर्वेद तथा अन्य शास्त्रीय ग्रंथ हैं। वैदिक काल में शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा, गणित, दर्शन, कृषि, पर्यावरण तथा सामाजिक संगठन का उल्लेखनीय विकास हुआ। गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था ने केवल ज्ञान प्रदान नहीं किया, बल्कि चरित्र निर्माण, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और नैतिक मूल्यों को भी विकसित किया।

भारतीय ज्ञान परम्परा की सबसे बड़ी विशेषता इसका समग्र (Holistic) दृष्टिकोण है, जिसमें व्यक्ति, समाज, प्रकृति और आध्यात्मिक चेतना के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक युग में योग, आयुर्वेद, पर्यावरण संरक्षण, समग्र स्वास्थ्य, नैतिक शिक्षा तथा मूल्य–आधारित जीवन की बढ़ती आवश्यकता भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता को और अधिक स्पष्ट करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को आधुनिक शिक्षा से जोड़कर यह सिद्ध किया है कि भारत का भविष्य केवल आधुनिक विज्ञान पर ही नहीं, बल्कि अपनी प्राचीन ज्ञान परम्परा के सृजनात्मक पुनर्पाठ पर भी निर्भर करता है। अतः आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान परम्परा का वैज्ञानिक अध्ययन, संरक्षण तथा समकालीन संदर्भों में पुर्नव्याख्या की जाए, ताकि यह ज्ञान मानवता के सतत एवं समावेशी विकास में सार्थक योगदान दे सके।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा अतीत की धरोहर मात्र नहीं, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की दिशा है।

संदर्भ सूची :

1. Altekar, A. S. (2009). Education in Ancient India. Nand Kishore & Bros.
2. Basham, A. L. (2004). The Wonder That Was India. Picador India.
3. Kane, P. V. (2015). History of Dharmasastra (Vols. I–V). Bhandarkar Oriental Research Institute.
4. Radhakrishnan, S. (2008). Indian Philosophy (Vol. 1). Oxford University Press.
5. Sharma, R. S. (2018). India's Ancient Past. Oxford University Press.
6. Thapar, R. (2013). Early India: From the Origins to AD 1300. University of California Press.
7. Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540
KANCHANLATA कचंनलता (त्रैमासिक)
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

तुलसीदास विरचित कवितावली में सामाजिक चेतना

पवन प्रकाश शर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, भादरा।
शोधार्थी (पीएच.डी.) लॉर्ड विश्वविद्यालय, अलवर।
श्री सुरेंद्र कुमार मीणा,
शोध निर्देशक, लॉर्ड विश्वविद्यालय, अलवर।

1. शोध सार (Abstract)

भारतीय साहित्य के भक्तिकाल में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वोच्च है। उन्हें मुख्यतः 'रामचरितमानस' के माध्यम से एक आदर्शवादी, मर्यादावादी और लोकमंगल के सर्जक के रूप में मान्यता प्राप्त है। किंतु, उनके रचनाकाल के अंतिम चरण की कृति 'कवितावली' (विशेषकर इसका उत्तरकांड) उनके साहित्य में एक भिन्न और अत्यंत यथार्थवादी स्वर लेकर प्रस्तुत होती है। यह शोध पत्र 'कवितावली' में अंतर्निहित सामाजिक चेतना, तत्कालीन युगीन विसंगतियों, भयंकर अकाल, दरिद्रता, बेरोजगारी, महामारी और टूटते हुए सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि तुलसीदास केवल पारलौकिक सत्ता के गायक नहीं थे, अपितु वे अपने युग की क्रूर वास्तविकताओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील और एक सजग समाजशास्त्रीय दृष्टि रखने वाले 'लोकनायक' थे।

मुख्य शब्द (Keywords) : कवितावली, सामाजिक चेतना, युगीन यथार्थ, दरिद्रता, बेरोजगारी, कलियुग–वर्णन, लोकमंगल, भक्तिकाल।

2. प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य समाज का दर्पण होता है, यह उक्ति तुलसीदास के साहित्य पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास को 'समन्वय का विराट चेष्टा' करने वाला कवि माना है। रामचरितमानस में जहाँ तुलसीदास 'रामराज्य' की परिकल्पना के माध्यम से एक आदर्श समाज (Utopia) की स्थापना करते हैं, वहीं 'कवितावली' तक आते–आते वे समाज के नग्न, कठोर और त्रासद यथार्थ (Dystopia) से टकराते हैं।

16वीं शताब्दी का उत्तरार्ध, जब भारत में सत्ता परिवर्तन और मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण हो रहा था, आम जनमानस के लिए घोर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकट का काल था। 'कवितावली' का उत्तरकांड तत्कालीन समाज का एक ऐसा जीवंत दस्तावेज है, जिसमें तुलसी की सामाजिक चेतना अपने सर्वोच्च शिखर पर दिखाई देती है। यह शोध पत्र इसी चेतना के विविध आयामों को उद्घाटित करने का एक विनम्र प्रयास है।

3. 'कवितावली' में युगीन यथार्थ और सामाजिक चेतना के विविध आयाम :

तुलसीदास की सामाजिक चेतना कोई अमूर्त धारणा नहीं है, बल्कि वह उनके आस–पास फैले समाज की पीड़ा से उपजी है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से विस्तार से समझा जा सकता है :

3.1. भयंकर आर्थिक विषमता, भुखमरी और बेरोजगारी :

'कवितावली' हिंदी साहित्य की संभवतः पहली ऐसी कृति है, जिसमें 'पेट की आग' (भूख) को समुद्र की आग (बड़वाग्नि) से भी अधिक भयंकर बताया गया है। तुलसीदास ने समाज के हर वर्ग 'किसान, व्यापारी, नौकर, भिखारी' की आर्थिक दुर्दशा का अत्यंत सूक्ष्म और प्रामाणिक चित्रण किया है।

'किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी।।
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेटकी।।'

इस सवैये में शोध की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि बेरोजगारी इतनी चरम पर थी। लोगों के पास आजीविका का कोई साधन नहीं बचा था। 'बेचत बेटा–बेटकी' पंक्ति उस युग की पराकाष्ठा को दर्शाती है जहाँ भूख ने मनुष्य की सहज वात्सल्य भावना को भी नष्ट कर दिया था। तुलसीदास ने इसे केवल देखा ही नहीं, बल्कि एक समाजविज्ञानी की तरह इसे दर्ज किया।

3.2. कृषि संकट और व्यापारिक पतन :

तुलसीदास का समय कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था का समय था। जब कृषि विफल होती है, तो पूरी अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है।

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि।
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।।'

यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि उस समय न केवल कृषि संकट में थी, बल्कि व्यापार (बनिज) भी ठप था। सामंती व्यवस्था और करों (टैक्स) के भारी बोझ ने किसानों को आत्महत्या या पलायन के कगार पर ला खड़ा किया था। दरिद्रता को वे रावण के समान मानते हैं– **'दारिद दसानन दबाई दूनी दीनबंधु'।**

3.3. कलियुग के आवरण में सामाजिक एवं नैतिक पतन :

तुलसीदास ने समाज के सांस्कृतिक और नैतिक पतन को 'कलियुग' के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। शोध की दृष्टि से यह समझना आवश्यक है कि तुलसी का 'कलियुग' कोई पौराणिक कालखंड नहीं है, बल्कि वह उनके अपने समय का यथार्थ है।

- **पाखंड का बोलबाला :** धर्म के नाम पर लोग स्वार्थ सिद्धि कर रहे थे।
- **मर्यादाओं का उल्लंघन :** समाज में वर्ण–व्यवस्था और आश्रम–व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई थी।

तुलसी लिखते हैं : **'नीच निरादरत नीच को...'** अर्थात् समाज में कोई किसी का सम्मान नहीं कर रहा

है। स्वार्थ और उदर–पोषण ही एकमात्र लक्ष्य बन गया है।

3.4. महामारी, अकाल और प्रशासनिक विफलता :

तुलसीदास ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में काशी में भयंकर महामारी (प्लेग या जिसे वे बाहु–पीड़ा कहते हैं) और अकाल का सामना किया। 'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' के पदों में सड़कों पर मरते हुए लोग, अनाथ होते बच्चे और लाशों के ढेरों का जो मार्मिक वर्णन है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है।

बीमारी से त्रस्त जनता के पास कोई चिकित्सा सुविधा नहीं थी।

प्रशासनिक स्तर पर शासक वर्ग पूरी तरह उदासीन था।

ऐसे में तुलसीदास ने जनता की पीड़ा को राम और हनुमान के समक्ष एक याचिका (Petition) के रूप में प्रस्तुत किया।

3.5. शोषित वर्ग के प्रति गहरी संवेदना और पक्षधरता :

तुलसीदास का साहित्य संभ्रांत वर्ग का साहित्य नहीं है। 'कवितावली' में उनकी सहानुभूति पूरी तरह से शोषितों, दरिद्रों और वंचितों के साथ है। वे स्वयं को भी उसी पंक्ति में खड़ा करते हैं :

'धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।।'

यह सवैया तुलसीदास की उस विद्रोही चेतना का परिचायक है, जहाँ वे समाज के जातिगत और सांप्रदायिक बंधनों को नकारते हुए एक स्वतंत्र और निर्भीक मानववादी दृष्टिकोण अपनाते हैं।

4. आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद : एक तुलनात्मक अध्ययन :

तुलसीदास के कृतित्व के समग्र मूल्यांकन के लिए **'रामचरितमानस'** के आदर्शवाद और **'कवितावली'** के यथार्थवाद की तुलना अपरिहार्य है :

- **समाज की प्रकृति :** मानस का 'रामराज्य' एक आदर्श यूटोपिया है जहाँ **'सब नर करहिं परस्पर प्रीती',** जबकि कवितावली का समाज **'आपस में मार-काट'** और स्वार्थ का समाज है।
- **कवि का दृष्टिकोण :** मानस में कवि एक कथावाचक और उपदेशक है, जबकि कवितावली में कवि स्वयं उस दुख का भोक्ता और पीड़ित है।
- **आर्थिक स्थिति :** मानस में **'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना',** जबकि कवितावली में **'दारिद दसानन'** का साम्राज्य है।

5. समकालीन प्रासंगिकता (Contemporary Relevance)

किसी भी शोध का महत्व तभी है जब वह वर्तमान के संदर्भ में प्रासंगिक हो। 'कवितावली' में तुलसीदास ने जिन समस्याओं 'बेरोजगारी, भूख, महामारी के समय प्रशासनिक उदासीनता और नैतिक मूल्यों के पतन' को उठाया था, वे आज के वैश्वीकृत और आधुनिक समाज में भी ज्यों की त्यों विद्यमान हैं। आज का समाज भी आर्थिक विषमताओं और महामारियों (जैसे हाल ही में कोविड–19 का दौर) से जूझ रहा है। ऐसे में तुलसीदास की यह कृति हमें हमारे सामाजिक दायित्वों का बोध कराती है।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध पत्र के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास मात्र एक भक्त कवि नहीं थेय वे मध्यकालीन भारत के सबसे मुखर, सजग और यथार्थवादी समाज–सुधारक थे। 'कवितावली'

उनकी उस सामाजिक चेतना का ज्वलंत प्रमाण है, जो समाज के दुख–दर्द से सीधा साक्षात्कार करती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, **'तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय मंदिर में पूर्ण प्रेम प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं।'** उनकी यह प्रतिष्ठा केवल उनके अध्यात्म के कारण नहीं, बल्कि लोक–जीवन के प्रति उनकी इसी गहरी और प्रामाणिक संवेदनशीलता के कारण है। **'कवितावली'** का उत्तरकांड इस बात का अमिट दस्तावेज है कि तुलसीदास की दृष्टि कभी भी अपने युग की कटु सच्चाइयों से भटकी नहीं।

7. संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- कवितावली – गोस्वामी तुलसीदास (संपादक : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)।
- गोस्वामी तुलसीदास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
- लोकवादी तुलसीदास – डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- हिंदी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
- भक्तिकाल और लोकजीवन – डॉ. रामविलास शर्मा।
- तुलसीदास : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन – डॉ. रामदत्त भारद्वाज।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से प्रकाशित करवाकर कार्यालय से

ISSN 2321:0540